राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जैक्स देरिदा एवं उत्तर-संरचनावाद

❑ प्रोफेसर श्यामधर सिंह

उत्तर-संरचनावाद साहित्यिक आलोचना में प्राथमिक रूप से विश्लेषण का एक स्वरूप है जो विशेषकर फ्रांसीसी दार्शनिक जैक्स देरिदा से संबंधित है। यह अक्सर संरचनावाद का विरोध करता है यद्यपि देरिदा ने अपने कार्य को संरचनावाद के वास्तविक सिद्धांतों के साथ अविरोधी रूप में देखा है। मौलिक विचार यह है किं हम यथार्थ को भाषा के हस्तक्षेप के बिना नहीं समझ सकते। वस्तुतः उत्तर-संरचनावाद भाषा के पाठ के उत्स का नाम है। भाषा पाठ के उत्स के बाहर कुछ नहीं है। फर्डीनैन्ड डी सासुरे ने भाषाई क्षेत्र में संरचनावाद की नींव डाली। अस्तु संरचनावादी और उत्तर-संरचनावादी सासुरे को अपना जनक मानते हैं। सासुरे के बाद सेवीस्ट्रास तथा अल्थूजर ने संरचनावाद के सूत्रों को अपने-अपने ढंग से एक शास्त्र के रूप में आगे बढ़ाया। यद्यपि उत्तर-संरचनावादी विचारकों में देरदा एवं मिशेल फूको जिन्हें माइकल फोकाल्ट भी कहा जाता है ऐसे विचारक हैं जिन्होंने अपने विचारों से संरचनावादी विचारधारा को नये पथ पर मोड़ दिया था जिससे महान संरचनावादी महल ध्वस्त होने लगा। कड़ा प्रहार करने वालों में प्रधान अभिनेता साहित्यिक सिद्धान्तकार जैक्स देरिदा हैं जिनका तर्क है कि हम यथार्थ को भाषा के हस्तक्षेप के बिना नहीं समझ सकते। अस्तु भाषा या मूलपाठ का अध्ययन ही हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। मूलपाठों को अन्य मूलपाठों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है, न कि बाहरी यथार्थता के सन्दर्भ में जिसके लिए उनका परीक्षण या मापन किया जा सकता है। अर्न्तमूलपाठ विषयक धारणा यह है कि मूलपाठ का अर्थबोध अन्य मूलपाठों के संदर्भ में उत्पादित किया जाता है। अतः मूलपाठ को अर्थबोध की उपस्थिति का पाठ कहा जाता है।

उत्तरी अफ्रीका के अल्जिरिया में एक सेफार्डिक यहूदी परिवार में १६३० में जन्में देरिदा उत्तर-संरचनावाद के सर्वाधिक सशक्त स्तम्भ हैं। उत्तर-सरंचनावाद के स्वरूप-निर्धारण और विकास में इनका अन्यतम योगदान है। देरिदा एक विशिष्ट दर्शनशास्त्री एवं समीक्षक के रूप में समादृत हैं। सम्प्रति, अपनी पूरी पीढ़ी में देरिदा का व्यक्तित्व विशिष्ट है। इस पीढ़ी और इसी से लगी हुई परिवर्तित पीढ़ी के लगभग सारे महत्वपूर्ण चिंतक देरिदा के अनुभव जगत् एवं गहन भाव से जुड़े हुए हैं। समाजशास्त्र में तो इनके विचार-दर्शन ने तहलका मचा रखा है। अतः कहा जा सकता है कि आज के समाजशास्त्रीय चिन्तन-गढ़ में देरिदा सबसे बड़ी हस्ती हैं। आधुनिक उत्तर-संरचनावाद के प्रवक्ता होने के साथ-साथ ये उत्तर-आधुनिकता के भी अग्रगण्य मौलिक विचारक हैं। इन्होंने सासुरे की भाषाई सैद्धान्तिक परम्परा में परिवर्तन लाया और भाषा की प्रधानता के स्थान पर लेखन की प्रधानता को स्थापित किया। सासुरे ने लेखन को वाणी से गौण माना था। देरिदा का इस सन्दर्भ में कहना है कि सासुरे द्वारा स्थापित वाणी और लेखन के द्वैतवाद में अन्तर्विरोध है। वाणी और लेखन के इस क्रम को देरिदा ने उलट दिया और कहा कि वाणी को स्वयंभू कहना वस्तुतः भाषा के लेखन से डरना है। देरिदा वाणी की अपेक्षा लेखन को प्राथमिक एवं श्रेष्ठतर मानते हैं। किन्तु, इस संदर्भ में उन्होंने लेखन की बहुअर्थवादी समस्या का निराकरण करने के लिए विखण्डन की प्रख्यात अवधारणा की सृष्टि की और कहना न होगा कि विखण्डन की अवधारणा की भित्तिका पर ही देरिदा का उत्तर-संरचनावाद का भव्य प्रासाद खड़ा है। देरिदा का यह विखण्डनवाद अनेक परतों से ढका है तथा यह इन्हें वह आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान करता है जो रचनात्मक सन्दर्भ में लक्षित होने वाली सार्थकता और निर्थकता की जांच करती चलती है। आज पूरे विश्व में सामाजिक जीवन एवं सामाजिक व्यवहार की बहुविधि छवि को लेकर इनके द्वारा किंचित रचनाएं इस कदर उनकी धाक जमायी हुई हैं कि लोग उनके सामाजिक चिन्तन और अनुभव वैविध्य का लोहा मानने लगे हैं।

देरिदा फ्रांसिसी भाषाई सैद्धान्तिक परम्पराओं के एक प्रमुख प्रस्तोता हैं। वे, विशेषकर सासुरे द्वारा शब्दार्थ व्यक्त करने वाली ध्वनि और शब्दार्थ व्यक्त विचार के बीच विशेष रूप से उल्लिखित साहचर्य के सम्बन्ध का मुद्दा लेते हैं। वस्तुतः यह मुद्दा लेखन को गौण मानता है और वाणी को प्राथमिक। देरिदा का मत है कि सभी भाषाई सिद्धान्त वाणी के विश्लेषण पर आधारित हैं तथा इसके अन्तर्गत लेखन को वाणी के उप-प्रकार के रूप में समझा जाता है। इस प्रकार वाणी को वस्तु या विषय

❑ निवर्तमान प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

के रूप में विद्यमान माना जाता है जो शब्दार्थ व्यक्त विचार का संकेतक है। इससे दार्शनिक शब्द केन्द्रवाद का स्वर अभिव्यक्त होता है जिसकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड या समग्र के अंतर्गत वर्तमान तथा सम्पूर्ण ज्ञेय अन्तर्निहित हैं जिन्हें अन्ततः आंशिक एवं वैयक्तिक अनुभव के परे जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इसकी यह भी मान्यता है कि प्रत्येक शब्दार्थ व्यक्त करने वाली ध्वनि नवनिर्मित शब्द है एवं इसका वर्गीकरणों के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है।

देरिदा ने संरचनावादियों के विपरीत वाणी के स्थान पर लेखन व्याकरणशास्त्र या विज्ञान पर विशेष बल दिया है। देरिदा का यह भी तर्क है कि भाषा रूढ़िगत है न कि यथार्थवादी। भाषा वर्गीकरण की व्यवस्था के रूप में कार्य करती है। भेदों अथवा द्विध्रुवीय विरोधों की विद्यमानता/अविद्यमानता को स्थापित करती है। अन्य शब्दों में, भेदों की संरचना पर ही भाषा निर्भर है। ध्वनि और बोध का भेद शब्दों को अलग करता है। तथापि, लेखन भाषा में न केवल यह भेद विभेदीकरण ही सम्मिलित होता है बल्कि स्थगन या विलम्बन भी अन्तर्निहित होता है। परवर्ती द्वारा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भाषा में पाये जाने वाले भेद या वर्गीकरण पूववर्ती घटनाओं के उत्पाद हैं। इसलिए, एक लेखन शब्द कुछ पूर्ववर्ती वाणी क्रिया का उत्पाद है। किन्तु, वाणी उस रूप में यथार्थता को प्रस्तुत नहीं करती, जिस रूप में लेखन यथार्थ का चित्रण करता है, क्योंकि वाणी स्वयं पूर्ववर्ती वर्गीकरण की क्रिया का उत्पाद है। उदाहरण के लिए, लिखित शब्द, बिल्ली, कुछ लोगों द्वारा बोले जाने वाले शब्द पर निर्भर है, किन्तु यह शब्द वास्तव में अन्य लोगों द्वारा भी स्वीकृत होता है। यह स्वीकरण अन्य लोगों द्वारा उसकी अन्य निश्चित विशेषताओं, जैसे उसकी मांसाहारी, पालतूपन, घरेलूपन, पारिवारिक प्रेम, भोजनेतर, चौपाया-स्तनधारी, आंकुचनशील पंजा, म्याऊँ-म्याऊँ उसकी आवाज, आदि के आधार पर किया जाता है। बिल्ली की ये विशेषताएं लोगों को उसे अन्य चतुष्पद जानवरों से भिन्न रूप में समझने के लिए बाध्य कर देती हैं।

देरिदा का लेखन विश्लेषण यह प्रदर्शित करने का प्रयास करता है कि प्रत्येक चिन्ह के अन्तर्गत यहां तक कि वाणी के अन्तर्गत भी पूर्व-वर्गीकरण की क्रियाओं के चिन्ह या स्मृतियाँ समाविष्ट होती हैं। अस्तु, वाणी लेखन की पूर्व-स्वरूप हो जाती है। ये चिन्ह न केवल विद्यमान वस्तुओं को जोड़ते हैं, बल्कि अविद्यमान वस्तुओं को भी जोड़ते हैं। बिल्ली शब्द लिखना यह सूचित करता है कि यह कुत्ता शब्द से पूर्णतया भिन्न है। अस्तु, बिल्ली शब्द स्वयं कुत्ता शब्द से वैषम्य या विरोध प्रकट करता है। यदि यह सच है तब किसी लेखन शब्द का अर्थ कभी भी विद्यमान वस्तु से प्रत्यक्ष रूप से संयोजित नहीं होता है। तथ्यतः लेखन का कभी भी एक निश्चित अर्थ नहीं होता। बल्कि अर्थ मूल-पाठ एवं पाठक के बीच पूर्वापर सम्बन्ध या प्रसंगाधीन सम्बन्ध से संबंधित होता है। लेखन यथार्थता को पुनरूपादित नहीं करता, बल्कि यह इसकी रचना एवं पुनर्रचना करता है और इस प्रकार राजनीतिक महत्व से परिपूर्ण होता है।[१] कुलर ने भाषा के साथ इस सामान्य अभिमुखीकरण की प्रक्रिया के सारांश को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है।

भाषा को भेदों के नाटक के रूप में समझा जा सकता है, चिन्हों एवं पुनरावृत्तियों के रूप में प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होना सोचा जा सकता है जिन्हें किन्हीं शर्तों के अंतर्गत वर्णित किया जा सकता है, किन्तु, अर्थबोध के प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए कभी भी सर्वांगपूर्ण, विशेष रूप से उल्लिखित नहीं किया जा सकता।[२]

इस अर्थ में देरिदा एक उत्तर-संरचनावादी हैं। चिन्हों के अर्थबोध सम्पूर्णतः स्वैच्छिक होते हैं और यथार्थ पर आधारित नहीं होते जिन्हें व्यवस्थित एवं निश्चायक समझा जाये। अन्य शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि देरिदा ने चिन्हों को अव्यवस्थित और अनिश्चित माना है जबकि, संरचनावादियों ने चिन्हों को व्यवस्थित और निश्चायक रूप में समझा है।

देरिदा ने इसे प्रमाणित करने के लिए मूल-पाठों के विखण्डन की प्रक्रिया का सहारा लिया है। उनका तर्क है कि किसी भी मूल-पाठ का पठनीय उप-मूलपाठ होता है जो इसकी अपनी स्थिति को खण्डित एवं सम्पूरित करता है।

विखण्डन क्या है?

अपने मूल अर्थ में विखण्डन दार्शनिक एवं साहित्यिक कार्यों के अर्थ के विश्लेषण के लिए एक आलोचनात्मक पद्धति है जिसके अन्तर्गत वाक्यों के संघटकों को तोड़कर एवं पुनर्जोड़ द्वारा अर्थबोध प्राप्त किया जाता है। इसका दावा है कि मूल-पाठों की परम्परागत या रूढ़िगत व्याख्याएं लेखक और कार्य के प्रकट अर्थ पर केन्द्रित होती हैं। विखण्डनवाद (१) मूल-पाठों की संरचना एवं उनकी साहित्यिक वंशगत सदस्यता पर संकेन्द्रित होकर लेखक के महत्व की जड़ को खोदने या काटने का प्रयास करता है तथा (२) मूल-पाठों के अवयक्त अर्थों को उनमें अन्तर्निहित एवं गुप्त मान्यताओं को उद्घाटित कर समझने का प्रयास करता है। यह पद्धति वास्तव में 'विकेन्द्रण' विचार के साथ संयुक्त होती है अर्थात् यह पद्धति इस मान्यता पर प्रहार करती है कि मूल-पाठ की संरचना के

पास एकीकृत करने वाला केन्द्र होता है जो बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है। विकेन्द्रण का उद्देश्य अर्थ को बिखेरना है न कि अर्थ को संघटित या एकीकृत करना है। ये अव्यक्त अर्थ अक्सर (१) अन्तरालों या अविद्यमानों, सन्देहों की खोज, एवं (२) मूल-पाठों (सीमान्तों) के लघु विवरणों या बाह्य पक्षों पर संकेन्द्रियता, जैसे पादटिप्पणियों एवं विषयान्तरों के रूप में जहां यह तर्क दिया जाता है कि महत्वपूर्ण अर्थ अक्सर गूढ़ या गुप्त होते हैं, द्वारा प्रकट किये जाते हैं।

विखण्डन किसी मूल-पाठ के प्रकट एवं अधिकारिक अर्थों में क्रान्तिकारी पठन के पक्ष में उलटाव लाता है। यह उलटाव मूल-पाठ (जैसे - अच्छा/बुरा, पुरूष/स्त्री, तर्क बुद्धिपरक/गैर तर्क बुद्धिपरक आदि) के पहचान द्वारा पूरा किया जाता है एवं उसके सुस्पष्ट विषमताओं या भेदों को पुनर्संगठित किया जाता है जो किसी वृतान्त, कथा या आख्यान के मुख्य तत्व होते हैं। विखण्डनवादियों जैसे, पी.डे. मैन[३] और जे. देरिदा[४] अक्सर दावा करते हैं कि विखण्डनवाद मूल-पाठों के पठन के लिए केवल नुस्खा या विधि नहीं है बल्कि यह एक दार्शनिक रूप है जो आज के विश्व के बौद्धिक पर्यावरण का निर्णायक स्वर बन बैठा है। देरिदा की उद्घोषणा है कि विखण्डनवाद का तात्पर्य मूल-पाठ को उसके सन्दर्भ में पढ़ना। ऐसा करते समय यह देखना अनिवार्य है कि मूल-पाठ का कौन-सा अर्थ सुस्पष्ट है और कौन-सा अस्पष्ट। अस्पष्ट अर्थ को निकालना एवं तार्किकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरने पर उसे अस्वीकार करना, उसको नकारना ही विखण्डन है। सुधीर पचौरी अपनी पुस्तक 'आलोचना से आगे'[५] में विखण्डन की व्याख्या इस प्रकार करते हैं "विखण्डन क्या है? इस पर सोचते हुए देरिदा कहते हैं कि "विखण्डन की क्रिया याद दिलाती है कि भाषा किस तरह दर्शन की योजना को जटिल बनाती है या बाहर फेंकती है। विखण्डन विचार को निरस्त करता चलता है। विचारधारा जो पश्चिमी दर्शन का सत्तावादी भ्रम है। विचारधारा यानी तर्क जो पश्चिम का संचालक रहा है। विखण्डन इस तर्क को व्यर्थ करता है। इस अर्थ में देरिदा दार्शनिक कम समीक्षक अधिक हैं। देरिदा के यहां रचना और समीक्षा में भेद है, जैसा कि नव्यालोचकों के यहां है। विखण्डनवादी दृष्टि में सब बराबर है। आलोचना, दर्शन, भाषाविज्ञान, नृविज्ञान आदि तमाम मानवविज्ञान देरिदा के लिए विखण्डन वस्तु हैं। सभी कुछ देरिदा का लक्ष्य है।"

विखण्डन की अवधारणा को सुस्पष्ट करते हुए देरिदा मानते हैं कि मूल-पाठ का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। अस्तु, विखण्डन की प्रक्रिया द्वारा मूल-पाठ की कई प्रकार से व्याख्या की जाने की सम्भावना बलवती होती है क्योंकि इसके कई अर्थों को खोजने की स्वतन्त्रता रहती है। इस सन्दर्भ में विकेन्द्रण को युक्तियों के रूप में देखा जा सकता है। विखण्डन मूल-पाठ को पढ़ने की एक विधि है जो सर्वप्रथम हमें मुख्य विषय की केन्द्रीय धारणा का अर्थबोध प्रदान करती है और तत्पश्चात् उसे उलटाव की प्रक्रिया द्वारा उलट देती है ताकि सीमान्त शब्दों द्वारा अस्थायी संस्तरण को बदला जा सके। अस्तु, विखण्डन की विधि सर्वप्रथम किसी मूल-पाठ के द्विवर्गीय विपरीतता (जैसे- रात-दिन, स्त्री-पुरूष, आत्मा-जड़, प्रकृति-पुरूष, सद्-असद्, उचित-अनुचित) पर हमारा ध्यान संकेन्द्रित करने का प्रयास करती है और तत्पश्चात् हमें यह बताती है कि किस प्रकार ये विरोधी तत्व परस्पर सम्बन्धित हैं और किस प्रकार आपस में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

देरिदा ने विखण्डनवाद की व्याख्या करते हुए प्लेटो से लेकर आज तक के दार्शनिकों के लेखन का विश्लेषण किया है। उनका कहना है कि सम्पूर्ण लेखन एक ऐसे सार्वभौमिक नियम की खोज में है ताकि लोगों को सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के लक्ष्य की प्राप्ति हो जाये। इस दिशा में अन्वेषण के सारे प्रयासों ने मनुष्य के यथार्थ विचार को दबा दिया है। इस प्रकार के लेखन को देरिदा ने शब्द केन्द्रवाद या लोगो सेन्ट्रीज्म पद से सम्बोधित किया है। देरिदा ने इस पद को विद्वेषात्मक भाव का उत्पाद माना है। इस पद के दुष्परिणाम से विश्व का सम्पूर्ण चिन्तन दमित, आहत व क्षतिग्रस्त हुआ है। देरिदा की अभिरूचि विश्व को इस दमनात्मक चक्र से मुक्त कराने में है। देरिदा वस्तुतः इस पाश्चात्य लेखन को विखण्डित करना चाहते हैं। इस लेख का विमर्श देरिदा के लिए कूड़ा-करकट का वह ढेर है जिसका विध्वंस अत्यावश्यक है।

विखण्डन स्व-अन्तर्विरोध के उन सन्देहों, अन्ध-बिन्दुओं या महत्वों को खोजने या अन्वेषित करने का सतर्क प्रयास है जहां एक मूल-पाठ अनजाने में या अनिच्छा से शब्दाडम्बर एवं तर्क के बीच, प्रकट कथन के अर्थ एवं कृत्रिम अर्थ के बीच बेचैनी, व्यग्रता या तनाव व्यक्त करता है। अस्तु, किसी लेखन को 'विखण्डित' करना युद्ध कौशल विषयक उलटाव का कार्य करना है। उन उपेक्षित विवरणों, (कार्य-कारण रूपकों, पादटिप्पणियों, तर्क के प्रासंगिक घुमावों) जो सदैव और अनिवार्यतः रूढ़िवादी धारणा के व्याख्याताओं द्वारा उपेक्षित किये गये हैं, को ठीक-ठीक रूप में समझना है।[६]

विखण्डन चिन्तन के मार्गों की वंशावली को उघारने का प्रयास है जिससे मूल-पाठ विरचित होता है। देरिदा का प्रमुख लक्ष्य विविध दार्शनिक मूल-पाठों के सत्य या यथार्थ को उघारने

का दावा करना है। किन्तु, परिणामतः, देरिदा उन संस्थापक व प्रवर्तक समाजशास्त्रियों के भी घोर विरोधी हैं जिन्होंने संस्कृति या बुद्धिसंगत व्यापार या भौतिकवाद अथवा प्रकार्यात्मक अनिवार्यताओं के सन्दर्भ में एकतत्ववादी या एककारकीय व्याख्या पर जोर दिया है। एतदर्थ उन्होंने विनोदशील भाषाई सामाजिकता का विकल्प प्रस्तुत किया है।

देरिदा की उद्घोषणा है कि विखण्डन के अन्तर्गत पठन का एक ऐसा पथ प्रशस्त है जिसका सम्बन्ध ऐसे विकेन्द्रण से होता है जो सभी केन्द्रस्थ समस्यागत प्रकृति की पोल या कलई खोल देता है। अस्तु विखण्डन वस्तुतः विकेन्द्रण की एक रणनीति, पठन का एक मार्ग है, जो केन्द्रीय पद की केन्द्रीयता के प्रति सर्वप्रथम जानकार बनाता है। तब यह केन्द्रीय पद को उलटने का प्रयास करता है ताकि सीमान्त पद केन्द्रीय हो सके। सीमान्त पद अस्थायी रूप से संस्तरण को उलट देता है। यहां देरिदा का यह स्वर मार्क्स के स्वर के निकटस्थ प्रतीत होता है।

देरिदा का तर्क है कि सत्य के विविध अर्थ होते हैं जो व्यक्ति के समक्ष चयन के लिए अनेक विकल्प प्रस्तुत करते हैं। देरिदा ने इसे ही उत्तर-संरचनावाद का नाम दिया है। उनका कहना है कि भाषा का अर्थ किसी मूर्त या यथार्थता में नहीं खोजा जा सकता प्रत्युत यह अर्थ केवल स्वयं भाषा के सन्दर्भ में ही खोजा जा सकता है जिसकी रचना सामाजिक रूप में होती है।

विखण्डन की अवधारणा को सुस्पष्ट करने के सन्दर्भ में देरिदा ने पारम्परिक नाट्यशाला के कार्यक्षेत्र का एक अनुपम दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि नाट्यशाला के रंगमंच पर जो भी घटनाएं घटित होती हैं, वे यथार्थ जीवन में घटित घटनाओं तथा लेखक, निर्देशक तथा अन्यों की अपेक्षाओं को चित्रित करती हैं। यह चित्रण ही नाट्यशाला का ईश्वर है जो उसे धार्मिक रूप प्रदान करता है। देरिदा की मान्यता है कि यह नाट्यशाला एक धर्मशास्त्रीय नाट्यशाला है जो पूर्णतया नियन्त्रित होती है, क्योंकि नायक व नायिका सहित सभी अभिनेता व अभिनेत्रियां मातहत होते हैं। ये सभी लेखक या रचनाकार के विचारों को निष्ठापूर्वक निर्देशक के निर्देशन पर रंगमंच पर प्रस्तुत करने का अथक प्रयास करते हैं। कुल मिलाकर इस नाट्यशाला के अन्तर्गत नायक व नायिकाओं, अभिनेता व अभिनेत्रियों के हाथ में कुछ नहीं होता है। सब कुछ लेखक, निर्देशक और परम्परा के हाथ की कठपुतली हैं। कठपुतली को नचाने वाला जिस-जिस रूप में नचाता है, नाचती रहती है। ठीक इसी तरह नाट्यशाला के रंगमंच पर अभिनेता व अभिनेत्रियां, नायक व नायिका वही संवाद बोलते हैं जैसा कि नाटककार ने लेखबद्ध किया है। अभिनय भी उसी शैली में प्रदर्शित होता है जैसा कि निर्देशक चाहता है। देरिदा का कहना है कि नाट्यशाला के सभी कार्य पूर्वनिश्चित व पूर्वनिर्धारित होते हैं। ऐसे नाट्यशाला या थिएटर को देरिदा ने 'क्रूर नाट्यशाला' के नाम से सम्बोधित किया है। देरिदा ने इसे क्रूर, निर्दय, निष्ठुर या निर्मम इसलिए कहा है क्योंकि इसमें अभिनेता व अभिनेत्रियों के हाथ में कुछ भी नहीं है। वे तो केवल कठपुतली के सदृश हैं। अस्तु, देरिदा इस प्रकार की नाट्यशाला के स्थान पर एक अलग प्रकार की वैकल्पिक नाट्यशाला (एक वैकल्पिक समाज) की चर्चा करते हैं जिसमें नाट्यशाला को नियन्त्रित करने में कथन की कोई भूमिका नहीं होगी। अन्य शब्दों में यह एक ऐसी नाट्यशाला होगी जिसके रंगमंच पर नायक-नायिका, अभिनेता-अभिनेत्री, लेखक-निर्देशक तथा पुस्तक-पोथी और प्रथा-परम्परा का कोई नियन्त्रण नहीं होगा। यह नाट्यशाला पूर्णतया विकेन्द्रित होगी। किन्तु, कथ्य है कि इस प्रकार की वैकल्पिक नाट्यशाला व रंगमंच के स्वरूप के बारे में स्वयं देरिदा ने कोई स्पष्ट व निश्चित विचार प्रकट नहीं किए है। इस सन्दर्भ में उनका कहना है कि "यह ऐसे मंच की रचना है जिसके स्वर को अभी तक शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सका है।"

देरिदा के उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट है कि वे पारम्परिक नाट्यशाला व समाज दोनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे नाट्यशाला व समाज की पारम्परिक क्रूरता से लोगों को विमुक्त करना चाहते हैं। नाट्यशाला के सदृश परम्परागत समाज से वे पर्याप्त आतंकित भी प्रतीत होते हैं। अस्तु, समाज को महान वृत्तान्तों, महान वृत्तान्तकारों, शीर्षस्थ विचारकों के विचारों की प्रधानता को विध्वंस कर देना चाहते हैं, उनकी बात को सही सिद्ध करने का दम्भ चकनाचूर कर देना चाहते हैं। देरिदा परम्परापोषी चिन्तन को नागपाश की तरह बांधे सामाजिकता को तथा प्रभावक विमर्श को छिन्न-भिन्न व तहस-नहस कर देना चाहते हैं। वस्तुतः थिएटर की भांति समाज में व्यक्ति को अभिनेता के सदृश वैयक्तिक स्वतंत्रता व वैयक्तिक दृष्टि, जीवन के नये यथार्थ, नये जीवन-दर्शन की ओर देरिदा की दृष्टि गयी है।

भारतीय महान् चिन्तकों की परिधि में स्वामी विवेकानन्द ने १८९२ में शिकागो धर्म सम्मेलन में यह उद्घोषणा की थी कि किसी वस्तु में इसलिए विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वह हमारे धर्मग्रन्थों में लिखित है अथवा वह किसी महान् व्यक्ति द्वारा कही गयी है, बल्कि सच्चाई का पता, सत्य का अन्वेषण स्वयं करना चाहिए। भारत में यदि इस कथन का समावेश

हुआ तो कई समाजशास्त्रीय सम्प्रदायों का भवन ध्वस्त हो जाएगा।

कहना न होगा कि आज पूरे विश्व में देरिदा की विखण्डनवादी साहित्यिक विधियां तथ्यतः पूरे विश्व के उन समाजशास्त्रियों को प्रभावित करना आरम्भ कर दी हैं जिनका दावा है कि समाज एक मूल-पाठ है जिसके अस्पष्ट अर्थबोधों व अभिप्रायों को सुस्पष्ट करने, उनका भण्डाफोड़ करने के लिए विखण्डित करना अत्यावश्यक ही नहीं प्रत्युत अपरिहार्य है। हां, किन्तु, आलोचकों का दावा है कि विखण्डनवादी विधियां स्वैच्छिक, यादृच्छिक एवं आत्मपरक हैं, और जबकि समाज की प्रकृति वस्तुपरक है जो गैर-मूल-पाठ विषयक एवं गैर-विमर्शात्मक है।

तथापि, यह भी उल्लेख्य है कि हमारे देश में मानव संसाधन मन्त्रालय के प्रोत्साहन से देरिदायी अनुकूल प्रौढ़ विचारों की सम्भावनाएं बढ़ रही हैं। अपने देश में हर प्रकार की वैयक्तिक स्वतंत्रता की श्रीवृद्धि हो रही है-यह निःसन्देह एक सुखद प्रकरण है।

सन्दर्भ

१. हावकेस टी, 'स्ट्रक्चरलिज्म एण्ड सिमिओटिक्स', मेथुएन, लन्दन, १६६७, पृ. १४६
२. कुलर जे, 'जैक्स देरिदा' इन स्टुराक (एडिटेड) स्ट्रक्चरलिज्म एण्ड साइन्स, ऑक्सफोर्ड, १६७६, पृ. १७१-१७२
३. मैन पी.डे., 'ब्लाइन्डनेस एण्ड इनसाइट : एसेज इन रिटोरिक ऑफ कन्टेम्पोररी क्रिटिसिज्म एण्ड इडन, मेथुएन', लंदन, १६८३ण
४. देरिदा जैक्स, 'मारजिन्स ऑफ फिलासफी', १६७२
५. पचौरी सुधीर, 'आलोचना से आगे', राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०००, पृ. १८६
६. नोरिस सी, 'देरिदाः फोन्टना' ग्लासगो, १६८७, पृ. १६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उर्दू उपन्यासों में नारीवाद : स्वतंत्रता पूर्व उर्दू साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ. अजरा आब्दी**

कथा एवं कहानियां अपनी साहित्यिक दृष्टि से चाहे त्रुटियों से खाली न रही हों, परन्तु समाज में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, न ही चिंतक एवं लेखक उसकी ओर से मुंह मोड़ सकते हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में कथाओं के कहने एवं सुनने के महत्व को स्वीकार किया गया है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि, कथा सुनाने का कौशल मनुष्य की बहुत पुरानी कला के रूप में समाज में प्रचलित रहा है। यह कौशल लगभग हर समाज, समुदाय एवं देशों में प्रचलित रहा है। उर्दू में इस कला का जन्म दूसरी साहित्यिक कलाओं की तरह ईरान में हुआ।

१८५७ से पहले तक उर्दू साहित्य में कथाओं का युग रहा। उर्दू का यह कथा साहित्य नारीवाद की जो अवधारणा प्रस्तुत करता है वह कहीं न कहीं उस युग की महिलाओं की सामाजिक ध्वनि को प्रस्तुत करता है। इन कथाओं में केवल नारी की नकारात्मक छवि को ही नहीं बल्कि उसकी सकारात्मक भूमिका को भी लेखकों ने व्यक्त किया है। कहीं यह वास्तविकता से करीब है, तो कहीं काल्पनिकता के। यहां तक कि १८५७ के आते-आते काल्पनिकता का स्थान वास्तविकता ने ले लिया और कथाओं का युग समाप्त हो गया। वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में कथायें एक भूली-बिसरी कहानी बनकर रह गयीं। उपन्यास (आधुनिक कथा) ने अपना स्थान बनाना आरम्भ कर दिया। उपन्यास (आधुनिक कथा) ने अपना स्थान बनाना आरम्भ कर दिया। प्रस्तुत लेख में स्वतंत्रता पूर्व उर्दू उपन्यास में नारीवाद के विषय को आधार बनाया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख लेखकों जैसे नजीर अहमद, सरशार, हादी रूसवा एवं प्रेमचंद की प्रमुख कृतियों के माध्यम से भारतीय समाज में नारीवाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।।

१८५७ से पहले तक उर्दू साहित्य में कथाओं का युग रहा। यह वह युग था, जब साहित्य को राजा महाराजाओं के दरबार में शरण लेनी पड़ती थी और उनकी इच्छा अनुसार कथाएं एवं गाथायें लिखी जाती थीं। इस क्रम में सबसे पहली कथा ''सब रस'' १६३५ में लिखी गई और लोगों के सम्मुख प्रस्तुत की गई। इसके लेखक ''असद उल्लाह वजही'' थे। यह पुस्तक उर्दू में साहित्यिक दृष्टि से लिखी गई पहली कृति है। इससे पहले मिलने वाला साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक प्रवृति का है। उसके अंदर वह साहित्यिक गुण भी नहीं था। परन्तु ''सब रस'' में वे समस्त विशेषताएं उपस्थित हैं, जो उसे साहित्य की श्रेणी में सम्मिलित करने के लिए आवश्यक थीं।

यद्यपि ''असद उल्लाह वजही'' का उद्देश्य अपने युग की सामाजिक या नैतिकता की छवि को प्रस्तुत करना नहीं था, परन्तु ''सब रस'' में एक ऐसी दुनिया सामने आती है जो केवल काल्पनिक नहीं है। हर समाज स्त्री एवं पुरूष के सम्बन्धों को स्वीकार करता है और यह सम्बन्ध अलग-अलग प्रकार के होते हैं और उनका स्वरूप भी अलग-अलग होता है। ''सब रस'' में पुरूषों की छवि की चर्चा करते समय लेखक ने उसमें धैर्य एवं सहन शक्ति को विशेष महत्व दिया है। भारतीय समाज पुरूष प्रधान रहा है, लेकिन अपनी इस कृति में वजही ने स्त्रियों के गुणों की भी चर्चा की, प्रमुखतया उन स्त्रियों की जो अपने पति को देवता समझती हैं तथा उनके प्रति वफादार रहती हैं। जिस समय ''सब रस'' लिखी गई उस समय बहुपत्नी का चलन समाज में था और दूसरी पत्नी या सौतन के झगड़े घर-घर फैले हुए थे। यह वास्तविकता केवल कथा एवं कहानियों में ही नहीं मिलती बल्कि यह उस समाज की एक सच्चाई थी जिसकी चर्चा उस समय के उर्दू साहित्य में मिलती है। उस समय महिलाओं को समाज में मंद बुद्धि वाला समझा जाता था, जिसका कारण उनके अंदर पायी जाने वाली संवेदना को समझा गया। पुरूषों का यह मानना था कि वह संवेदना की धारा में बहकर गलत निर्णय ले लेती हैं। इसका उदाहरण ''सब रस'' कथा की पात्र राजकुमारी ''हुस्त'' है जो ईर्ष्या के कारण बिना सोचे समझे अपने प्रेमी को बंदी बना लेती है और अंत में अपने फैसले पर पछताती है। इसके अतिरिक्त इस उर्दू कथा में ऐसी नारियों की चर्चा भी है जो छल कपट से भरी हुई हैं और ऐसी नारी ईश्वर का पाप है, जो दूसरों का घर बर्बाद करती है। ऐसा ही एक पात्र ''सब रस'' की ''गैर'' नामी नारी है। इस प्रकार

❑ **एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, जामिया मिल्लया इस्लामिया सेन्ट्रल विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

उर्दू का यह कथा साहित्य नारीवाद की जो अवधारणा प्रस्तुत करता है वह कहीं न कहीं उस युग की महिलाओं की सामाजिक ध्वनि को प्रस्तुत करता है।

दक्षिण भारत में कथाओं का क्रम अठारहवीं शताब्दी के अंत से प्रारंभ हो जाता है। जब उन्नीसवीं सदी में फोर्ट विलियम कालेज के संरक्षण में पंद्रह कथाओं का अनुवाद उर्दू में हुआ। १८०० से १८२० तक फोर्ट विलियम कालेज के बाहर लिखी जाने वाली कथाओं की संख्या पांच है जिसमें ''इन्शा अल्लाह खान'' की ''रानी केतकी'' को विशेष स्थान प्राप्त है। इन कथाओं में भारतीय नारी के वे सारे रंग उपस्थित हैं, जिनकी रचना में सदियों की परम्परा एवं रस्मों की छाप पाई जाती है। उदाहरणतया बेटियों के जन्म लेने पर दुख का वातावरण, पति परमेश्वर की तरह, नारी का अस्तित्व केवल पति बच्चों एवं घर के लिए शांतिप्रिय घर का वातावरण जिसके लिए सदैव नारी बलिदान दे आदि। उस समय की कथाओं में नारी की छवि उसकी सुन्दरता एवं प्रेमी प्रेमिका के किस्सों, प्रेम मिलन को एवं मिलन के तरीकों को दिलचस्प बना कर प्रस्तुत किया गया है। समस्त किस्से कहीं न कहीं समाज की वास्तविकता को दर्शाते हैं। इन्हीं किस्से कहानियों में लेखकों ने नारी को रीति रिवाज धर्म और राष्ट्र के प्रहरी के रूप में भी दिखाया है जो तीखे बाण व्यंगों से युद्धों की काया भी पलट देती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कथाओं में केवल नारी की नकारात्मक छवि को ही नहीं बल्कि उसकी सकारात्मक भूमिका को भी लेखकों ने व्यक्त किया है। कहीं यह वास्तविकता से करीब है, तो कहीं काल्पनिकता के। यहां तक कि १८५७ के आते-आते काल्पनिकता का स्थान वास्तविकता ने ले लिया और कथाओं का युग समाप्त हो गया। वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में कथायें एक भूली-बिसरी कहानी बनकर रह गयीं। उपन्यास (आधुनिक कथा) ने अपना स्थान बनाना आरम्भ कर दिया। राजकुमारी की जगह नजीर अहमद की ''असगरी'' एवं ''अकबरी'' ने ले ली।

प्रस्तुत लेख में स्वतंत्रता पूर्व उर्दू उपन्यास में नारीवाद के विषय को आधार बनाया गया है। इस सम्बन्ध में मैं कुछ प्रमुख लेखकों जैसे नजीर अहमद, सरशार, हादी रूसवा एवं प्रेमचंद की प्रमुख कृतियों के माध्यम से भारतीय समाज में नारीवाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करूंगी। यह भी एक सुंदर संयोग है कि शायरी की तरह उपन्यास भी दिल्ली एवं लखनऊ से संबंधित रहा है।

डिप्टी नजीर अहमद को इसका श्रेय जाता है कि आपने उर्दू में सर्वप्रथम एक ऐसी कृति प्रस्तुत की जिसे उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। उनके उपन्यासों, ''मरातुल उरूस, तौबतुन नुसूह, फसानऐ-मुबतला, इब्नूला वक्ता'' इत्यादि में से कोई भी उपन्यास ऐसा नहीं है, जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक जीवन एवं तत्कालीन मुस्लिम घरानों की वास्तविक छवि प्रस्तुत न की गई हो। मध्यम वर्गीय परिवारों की दुर्दशा एवं उनके सुधार तथा महिलाओं से जुड़ी त्रासदी का विस्तृत चित्रण नजीर अहमद ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया। नजीर अहमद के उपन्यासों में मध्यम वर्गीय महिलाओं के सामाजिक सुधार एवं उद्धार की बात भी प्रमुख रूप से की गई है क्योंकि नजीर अहमद के अनुसार किसी भी समाज का निर्माण बिना उसकी महिलाओं को महत्व दिये अधूरा होगा। अपने उपन्यास मरातुल उरूस में लिखा है, घर का करोबार एक दिन भी नारी के बिना नहीं चल सकता, पुरूष कितना भी होशियार क्यों न हो संभव ही नहीं कि नारी की सहायता के बिना घर चला सके। यही कारण है कि औरत की मृत्यु को एक घर के उजड़ जाने से संबंधित माना जाता है।

नजीर अहमद का यह विचार था कि पुरूषों की तुलना में नारियों की स्थिति में अधिक सुधार की आवश्यकता है। जागीरदार व्यवस्था में महिलाएं एक चित्र की भांति नजर आती हैं और पुरूष उन्हें अपनी पूंजी समझता था। उनके उपन्यास में स्त्रियों की खराब एवं दयनीय स्थिति के समस्त रूप दिखाई देते हैं। इन्हीं कारणों से स्त्रियों का व्यक्तित्व न तो पूरी तरह विकसित हुआ और न ही वे अच्छी पत्नी या अच्छी मां बन पायीं। नजीर अहमद अपने उपन्यास में स्त्रियों की स्थिति के लिए कहीं न कहीं पुरूष प्रधान समाज को उत्तरदायी मानते हैं। वह इस बात को स्वीकार करते हैं कि पुरूषों ने महिलाओं को अपने निजी स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया और अपने अधीन रखा जिसके परिणामस्वरूप महिलाएं शिक्षा एवं समाज के तौर तरीकों से वंचित हो गयीं। इसका कारण पुरूषों में वह भय था कि कहीं महिलाएं शिक्षित होने के बाद अपने अधिकारों एवं दायित्वों की मांग न करने लगें और पुरूषों के बराबर समाज में न आ जाएं।

इस प्रतिबन्ध का नकारात्मक प्रभाव महिलाओं के व्यक्तित्व पर पड़ा और धीरे-धीरे समाज में उनका पतन आरंभ हुआ और वे स्वयं भी समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को अपनाने लगीं। इस प्रकार अशिक्षा, अंधविश्वास, परम्परा, रीति-रिवाजों ने महिलाओं को पूरी तरह जकड़ लिया और वह उन्हें पकड़े भी रहीं। नजीर अहमद ने इस समस्या को भी अपनी कृति में स्थान दिया। नजीर अहमद महिलाओं के इस पतन एवं अपने घरेलू दायित्वों से मुंह मोड़ने के परिणामों की ओर भी दृष्टि

डालते हैं। वे लिखते हैं कि जब महिलाएं अपने घर परिवार, पति, बच्चों एवं संबंधियों के प्रति दायित्वों को भली भांति निभाने में असफल रहीं तो उनके पतियों ने अपने दिल को बहलाने एवं भोग विलास के लिए वेश्याओं के यहां जाना आरम्भ किया। यह वेश्याएं उनके लिए मनोरंजन के वह तमाम अवसर एवं साधन प्रदान करने लगीं जो उस समय के मध्यम वर्गीय परिवारों में पुरूषों के लिए उपलब्ध नहीं थे। नजीर अहमद ने अपने उपन्यासों में पूर्ण रूप से ऐसे अवसरों के लिए महिलाओं को जिम्मेदार ठहराया है।

नजीर अहमद महिलाओं में कुछ विशेष गुणों को देखने की बात कहते हैं जिससे घर का वातावरण अच्छा बना रहे पति प्रसन्न रहे और इसके लिए शिक्षा को नजीर अहमद आवश्यक मानते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य स्त्री को एक अच्छी बेटी-पत्नी एवं मां बनाना होना चाहिए। नजीर अहमद की दृष्टि में महिलाओं की शिक्षा का बड़ा संकुचित रूप दिखाई देता है। अपने उपन्यास मरातुल उरूस में एक जगह वह लिखते हैं, औरत का जन्म लेना केवल पुरूष की खुशी के लिए है, और औरत का यह उत्तरदायित्व है कि वह पुरूष को प्रसन्न रखे। अफसोस कि दुनिया में बहुत कम महिलाएं इस कर्तव्य को पूरा करती हैं।

नजीर अहमद का यह मानना था कि पत्नी के जीवन का उद्देश्य पति की सेवा करना है। उनके उपन्यास में जिस आदर्श नारी की छवि उभरती है वह वास्तविकता में मध्यम वर्गीय मुस्लिम परिवारों की महिलाएं हैं। ये महिलाएं आर्थिक रूप से पुरूषों पर निर्भर थीं और अपना जीवन उन्हीं की इच्छानुसार गुजार रहीं थीं। समाज में न तो उनकी कोई प्रतिष्ठा थी न ही कोई अस्तित्व। यह उस समय की वह वास्तविक सामाजिक स्थिति थी जिसमें धर्म एवं जागीरदारी व्यवस्था ने महिलाओं के अस्तित्व को पूरी तरह कुचल कर रख दिया था। शायद यही कारण है कि चाहकर भी नजीर अहमद प्रयास करने के बाद भी उस समय के रीतिरिवाजों से स्वयं को अलग नहीं कर सके, और अपनी लेखनी में पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के अस्तित्व को उसी दृष्टि से देखा जैसा उस समय की व्यवस्था एवं सोच चाहती थी।

सरशार का विषय अवध की सभ्यता एवं संस्कृति है। यही कारण है कि उन्होंने व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों पक्षों को उजागर किया है। उनका संबंध लखनऊ से था और वह शहर की संकरी गलियों से लेकर मोहल्लों तक परिचित थे। इन्हीं गलियों और मुहल्लों में घूम-घूम कर उन्होंने अपना साहित्यिक अवलोकन किया था। उनके उपन्यास में महिलों के अन्दर बेगमों के जीवन से कहीं अधिक रोचक एवं जीवित छवि महल के उस भाग में दिखाई देती है जो पुरूषों का था। यह पुरूष नवाब थे, धन दौलत एवं भोग विलास के वह समस्त अधिकार उनके पास थे, जिससे बेगमों को वंचित किया गया था। अवध की सभ्यता एवं संस्कृति सरशार के उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण अंग है इसलिए नवाबों की पटरानियां उनकी संरक्षक बनकर उभरती हैं। वह अपनी भाषा पहनावे एवं रख-रखाव में ऐसा कोई कार्य नहीं करती कि उन्हें असभ्य कहा जाए। यह समस्त महिलाएं चारदीवारी की पाबंद थीं और रीति-रिवाज के बंधन में रहते हुए, इन्हें बहुत कम सैर और मनोरंजन के अवसर मिल पाते थे।

सरशार ने अपने उपन्यासों में अवध की बेगमों की छवि को प्रस्तुत करते समय उनमें पतिव्रता, रख-रखाव, शराफत, इज्जत एवं बलिदान जैसे गुणों को विशेष स्थान दिया। इसका उदाहरण १८९० में प्रकाशित उपन्यास ''सैरे कोहसार'' का चरित्र नवाब नादिर जहां बेगम और जामे सरशार के नवाब अमीनउद्दीन की पत्नी हैं। यह महिलाएं नवाबों के गिरे हुए चरित्र के मुकाबले में उच्च्य चरित्र प्रस्तुत करती हैं। परन्तु अवध की इन उच्चवर्गीय महिलाओं की स्थिति उनके घर परिवार एवं पति की इच्छा पूर्ति तक ही सीमित है। यह सेवा भवन उनके जीवन का आधार है। इसके बदले में उन्हें कीमती वस्त्र एवं आभूषण मिल जाते थे और उनके जीवन का अधिकतर समय साज-श्रंगार में बीत जाता था अैर वे उसी में खुश भी नजर आती हैं। सरशार ने अपने उपन्यास में मुगलानी अर्थात रखैल या लौंडी की उपस्थिति को भी चित्रित किया है। एक सुन्दर एवं पतिव्रता पटरानी के होते हुए नवाबों को इस प्रकार की बाजारी औरतों से संबंध उस समय की महिलाओं की सामाजिक स्थिति को दर्शाता है। इसका प्रमुख कारण महिलाओं का घर की चारदीवारी में बंद रहना, शिक्षा से दूरी और अपने अधिकारों का ज्ञान न होना था। अवध के अधिकतर घर इन मुगलानी औरतों के प्रभाव में थे, जो घरों में बच्चों के पालन-पोषण के लिए रखी जाती थीं। परन्तु धीरे-धीरे इनका प्रभाव इतना बढ़ गया कि यह पालन-पोषण के अलावा दूसरे कामों में भी अपनी भूमिका दिखाने लगीं। सरशार ने अपने उपन्यास में इन महिलाओं को त्रिया चरित्र वाली कहा जो हंसते खेलते घर को बर्बाद करने का काम करती थीं।

सरशार की आदर्श नारी जो बेगम थीं वह पर्दे में दिखाई देती हैं और यह पवित्रता का उदाहरण भी हैं। सरशार भी नजीर अहमद की भांति महिला शिक्षा का उद्देश्य घरेलू शिक्षा को ही

समझते हैं ताकि वह अच्छी पत्नी व अच्छी मां बन सकें। उनके उपन्यास में आदर्श महिला एक ऐसी नारी है जो पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति की संरक्षक है। सरशार महिलाओं की शिक्षा की एक सीमित सोच रखते हैं।

हादी रूसवा (१८५८-१६३१) के उपन्यासों में पहली बार एक कलात्मक पक्ष का अनुभव होता है। उनकी लेखनी में सामाजिक माहौल और नैतिकता के विषय पुरूष एवं महिला दोनों से संबंधित हैं। हादी रूसवा ने समाज के निर्माण एवं विनाश के लिए महिलाओं के उत्तरदायित्व से मुंह नहीं मोड़ा। रूसवा ने अपने उपन्यास में निचले वर्ग की महिलाओं, जो निर्धनता और अशिक्षा के कारण नैतिकता से गिर चुकी थीं और वे समाज को बर्बादी के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकती थीं, का चित्रण किया है। यह समाज की वे महिलाएं थीं जिनके सामने इज्जत, शराफत और नैतिकता का कोई अर्थ नहीं था। इनका प्रमुख उद्देश्य विलासिता में डूबे नवाबों को मूर्ख बनाकर इनकी कमजोरियों का फायदा उठाकर उनकी दौलत लूटना था। हादी रूसवां के उपन्यास में कुछ चरित्र जैसे अख्तरी बेगम, अख्तरी शहजादी में, बुआ हुसैनी इसका सटीक उदाहरण है।

लखनऊ के सामाजिक पतन की कहानी वेश्याओं की चर्चा के बिना पूर्ण नहीं हो पाती। हादी रूसवा ने अपने उपन्यास में समाज और वेश्याओं के आपसी सम्बन्धों का परीक्षण किया। उमराव जान अदा में खानम का चकला एक ऐसा दपर्ण है, जिसमें अवध के सामाजिक वातावरण एवं उस समय के नैतिक मूल्यों के खोखलेपन का तमाशा देखा जा सकता हैं। एक ओर रूसवा ने जहां इन चकलों के जन्म के कारणों को उजागर किया वहीं दूसरी ओर यह भी प्रस्तुत किया कि लखनऊ की ये वेश्यायें केवल नवाबों और अय्याश रईसों को अपनी अदा से ही नहीं लुभाती बल्कि खुद को धार्मिक कहने वाला पुरूष वर्ग भी इनकी अदा एवं लुभावने अंदाज से नहीं बच सका। रूसवा की सहानुभूति उमराव जान एवं खुर्शीद जैसी वेश्याओं के साथ हे, जो परिस्थितियों की मारी हैं और इस व्यवसाय में ढकेल दी गई हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हादी रूसवा ने अपने उपन्यास में अवध के पतन के पश्चात मध्यम वर्गीय परिवारों की महिलाओं मे जो बुराइयां पैदा हो चुकी थीं, उन्हें भी प्रस्तुत किया। रूसवा ऐसी स्त्रियों के सुधार हेतु शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। एक आशा की किरण रूसवा के उपन्यास में जो महिला उद्धार की नजर आती है वह शिक्षा है, क्योंकि लेखक यह मानता है कि इससे महिलाओं में परिस्थितियों से लड़ने का हौंसला पैदा होगा।

प्रेमचन्द का समय भारतीय राजनीति की जागृति का समय रहा। भारतीय समाज में उदारवादी विचार एवं आंदोलन का आरम्भ हो रहा था। मानवतावादी सोच, शिक्षा के लिए प्रयास एवं आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज के सुधारवादी आन्दोलन ने प्रेमचन्द की लेखनी पर भी प्रभाव डाला। भारतीय समाज में नारीवाद के विषय पर प्रेमचन्द की लेखनी ने तीखा प्रहार किया। उनके उपन्यास का विषय सामाजिक मुद्दे बने फिर चाहे वह विधवा की समस्या हो, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह या स्त्रियों का सम्मान एवं सशक्तीकरण। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में भारतीय एवं ग्रामीण परिपेक्ष्य को आधार बनाया। वह महिलाओं की बराबरी एवं अधिकारों पर लिखते हैं परन्तु उनकी सीमा भारतीयता एवं अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति है।

प्रेमचन्द महिलाओं के आर्थिक स्वावलंबन के पक्ष में हैं परन्तु वह इस पक्ष में नहीं कि इस आर्थिक लाभ के लिए अपने स्वाभिमान और शरीर के साथ समझौता करना पड़े। वह उस प्रक्रिया की आलोचना करते हैं, जहां महिला का सम्मान दांव पर लगा दिया जाता है या उसे पूंजीपति समाज में केवल एक 'वस्तु' समझा जाता है। प्रेमचन्द महिलाओं में जागरूकता पैदा करने के लिए शिक्षा को आधार मानते हैं परन्तु वह पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से भारतीय महिलाओं को बचाना भी चाहते हैं। उनका यह विचार था कि भारतीय महिलाएं पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव में आकर जो संस्कृति अपना रही हैं वह उनके चरित्र को ऊंचा नहीं बना सकती। प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास गोदान में मिस मालती का चरित्र कुछ इसी प्रकार का है। प्रेमचन्द का मानना है कि मालती जैसी महिलाएं जो पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हैं, वे न तो समाज निर्माण में सहायक हो सकती हैं, न ही भारतीय महिलाएं उन पर गर्व कर सकती हैं। प्रेमचन्द का मानना था कि एक नारी का अस्तित्व उस समय पूर्ण माना जाता है जब वह एक अच्छी मां और एक अच्छी पत्नी कहलाती है। स्त्री-पुरूष के संदर्भ में प्रेमचन्द दोनों के स्वभाव के बारे में लिखते हैं कि पुरूष में थोड़ा पशुत्व स्वभाव का समावेश होता है जिस पर वह प्रयास करके भी नियंत्रण नहीं कर पाता। यही पशुत्व प्रवृत्ति उसे पुरूष बनाती है। उद्विकास की प्रक्रिया में वह नारी से बहुत पीछे है। जिस दिन उसकी यह यात्रा पूरी हो जाएगी, शायद वह भी नारी हो जाएगा। सहानुभूति, दया, बलिदान एवं सेवा इन्हीं आधारों पर दुनिया की व्यवस्था स्थापित है और ये सब नारीवादी गुण हैं। अगर नारी इतना समझ ले तो फिर दोनों का जीवन सुखी हो जाए। जब नारी पशु के साथ, पशु बन जाती है तो दुखी होती है।

प्रेमचन्द के उपन्यास में नारी की जो अवधारणा सामने आती है, वह प्राचीन हिन्दू नारी की उच्च नैतिक विशेषताएं हैं, परन्तु उसमें पश्चिमी सभ्यता के गुणों की भी कहीं-कहीं झलक दिखाई देती है। गोदान में गोबिन्दी और बेवा (विधवा) में प्रेमा नारी का उच्च चरित्र प्रस्तुत करती हैं। ये वे नारियां हैं जो हिन्दूओं के मध्यम वर्गीय परिवारों से सम्बन्ध रखती हैं। अपने कर्तव्यों का इन्हें ज्ञान था और फिर चाहे वह बेटी हो, पत्नी हो या मां, इस दायित्व को वह प्रेमचन्द के उपन्यास में निभाती हुई दिखाई देती हैं। गांव में रहने वाली महिलाओं को भी प्रेमचन्द आत्मनिर्भर व स्वाभिमानी बनाना चाहते थे और इसका चित्रण भी उनकी लेखनी में हुआ है।

नजीर अहमद, सरशार, हादी रूसवा एवं प्रेमचन्द के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय परीक्षण इस तथ्य को उजागर करता है कि वैचारिक दृष्टि से प्रेमचन्द की कृतियां वास्तविकता के अधिक समीप हैं। इन्होंने हिन्दू समाज में नारी की स्थिति और उसकी समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया। नारीवाद और नारियों के विषय पर स्वतंत्रता पूर्व जो उपन्यास उर्दू साहित्य की धरोहर बना उसमें सामाजिक विषयों और नारी समस्या को पर्याप्त स्थान मिला। प्रेमचन्द के समय में बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, तलाक, विधवापन, अशिक्षा जैसी समस्या ने भारतीय समाज को जकड़ रखा था। प्रेमचन्द इनसे नारियों को मुक्ति दिलाने का प्रयास करते हुए नजर आते हैं। इसके साथ ही साथ प्रेमचन्द समाज को उसकी जिम्मेदारी का आभास कराते हैं, जिसमें नारी अपने अधिकारों का संरक्षण कर सके।

उपर्युक्त समस्त चर्चा का यह परिणाम निकलता है कि उर्दू उपन्यास के प्रारम्भिक चरण में नारियों को देवी या नाज नखरे दिखाने वाली नारी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया बल्कि उनकी मुख्य भूमिका की चर्चा भी हुई। नजीर अहमद, सरशार ने नारी की पारिवारिक समस्याओं, समाजीकरण शिक्षा, अंधविश्वास एवं पर्दा जैसी सामाजिक समस्याओं को उपन्यास में प्रमुख रूप से स्थान दिया।यह समस्त विषय चर्चा में केवल आये ही नहीं बल्कि कहीं-कहीं इनका हल भी प्रस्तुत किया गया। रूसवा के उपन्यास में नारी वेश्या के रूप में सामने आती है और नारी के इस रूप से समाज मुंह नहीं मोड़ सकता और रूसवा ने इस ओर सामाजिक चितकों का ध्यान आकर्षित किया। प्रेमचन्द ने भारतीय धरती का दुःख भोगती नारी की समस्या और उसकी मानसिक उलझन को अपना विषय बनाया प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं पर पहली बार नारी अपनी आवाज उठाती हुई नजर आती है। प्रेमचन्द के इस प्रयास के साथ ही उर्दू में वास्तविकता के चित्रण का युग प्रारम्भ हुआ और नारीवाद के विषय को उर्दू उपन्यास में एक प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ।

सन्दर्भ

१. जमली जालबी, 'तारीखे आदल उर्दू', मजलिसे तरक्की अदब, १६८४

२. बजही मुल्ला, 'सब रस', लाहौर एकेडमी, १६६४

३. फहमीदा कबीर, 'उर्दू नावेल में औरत का तसव्वुर', मकतबा जामिया लिमिटेड, १६६२

४. अहमद डिप्टी नजीर, 'मरातुल उरूस', उर्दू पब्लिक लाइब्रेरी, आई.सी.बी.एन. ६६६-४१६-२०३-०२०

५. अहमद डिप्टी नजीर, 'तौबतुन नूसूह', उर्दू पब्लिक लाइब्रेरी, आई.सी.बी.एन. ६६६-४१६-२०३-०२१

६. सरशार रतन नाथ धर, 'फसानए आजाद एवं सैरे कोहेसार', नेशनल बुक ट्रस्ट, २००१

७. रूसवा मिर्जा हादी, 'उमराव जान अदा', संगमील प्रकाशन, २००७

८. प्रेमचन्द मुन्शी, 'गोदान', रूपा एण्ड कम्पनी, २००६

६. प्रेमचन्द मुन्शी, 'बेबा', स्टार बुक इंटरनेशनल, लंदन, १६६०

१०. ओलडनबर्ग बीना तलवार, 'द मेकिंग आफ कोलोनियल लखनऊ', प्रिंसटर्न यूनीवर्सिटी प्रेस, १६८४

११. मुखर्जी मीनाक्षी, 'रियलिजम एण्ड रियलटी : द नावेल एण्ड सोसायटी इन इण्डिया', आक्सफोर्ड प्रेस, १६८५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

चीनी मिट्टी उद्योग रोजगार का उत्तम साधन : समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ० अमिता सिंह

वैश्वीकृत उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था में वही देश सारे तुरूप के पत्ते अपने पास रख सकेगा, जिसके पास उद्योग और हस्तशिल्प दोनों का मजबूत आधार होगा। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उपभोक्ता परिष्कृत और कठोर माँगे रखने वाले हो गये हैं। वे अपनी तरह का अकेला और अनूठा उत्पाद चाहते हैं। बाजारों में आमतौर पर बिकने वाले एक ही ढर्रे के उत्पादों के स्थान पर वे हाथ से बने विशिष्ट उत्पादों के मुरीद होते हैं। उनमें चीनी मिट्टी उद्योग भी एक मुरीद है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत चीनी मिट्टी उद्योग की स्थिति, स्वामित्व, पूंजीनिवेश के आधार, श्रमिक-मालिक संबंध आदि का समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

विडंबनाओं से भरे राष्ट्र में एक विडंबना भारत का उसके शिल्प और शिल्पियों के प्रति नजरिया है। अधिकांश विदेशियों के लिए वे भारत की जान हैं, ऐसा कुछ जो उन्हें दूसरों से अलग और अनूठा बनाता है। पश्चिमी देश जब पिछली दो सदियों के अपने औद्योगीकरण और भारी उत्पादन पर नजर डालते हैं तो उन्हें उसका और भी मलाल होता है कि भारत में शिल्प और शिल्पियों की स्थिति अच्छी नहीं है।[१] देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर गरीब लोग मुख्यतः अकुशल श्रम से प्राप्त आय पर निर्भर रहते हैं। श्रमिकों की अपर्याप्त मांग के कारण अथवा सामान्य प्रकृति के अदृश्य संकटों जैसे प्राकृतिक आपदा अथवा रोग से उनके रोजगार के अवसरों को गंभीर नुकसान होता है। इसके फलस्वरूप गरीब ग्रामीण प्रायः जीविका की अंतिम दहलीज पर खड़े रहते हैं और उनकी अस्थायी गरीबी से चिरकालीन करीबी में प्रवेश की संभावनाएं काफी बढ़ जाती हैं।[२]

समस्या कथन : भारत एक ग्राम प्रधान देश है। वर्ष २०११ का जनगणना के अनुसार यहाँ की ८३.३१ करोड़ जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा कुल जनसंख्या का लगभग ५२ प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। साथ ही जनाधिक्य, कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते भार, छिपी हुई बेरोजगारी, व्यापक निरक्षरता, भूमि अपखंडन व विखंडन, गरीबों की भयावह स्थिति अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन, मानव शक्ति का कुसमायोजन, निम्न उत्पादकता, प्रति व्यक्ति निम्न आय, औद्योगीकरण की धीमी गति, आर्थिक कुचक्रों का जोर तथा उपयुक्त सामाजिक वातावरण व मनोवृत्ति के अभाव जैसी समस्याओं से ग्रसित है।[३] इन समस्याओं के समाधान के लिए भारत के गांवों में रोजगार के तमाम साधन उपलब्ध हैं बस जरूरत है उनके बेहतर प्रबंधन की। शिक्षित बेरोजगार कृषि आधारित उद्योग अपनाकर न सिर्फ स्वावलम्बी बन सकते हैं, बल्कि ग्रामीण क्षेत्र में अपने आस-पास रहने वाले नौजवानों को रोजगार भी उपलब्ध करा सकते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे रोजगार के लिए सरकार भी दोनों हाथ से सहयोग कर रही है। न सिर्फ आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं बल्कि सम्बन्धित रोजगार से तैयार होने वाले उत्पाद की बिक्री एवं रोजगार को बढ़ाने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं।[४]

आर्थिक विकास के लिए समाधान की खोज हेतु अपने शोधों में अर्थशास्त्रियों और नीति निर्माताओं ने आम लोगों की आंतरिक शक्ति और उद्यमिता कौशल को संकुचित कर देखा है। संसाधनों की जो भी आपूर्ति और संभावना हो उनमें तब तक किसी भी तरह का परिवर्तन सम्भव नहीं है, जब तक कि इस सभी संसाधनों को किसी उद्यमी द्वारा प्रयोग में नहीं लाया जाता है। इस दृष्टि से एक उद्यमी को एक परिवर्तन कारक एवं उत्प्रेरक के रूप में वर्णित किया जाना ही उचित होगा। उद्यमियों को उनकी दूरदृष्टि, प्रेरणा और प्रतिभा के कारण जाना जाता है, जो कि अवसरों को पहचानने और समाज के कल्याण के लिए उनका दोहन करने में दक्ष होते हैं तथा उद्यमी संसाधनों के लिए आर्थिक मूल्य प्रदान करते हैं।[५] चीनियों की हमारे शिल्प-कौशल पर लंबे समय से नजर रही है और वे पिछले एक दशक से भी अधिक समय से भारत से शिल्पियों को अपने देश बुलाकर ले जा रहे हैं- कोल्हापुरी चप्पल बनाने वाले चर्म शिल्पियों से लेकर सहारनपुर के काष्ठ शिल्पियों, कांचीपुरम (का जीवाश्म) साड़ी के बुनकरों और शैल शिल्पियों तक, ताकि वे अपना शिल्प ज्ञान चीनी कारीगरों को सिखा सकें। अन्य एशियाई देशों से समझदारी में एक कदम आगे रहने वाले चीनी लोगों ने महसूस किया कि वैश्वीकृत उपभोक्तावादी अर्थ व्यवस्था में वही देश सक्षम होगा जिसके पास उद्योग और हस्तशिल्प दोनों का मजबूत आधार होगा।[६]

❑ एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.)

अवधारणात्मक विश्लेषण : प्रस्तुत शोध-पत्र में जिन अवधारणाओं को सम्मिलित किया गया है, उनको परिभाषित करना यहाँ समीचीन ही नहीं अपितु अपरिहार्य भी है। अस्तु इन अवधारणाओं का विश्लेषण इस प्रकार है -

उद्योग (Industry) : मशीन तथा ईधन शक्ति पर आधारित उत्पादन के विशिष्ट रूप को उद्योग कहते हैं। संक्षेप में मशीनीकृत उत्पादन प्रणाली उद्योग के नाम से जानी जाती है।[७] उद्योग व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग या तो उपभोक्ता प्रत्यक्ष रूप से स्वयं कर लेता है अथवा अन्य उद्योंग अपने उत्पादन में करते हैं। 'उद्योग' शब्द का प्रयोग संकुचित व विस्तृत दोनों ही अर्थों में किया जाता है। संकुचित अर्थ में उपलब्ध प्राकृतिक कच्चे पदार्थों से उत्पादक वस्तुओं तथा उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करना 'उद्योग' कहलाता है। विस्तृत अर्थ में उद्योग के अन्तर्गत प्राकृतिक उद्योग, खनन उद्योग निर्माण उद्योग और रचनात्मक उद्योग भी आ जाते हैं।[८] जोर्ज गिल्डर के अनुसार - "हम सभी अपने जीवन-यापन और प्रगति के लिए उन विशेष पुरूषों महिलाओं के साहस और रचनात्मकता पर निर्भर हैं जो जोखिम उठाकर हमारी समृद्धि में वृद्धि करते हैं।"[९]

मिट्टी : मिट्टी को अंग्रेजी भाषा में आरगाइल कहते हैं। यह शब्द उन सूक्ष्मकणिक खनिज पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है, जो बहुत से खनिजों से मिलकर बने हो तथा जिनके मुख्य गुण प्रधानतः तीन हों -

१. गीले होने पर लचीलापन।

२. सूखने पर आकृति को धारण करने की क्षमता।

३. गरम करने पर पूर्व आकार का बिना खोये ही कठोर हो जाना।

मिट्टी की उत्पत्ति : मिट्टी आग्नेय चट्टानों का विच्छेदित पदार्थ है। ये चट्टानें मुख्यतः एल्यूमिना तथा रेत से बनी होती हैं। चट्टानें प्राकृतिक साधनों द्वारा विच्छेदित होकर अति सूक्ष्म कणों वाले लचीले या अर्द्ध लचीले पिण्ड में बदल जाती हैं। जब मूल चट्टान में चूना, मैगनीशिया, लोहा आदि अपद्रव्य होते हैं तो विच्छेदन से अशुद्ध मिट्टी मिलती है। फेल्सपार चट्टान से अपेक्षाकृत शुद्ध श्वेत मिट्टी मिलती है जिसे केओलिन कहते हैं।

केओलिन या चीनी मिट्टी : केओलिन चीनी शब्द काउलिंग का बिगड़ा रूप है जिसका अर्थ होता है ऊँचा टापू। काउलिंग एक पहाड़ का भी नाम है जो चीन में जाऊ-चाऊ के निकट है। यहाँ की मिट्टी प्राचीन चीन निवासी पोरसिलेन बर्तन बनाने के काम में लाते थे। अब यह शब्द प्रायः उन प्राथमिक मिट्टियों के लिए प्रयुक्त होता है जो साधारणतः रंग में श्वेत हों तथा ऐसे चट्टानों से बनी हों। इंगलैण्ड में कार्नवाल तथा डैवोन नामक स्थानों से प्राप्त विच्छेदित ग्रेनाइट को धोने से जो श्वेत मिट्टी मिलती है उसी को चीनी मिट्टी कहा जाता है। अमेरिका में केओलिन शब्द कुछ श्वेत गौण मिट्टियों के लिए भी प्रयोग किया जाता है। चीन के चीनी मिट्टी के बर्तन कायोलिन और ट्नट्स के मिश्रण के बने होते हैं। ट्नट्स का इस्तेमाल पाउडर के रूप में चमकाने के लिए किया जाता है और यह सोचने के कई कारण है कि बर्तन के ढ़ाचे में इसका इस्तेमाल कड़े तपाये हुए भूरे पदार्थों के ढंाचे के चमकाने और जोड़ने में किया जाता है।[१०]

अध्ययन का उद्देश्य : भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन काल से ही रंग और रेखा के सुविकसित और कुशलतापूर्ण सौन्दर्यात्मक प्रयोग पर पहुंचने में निपुण थी और उन क्रमिक उतार-चढ़ाव ह्रास के कालों तथा मौलिकता एवं ओजस्विता के नये अविर्भावों के लिए अवसर देते हुए जिनमें से मानव का मन सभी देशों से गुजरता हुआ अपनी दृढ़ परम्परा तथा मूलभूत भावना जो पहाड़ों में बनी अजन्ता की गुफाओं में अपनी सफलता की चरम सीमा के रूप में अभी तक सुरक्षित है।[११] प्रस्तुत शोध-पत्र के अध्ययन से जुड़े बिन्दु अधोलिखित रहे हैं -

१- चीनी मिट्टी उद्यमिता के उद्भव विकास एवं श्रमायोजन की प्रकृति का ज्ञापन करना।

२- लघु एवं कुटीर उद्योगों की श्रेणी में चीनी मिट्टी उद्यमिता का स्थान अंकित करना।

३- लघु उद्योग के परिचायक के रूप में चीनी मिट्टी उद्योग पर पड़ने वाले सामाजिक अवरोधक प्रवृत्ति तंत्र का विश्लेषण करना।

४- चीनी मिट्टी के उद्यम पर फाइवर / प्लास्टिक, कागज, पालिथिन, निर्मित संसाधनों के दुष्प्रभावों का विश्लेषण करना।

५- चीनी मिट्टी के उद्यम से सम्बद्ध कार्यदशाओं श्रमायोजन, पूँजी निवेश मूलक पहलुओं का विश्लेषण करना।

६- चीनी मिट्टी उद्यम से जुड़े सामाजिक, आर्थिक निर्धारकों की व्याख्या प्रस्तुत करना।

७- उद्यम से जुड़े कारीगरों एवं मजदूरों के समकालीन प्रवृत्तियों एवं मूल्य उन्मेष का विवेचन तथा चीनी मिट्टी उद्यम के भविष्य का आंकलन करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध-पत्र में समग्र के रूप में मीरजापुर

जनपद के चुनार तहसील में स्थित चुनार कस्बा एवं समीपवर्ती छः गाँवों पथरागढ, दरगाह, चेरापुर, टेकउर, सरैया व उस्मानपुर है। माँ विन्ध्यवासिनी एवं बाबा विश्वनाथ के मध्य में स्थित चुनार एक शक्तिपीठ व सिद्धस्थल है। भगवान वामन का प्रथम पवित्र चरण स्पर्श कर चुनार की धरती पवित्र हो गयी है और इस पहाड़ का आकार भी चरण पादुका जैसा है। इस पहाड़ के किनारे ही बसे है ये गांव जहां चीनी मिट्टी का काम होता है।

चुनार नगर में कुल ३६० तथा चयनित गांव के कुल २१० उद्यमियों में से दैव-निदर्शन के लाटरी विधि द्वारा नगरीय क्षेत्र से १६५ तथा चयनित गांवों से १०५ उद्यमियों कुल ३०० उद्यमियों का निर्दश अध्ययन हेतु किया गया है, जो अध्ययन क्षेत्र के समस्त उद्यमियों का ५० प्रतिशत प्रतिनिधि करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र की प्रकृति अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक दोनों ही प्रकार की है। अतः तथ्यों के संकलन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया हैं। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

उपलब्धियाँ : चीनी मिट्टी उद्योग में लगे हुए कारीगर/मजदूरों की सामाजिक स्थिति कैसी ही वे अपने निजी मकानों में रहते है या किराये के मकानों में रहते है यह जानने का प्रयास किया गया।

सारणी संख्या-०१

मकानों पर स्वामित्व एवं सामाजिक स्थिति

स्वामित्व	उच्च संभ्रान्त वर्ग	उच्च मध्यम वर्ग	मध्यम वर्ग	निम्न मध्यम वर्ग	निम्न वर्ग	योग
निजी	३५ (१३.०१)	२३ (८.५५)	१०५ (३६.०३)	६६ (२४.५३)	४० (१०.८७)	२६६ (१००.००)
किराये का	– –	१ (३.७०)	७ (२५.६२)	१४ (५१.८५)	५ (१८.५२)	२७ (१००.००)
अप्राप्त	– –	– –	२ (५०.००)	१ (२५.००)	१ (२५.००)	४ (१००.००)
योग	३५ (११.६७)	२४ (८.००)	११४ (३८.००)	८१ (२७.००)	४६ (१५.३३)	३०० (१००.००)

उपर्युक्त तालिका का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ३६.०३ प्रतिशत मध्यम वर्गीय उत्तरदाता ऐसे हैं जो अपने निजी मकानों में रहते हैं तथा २४.५३ प्रतिशत निम्न मध्यम वर्गीय उत्तरदाता अपने निजी मकानों में रहते हैं। इस प्रकार १३.०१ प्रतिशत उच्च संभ्रान्त वर्ग व ८.५५ प्रतिशत उत्तरदाता उच्च मध्यम वर्ग के हैं जो अपने निजी मकानों में रहते हैं। इस प्रकार किराये के मकानों में रहने वाले उच्च संभ्रान्त एवं उच्च मध्यम वर्ग के उत्तरदाताओं की संख्या नगण्य है। निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक उत्तरदाता अपने निजी मकानों में ही रहते है।

आय एवं व्यवसाय की संलग्नता द्वारा सामाजिक स्तर ऊँचा उठाने का प्रारूप : चीनी मिट्टी उद्योग में संलग्न रहने से उनका सामाजिक जीवन अच्छा हुआ है इससे सम्बन्धित विकल्पों पर विचार करने के उपरान्त उत्तरदाताओं ने निम्न निष्कर्ष ज्ञापित किए।

सारणी संख्या-०२

आय एवं व्यवसाय की संलग्नता द्वारा सामाजिक स्तर ऊँचा उठाने का प्रारूप

मासिक आय (रू० में)	हाँ	नहीं	अप्राप्य	योग
०-५०००	१३७(५७४.८६)	४३ (२२.४६)	३ (१.६४)	१८३ (१००.००)
५००१-१००००	५४(६६.२३)	२१(२६.६२)	३(३.८५)	७८(१००.००)
१०००१-१५०००	६(३४.६१)	१७(६५.३८)	–	२६(१००.००)
१५००१-२००००	५(७१.४२)	२(२८.५८)	–	७(१००.००)
२०००१-२५००० या उससे ऊपर	३(५०.००)	३(५०.००)	–	६(१००.००)
योग	**२०८(१००.००)**	**८६(१००.००)**	**६(१००.००)**	**३००(१००.००)**

तालिका २ से स्पष्ट होता हे कि बहुसंख्यक उत्तरदाता ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि व्यवसाय की संलग्नता द्वारा उनका सामाजिक जीवन का स्तर ऊँचा उठा है, जबकि व्यवसाय की संलग्नता द्वारा सामाजिक जीवन का स्तर ऊँचा नहीं उठा है कहने वाले उत्तरदाताओं की संख्या नगण्य है। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक उत्तरदाताओं के व्यवसाय की संलग्नता द्वारा उनका सामाजिक जीवन का स्तर ऊँचा उठा है।

सारणी संख्या-०३

ग्रामीण नगरीय पृष्ठभूमि और उच्च उद्योगपतियों व्यापार मण्डल और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय मण्डल से जुड़ना

मौलिक निवास स्थान	उच्च उद्योग पतियों से सम्पर्क	व्यवसाय मण्डल में सक्रिय सदस्यता	अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय मण्डल से सम्बन्ध	अन्य	अनिश्चित	योग
नगरीय	१२७ (६५.१३)	३१ (१५.६०)	१३ (६.६७)	२१ (१०.७७)	३ (१.५४)	१६५ (१००.००)
ग्रामीण	४७ (४४.७६)	२० (१६.०५)	– –	३८ (३६.१६)	– –	१०५ (१००.००)
योग-	**१७४ (५८.००)**	**५१ (१७.००)**	**१३ (४.३३)**	**५६ (१६.६७)**	**३ (१.००)**	**३०० (१००.००)**

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नगरों में रहने वाले ६५.१३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का उच्च उद्योगपतियों से सम्पर्क है तथा १५.८६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का व्यवसाय मण्डल में सक्रिय सदस्यता है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय मण्डल से सम्बन्धों का प्रतिशत बिल्कुल नगण्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक उत्तरदाता ऐसे है जो कि उच्च उद्योगपतियों से सम्पर्क रखते है। चीनी मिट्टी का कार्य जिस नगर में हो रहा है वहाँ पर कारीगर व मजदूर कब से निवास कर रहे है व दूसरा कोई व्यवसाय बदलते हैं कि नहीं/हाँ तो उससे क्या अन्तर आता है जानने का प्रयास किया गया जिसे सारणी संख्या ४ में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या-०४

नगर निवास की अवधि और व्यवसाय बदलने या अन्तर आने का प्रारूप -

अवधि	हाँ	नहीं	अप्राप्य	योग
जन्म से	८५ (४०.१६)	१२३ (५८.८५)	२ (०.६६)	२०६ (१००.००)
०-१०	६ (३५.२६)	१० (५८.८२)	१ (५.८८)	१७ (१००.००)
११-२०	१५ (७८.६५)	३ (१५.७६)	१ (५.२६)	१६ (१००.००)
२१-३०	५० (६०.६१)	४ (७.२६)	१ (१.८२)	५५ (१००.००)
योग	**१५५ (५१.६७)**	**१४० (४६.६७)**	**५ (१.६६)**	**३०० (१००.००)**

उपर्युक्त सारणी को दृष्टिगत करने से स्पष्ट होता है कि ४०. १६ प्रतिशत जो जन्म से नगर में रहते हैं का व्यवसाय बदला या परिवर्तन हुआ है किन्तु बहुसंख्यक उद्यमी जो जन्म से ही नगर के निवासी हैं का प्रतिशत ५८.८५ है जिनके व्यवसाय में कोई परिवर्तन या बदलाव नहीं हुआ है। ३० वर्षों से नगर में निवास करने वाले ६०.६१ प्रतिशत चीनी मिट्टी उद्यमी का व्यवसाय परिवर्तन हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक नगर निवास अवधि के बहुसंख्यक उद्यमी व्यवसाय बदले है या उसमें परिवर्तन हुआ है।

सारणी संख्या-०५

ग्रामीण नगरीय पृष्ठभूमि और संयुक्त अर्थव्यवस्था में रहते हुए विविध प्रकार के प्रतिष्ठान चलाना

मौलिक निवास	हाँ	नहीं	अप्राप्य	योग
नगरीय	८० (४१.०३)	११३ (५७.६५)	२ (१.०२)	१६५ (१००.००)
ग्रामीण	८ (७.६२)	६२ (८७.६२)	५ (४.७६)	१०५ (१००.००)
योग	**८८ (२६.३३)**	**२०५ (६८.३३)**	**७ (२.३३)**	**३०० (१००.००)**

उपर्युक्त सारणी संख्या-५ के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ५७.६५ प्रतिशत चीनी मिट्टी कारीगर, मजदूर (उद्यमी) जो नगर में रहते हैं के परिवार के लोग कोई अन्य उद्योग प्रतिष्ठान नहीं चला रहे हैं जबकि ४१.०३ प्रतिशत अन्य प्रकार के उद्योग प्रतिष्ठान चला रहे हैं। इसी तरह ग्रामीण कारीगर/मजदूर में से ८७.६२ प्रतिशत लोग कोई अन्य प्रतिष्ठान नहीं

चला रहे हैं जबकि ७.६२ प्रतिशत व्यक्ति अन्यत्र रोजगार में लगे हैं। अतः कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक (६८.३३ प्रतिशत) उद्यमियों के परिवार के लोग किसी प्रकार का उद्योग प्रतिष्ठान नहीं चला रहे हैं।

सारणी संख्या-०६

स्थायित्व एवं पूँजी निवेश के आधार का प्रारूप

स्थायित्व	स्वयं की संरक्षित पूँजी का	सरकारी एवं बैंक फाइनेन्स के	बड़े उद्योग पतियों से प्राप्त आर्थिक पूँजी	अनिश्चित	योग
निजी	१६४ (७२.१२)	२८ (१०.४१)	४३ (१५.४१)	४० (१५.६८)	२६६ (१००.००)
किराये का	१२ (४४.४४)	६ (२२.२२)	६ (३३.३३)	- -	२७ (१००.००)
अनिश्चित	४ (१००.००)	- -	- -	- -	४ (१००.००)
योग	**२१० (७०.००)**	**३४ (११.३३)**	**५२ (१७.३४)**	**४ (१.३३)**	**३०० (१००.००)**

सारणी संख्या-६ के अवलोकन से परिलक्षित है कि अपने निजी मकानों में रहने वाले ७२.१२ प्रतिशत उत्तरदाता स्वयं की संरक्षित पूँजी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जबकि किराए के मकान में ४४.४४ प्रतिशत उद्यमी भी अपने निजी पूँजी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं एवं ३३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता बड़े उद्योगपतियों से कर्ज लेकर अपने आवश्कताओं की पूर्ति करते हैं। सरकारी एवं बैंक फाइनेन्स के द्वारा अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले उद्यमियों का प्रतिशत कम है। अतः कहा जा सकता है कि अधिकांश ७० प्रतिशत उद्यमी अपने स्वयं की पूँजी से अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

सारणी संख्या-०७

श्रमिक एवं मालिकों का स्वरूप -

कार्य के प्रति श्रमिकों का स्वभाव	आवृत्ति	प्रतिशत
शांतिपूर्ण कर्तव्यनिष्ठ	२६२	८७.३३
अनुबन्धात्मक	२८	९.३३
संघर्षात्मक	५	१.६७
अनिश्चित	५	१.६७
योग	३००	१००.००

सारणी संख्या-७ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ८७.३३ प्रतिशत उद्यम के श्रमिक और मालिकों का स्वरूप शान्तिपूर्ण, कर्तव्यनिष्ठ है, तथा ९.३३ प्रतिशत का स्वरूप अनुबंधात्मक है। उद्योग में लगे हुए श्रमिक एवं मालिकों का सम्बन्ध संघर्षात्मक न के बराबर है।

सारणी संख्या-०८

श्रमिकों द्वारा अशान्ति पैदा होने पर उसके समाधान का स्वरूप -

अशान्ति के समाधान की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं का समझौता	२८८	९६.००
पुलिस की मदद	८	२.६६
अन्य कोई	२	०.६७
अनिश्चित	२	०.६७
योग	३००	१००.००

सारणी संख्या-८ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ९६ प्रतिशत उद्यमी श्रमिकों द्वारा अशान्ति पैदा होने पर आपस में समझौता कर लेते हैं, जबकि २.६६ प्रतिशत उद्यमी ऐसे हैं जो पुलिस की सहायता लेते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि अधिकांश उद्यमी श्रमिकों द्वारा अशान्ति पैदा किये जाने पर आपस में समझौता कर लेते हैं।

सारणी संख्या-०६
आयु एवं चीनी मिट्टी उद्योग में बड़े पैमाने पर विकास के लिए अपनी परम्पराओं में आवश्यक परिवर्तन लाना अनिवार्य है का प्रारूप –

अयु (वर्षों में)	सहमत	असहमत	अनिश्चित	येग
०-२५	४३ (६६.१६)	११ (१६.९२)	११ (१६.९२)	६५ (१००.००)
२६-३६	८६ (८६.८७)	७ (७.०७)	६ (६.०६)	९९ (१००.००)
३७-४७	५९ (७५.६४)	१० (१२.८२)	९ (११.५४)	७८ (१००.००)
४८-५८	२९ (७०.७३)	५ (१२.२०)	७ (१७.०७)	४१ (१००.००)
५९ और ऊपर	१७ (१००.००)	–	–	१७ (१००.००)
येग-	**२३४ (७८.००)**	**५३ (११.००)**	**३३ (११.००)**	**३०० (१००.००)**

सारणी संख्या-६ के अवलोकन से सुस्पष्ट होता है कि चीनी मिट्टी उद्योग में बड़े पैमाने पर विकास के लिए अपनी परम्पराओं में आवश्यक परिवर्तन लाना अनिवार्य है इसके लिए सभी प्रौढ़ उद्यमी ७५.६४ व ७०.७३ प्रतिशत सहमत हैं जबकि इसी वर्ग में १२.८२ व १२.२० प्रतिशत उद्यमी असहमत हैं। स्पष्ट है कि सभी आयु समूह के बहुसंख्यक उद्यमी यह मानते हैं कि उद्योग के बड़े पैमाने पर विकास के लिए अपनी परम्पराओं में आवश्यक परिवर्तन लाना जरूरी है।

निष्कर्ष : मनुष्य के जीवन में मिट्टी का बड़ा महत्व है। मिट्टी प्रायः सभी देशों तथा स्थानों में उपलब्ध है। इस कारण सभ्यता के प्रथम चरण से ही मिट्टी का उपयोग होता रहा है। मनुष्य की कल्पना चाहे वह सभ्यता के किसी भी क्रम में रही हो सदैव उड़ान लेती रही। उसने नाना प्रकार के मिट्टी के बर्तन तथा तश्तरियां बनाई और उन्हें अलंकृत करने का प्रयत्न किया। बाण ने जिन चार कलाओं का उल्लेख किया है उनमें मृणकला भी एक है। मृणकला के सबसे प्राचीन उदाहरण हड़प्पा संस्कृति के केन्द्र मोहन जोदड़ों तथा हड़प्पा से प्राप्त हुए हैं। आज भी भारत में मृणमूर्तियाँ, खिलौने तथा बर्तन प्रचुर मात्रा में बनाये जाते हैं। हर दृष्टि से इनका रूप बदल गया है किन्तु देश की ठोस परम्परा के अनुकूल ये वस्तुएँ आज भी लोकप्रिय हैं।

चीनी मिट्टी के बर्तन घर में उपयोगी है क्योंकि यह पर्यावरण के अनुकूल होते हैं इनसे पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है, क्योंकि मिट्टी के बने बर्तन व खिलौने पुनः मिट्टी में ही मिल जाते हैं। बहुसंख्यक अर्थव्यवस्था एवं सामयिक प्रौद्योगिकी ने मिट्टी के बर्तन, खिलौने, गुलदस्ते आदि पर गहरे संघात किये हैं क्योंकि आधुनिक प्रौद्योगिकी ने अपने प्लास्टिक एवं सिंथेटिक उत्पादनों के द्वारा इनको स्थानान्तरित करने का प्रयास किया है। ऐसी स्थिति में मिट्टी के बर्तन उपयोगी सामान एवं चीनी मिट्टी उद्योग द्वारा निर्मित वस्तुओं एवं विक्रय तथा उपभोग की मांग में गिरावट आई है, फिर भी भारतीय स्थानीय क्षेत्रों से लेकर के विदेशी पर्यटकों तक अपने घरों में सजावट एवं प्रतीकात्मक सांस्कृतिक मूल्य की वस्तुएं समझकर इनकी खरीद एवं उपयोग की तरफ उन्मुख हुए हैं यह प्रक्रिया आर्थिक एवं सामाजिक रूप से समृद्ध लोगों में उभरी है।

सन्दर्भ

१. तैयबजी लैला, 'भारतीय शिल्प प्रौद्योगिकी के युग में', योजना (हथकरघा एवं हस्त शिल्प), वर्ष ५५ अंक ५, मई २०११, पृ० ०६.
२. कुमार उमेश, 'ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार योजनाओं पर एक नजर', कुरूक्षेत्र, वर्ष ६०, अंक १२, अक्टूबर २०१४, पृ० २० .
३. सोलंकी अर्जुन, 'कृषि आधारित प्रमुख उद्योगः समस्या एवं सुझाव', कुरूक्षेत्र, वर्ष ६०, अंक ७, मई २०१४, पृ० ०३ .
४. मौर्य बलवन्त सिंह, 'कृषि आधारित रोजगार से बदली ग्रामीण भारत की तस्वीर', कुरूक्षेत्र वर्ष ६०, अंक १२, अक्टूबर २०१४ पृ० २८ .
५. स्वामी जी० अंजनेय, 'पर्यटन उद्यमिता : संभावित क्षेत्र', योजना, वर्ष ५६, अंक ५, मई २०१५, पृ० २५ .
६. तैयबजी लैला, पूर्वोक्त, पृ० ६ .
७. रावत हरिकृष्ण, उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, २०१४, पृ० २४४ .
८. सिन्हा वी०सी०, सिन्हा जया, 'औद्योगिक समाज विज्ञान', मयूर पेपर वैक्स, २००४, पृ० ४८ .
९. स्वामी जी० अंजनेय, पूर्वोक्त, पृ० २५.
१०. चन्द्रकला सतीश, 'भारतीय मृत्तिका कला', प्रतीक प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ .
११. अरविन्द, 'भारतीय संस्कृति के आधार', श्री अरविन्द सोसाइटी पांडुचेरी, १९८८, पृ० २८८ .

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों की प्रासंगिकता

❑ **डॉ० शिवचन्द सिंह रावत**

आज देश में अनेक प्रकार से समाज में विद्वेष फैलाया जा रहा है। धर्म के नाम पर तरह-तरह की अनर्गल बातें करके समाज के शाँतिपूर्ण माहौल को दूषित करने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में विवेकानन्द के विचार व विश्व धर्म संसद में उनके दिये व्याख्यानों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, जिनमें उन्होंने भारतीय संस्कृति की गरिमा, सर्वधर्म समभाव, राष्ट्रीय एकता आदि पर बल दिया है। विवेकानन्द वह महान व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने विश्व के समक्ष न केवल भारतीय संस्कृति को प्रबल तर्कों के साथ प्रस्तुत किया है, बल्कि साथ ही हिन्दू धर्म के बारे में फैली भ्रान्तियों को भी दूर करने का प्रयास किया है। ऐसे महान सपूत का जन्म १२ जनवरी १८६३ ई० को कोलकाता में विश्वनाथ दत्त और उनकी पत्नी भुवनेश्वरी देवी के घर हुआ। उनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। यद्यपि उनके शैशव काल में कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना तो नहीं घटित हुई, जिसका प्रभाव उनके पूर्ण जीवन पर अमिट बना रहता, किन्तु उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में यह अवश्य कहा जा सकता है कि एक प्रकार से उनकी शिक्षा व्यवस्था ऐसी थी, जिससे सम्पूर्ण शारीरिक व मानसिक विकास संभव है। उनका ध्यान जिस प्रकार से मानसिक एवं वैचाारिक प्रगति की ओर रहा, उसी तरह उनका ध्यान शारीरिक विकास के प्रति भी रहा। उन्होंने संगीत, साहित्य आदि के क्षेत्र में तो दक्षता प्राप्त की ही, साथ ही साथ तैराकी, घुड़सवारी, कुश्ती आदि में भी प्रवीणता प्राप्त की।

> वर्तमान भारत में जहाँ समाज में अनेक बुराइयाँ अपना सिर उठा कर आपसी विद्वेष को भड़का रही हैं, वहीं ऐसी स्थिति में विवेकानन्द के भारतीय दर्शन की सार्वभौमिकता, सर्वधर्म समभाव, राष्ट्रीय एकता के विचार आज की स्थिति के लिए प्रासंगिक हैं। विवेकानन्द के इन विचारों से प्रेरणा लेकर हमें भारतीय धर्म व संस्कृति के गौरवपूर्ण अतीत से शिक्षा लेते हुए समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। धर्म के नाम पर आपसी मनमुटाव को बढ़ाने के बजाय हमें आपस में मिलजुल कर रहते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहायता करनी चाहिए, न कि समाज में विद्वेष फैलाना चाहिए। इस प्रकार जब हम समाज व राष्ट्र की एकता के लिए सार्थक प्रयास करेंगे। तभी विवेकानन्द के विचारों व व्याख्यानों का महत्त्व स्पष्ट होगा तथा साथ ही विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिकता भी हर युग में बनी रहेगी।

किशोरावस्था में उनके मन में ईश्वर को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई और इसी जिज्ञासा को शान्त करने के प्रयास में १८८१ ई० में स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट हुई। इस भेंट के फलस्वरूप उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। आरम्भ में अपनी संशयवादी दृष्टि के अनुरूप उन्होंने परमहंस की बातों को भी संशय की दृष्टि से देखा, किन्तु प्रारम्भिक संशय, उलझन एवं प्रतिवाद के बाद उन्होंने स्वामी रामकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण किया तथा उन्हें ही अपना पूर्ण गुरू एवं मार्ग-प्रदर्शक स्वीकार कर लिया।

१८८६ ई० में स्वामी रामकृष्ण के निधन के बाद उन्होंने अपने जीवन एवं कार्यों को नया मोड़ दिया। पहले तो उन्होंने संपूर्ण देश की विस्तृत यात्रा की तथा इस प्रकार देश की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की, जिससे वे सम्पूर्ण देशवासियों व देश के बारे में जान सकें। उन्होंने देखा कि देश की समृद्ध संस्कृति तथा आध यात्मिक परम्परा की जकड़ तो भारतीय जनमानस पर प्रबल एवं सुदृढ़ थी, किन्तु देश में निर्धनता के कारण उत्पन्न सामाजिक बुराइयाँ एवं निर्बलता भी व्यापक रूप में विद्यमान थी। इससे उन्होंने समझा कि आध्यात्मिक प्रगति तब तक संभव नहीं हो सकती, जब तक कि भौतिक स्तर की कमजोरियाँ दूर न हों। अतः उन्होंने एक व्यापक आध्यात्मिक क्रांति की आवश्यकता को महसूस किया और यह भी समझा कि उसके लिए सबल आध्यात्मिक नेतृत्व की भी आवश्यकता है। फलतः उन्होंने इसी दिशा में अपना योगदान देने का निश्चय किया।

जिस समय उनके मन में इस प्रकार की योजना बन रही थी, ठीक उसी समय एक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई कि उस आध्याात्मिक नेतृत्व की बागडोर सहज रूप में ही उनके हाथों में आ गयी। उन्हें सूचना मिली कि शिकागो में विश्व धर्म-सम्मेलन (पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स) आयोजित होने को है। उन्होंने वहाँ जाने का निश्चय किया और तय किया कि वहाँ वे भारतीय आध्यात्मिकता की शक्ति को विश्व के सामने प्रस्तुत करेंगे।

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली, (उत्तराखण्ड)**

शिकागो में उन्होंने केवल हिन्दू धर्म को ही विश्व के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया, अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को भी स्पष्ट किया। शिकागो धर्म सम्मेलन व अमेरिका तथा यूरोप के अन्य स्थानों पर दिये गये उनके भाषणों का ऐसा प्रभाव हुआ कि वे भारतीय आध्यात्मिकता के प्रतीक बन गये।

उन्होंने विश्व के अनेक देशों की वृहत् यात्राएँ कीं तथा वहाँ की अच्छी बातों को जानने व सीखने का प्रयास किया। विदेश से वापस आने पर स्वामी विवेकानन्द एक प्रमुख विचारक तथा भारतीय आध्यात्मिकता के प्रमुख चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अब उन्होंने कलकत्ता के निकट बेलूर में स्वामी रामकृष्ण आश्रम की स्थापना की तथा उस आश्रम के माध्यम से जनकल्याण, सेवा तथा सामाजिक सुधार का कार्य बड़े मनोयोग एवं लगन से प्रारम्भ किया। १८६६ में उन्होंने पुनः पश्चिम की यात्रा की तथा भारतीय आध्यात्मिकता का संदेश पुनः विदेशों में फैलाया। ४ जुलाई १६०२ ई० को उनका निधन हुआ, किन्तु उन्होने स्वामी रामकृष्ण आश्रम और उस आश्रम में सेवा -व्रत लेने वाले अनेक संन्यासियों की परम्परा इस रूप में स्थापित कर दी कि सेवा, सामाजिक सुधार तथा आध्यात्मिक चिंतन की सरिता तब से सतत प्रवाहित है। कालान्तर में यही नरेन्द्रनाथ विवेकानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए। विश्व धर्म संसद व विदेशों में दिये गये अपने व्याख्यानों में विवेकानन्द ने अनेक प्रकार से हिन्दू धर्म के साथ भारतीय संस्कृति व उसका महत्त्व, सर्वधर्म समभाव, भारतीय जनता, दरिद्रनारायण की पूजा, भारतीय नारी, भारतीय कला आदि विषयों को बड़े तार्किक ढंग से प्रकट किया। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं बिन्दुओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संस्कृति व उसका महत्त्व : भारत को औपनिवेशिक शासन काल में अंग्रेजों द्वारा इस तरह से विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया गया कि जैसे यह देश सदियों से केवल दासता को सहने के लिए ही बना है। अंग्रेजों द्वारा भारतीय इतिहास की व्याख्या ही इस ढंग से की गई थी, कि लगता था कि प्राचीन काल से दासता इसकी नियति है। भारतीय इतिहास के प्राचीन काल को जहाँ हिन्दू काल तथा मध्य काल को मुस्लिम काल कहा गया, वहीं यह भी स्पष्ट करने की कोशिश की गई कि इस देश पर हमेशा से ही विदेशियों का शासन रहा। कहा गया कि आर्य, शक, कुषाण, हूण, मुस्लिम आदि सभी इस देश में विदेशी थे। भारतीयों के सन्दर्भ में यह भी कहा गया कि वे अन्धविश्वासी, रूढ़िवादी, दम्भी व आत्मश्लाघा से युक्त हैं। इसी तरह भारत को विश्व के समक्ष जादूगरों, भिखमंगों आदि का देश कहा गया। हिन्दू शब्द को संकीर्ण अर्थ में प्रस्तुत कर उसे केवल एक धर्म विशेष से जोड़कर प्रस्तुत किया गया, जबकि हिन्दू शब्द केवल एक धर्म के लिए प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि यह भारत की संस्कृति व सभ्यता की पहचान है। इसी तथ्य को सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८६३ ई० में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में प्रस्तुत कर न केवल हिन्दू धर्म की सारगर्भित व्याख्या की, अपितु भारत के प्रति अमेरिका समेत विश्व का दृष्टिकोण भी परिवर्तित किया। वैसे भी हिन्दू शब्द की व्याख्या व उसकी उत्पत्ति को प्रसिद्ध इतिहासकार ए०एल० बाशम द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-'भारत की दो महान सरिताओं का उद्गम स्थल हिमालय है। ये दो महान सरिताएँ हैं सिन्धु व गंगा। सिन्धु नदी भारत में आदिम सभ्यता का केन्द्र रही है और इसी ने देश को हिन्दुस्तान नाम प्रदान किया है। सिन्धु नदी को फारसवासियों ने 'स' के उच्चारण में कठिनाई होने के कारण 'हिन्दू' कहकर पुकारा। फारस से यह शब्द यूनान देश में पहुँचा जहाँ सारा भारत देश इस पश्चिमी नदी के नाम से विख्यात हुआ। प्राचीन भारतीय अपने उपमहाद्वीप को जम्बू द्वीप (जम्बू वृक्ष का महाद्वीप) अथवा भारतवर्ष (पौराणिक सम्राट भरत के पुत्रों का देश) के नाम से पुकारते थे। अन्तिम नाम आंशिक रूप में वर्तमान भारतीय सरकार द्वारा भी अपनाया गया है। मुस्लिम आक्रमण के साथ फारसी नाम 'हिन्दुस्तान' के रूप में आया तथा प्राचीन धर्म को मानने वाले निवासी 'हिन्दू' कहलाये।"[1] इसी 'हिन्दू' धर्म की विस्तृत व्याख्या विवेकानन्द द्वारा विश्व धर्म सम्मेलन में इस प्रकार की गई- 'मैं ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयों, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता आ रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं'[2]

रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इवं।।

जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न भिन्न रूचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं। यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वतः ही गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत के प्रति उसकी घोषणा है-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वषः।।

-जो मेरी ओर आता है-चाहे किसी प्रकार से हो -मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।'[३] इस तरह विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की सहिष्णुता व सार्वभौमिकता को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। विवेकानन्द ने यूरोप व शेष विश्व को न केवल भारत से अच्छी तरह से परिचित कराया, बल्कि साथ ही उनके ज्ञान को भी विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया, क्योंकि १८वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक यूरोप के निवासियों को भारत के सन्दर्भ में कोई वास्तविक ज्ञान नहीं था, जो भी थोड़ा बहुत अध्ययन उन्होंने किया था, वह भी प्राचीन यूनानी एवं लैटिन लेखकों की रचनाओं के संक्षिप्त अंशों से प्राप्त किया था, किन्तु विवेकानन्द ने न केवल उन्हें भारत का वास्तविक ज्ञान कराया, बल्कि उन्हें भारत की संस्कृति से इतनी गहराई से परिचित कराया कि कई अमेरिकी व यूरोपीय उनके शिष्य बन गये। भारत की संस्कृति के बारे में यूरोपीय विद्वानों की धारणा तथा भारतीय जनमानस की स्थिति के बारे में ए०एल० बाशम ने लिखा है कि- 'यूरोपीय विद्वान जो एक विशेष प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों पर अपने को केन्द्रित करता है, यह धारणा बना लेता है कि प्राचीन भारत करोड़ों अन्धविश्वासी अनुगामियों पर अपने औदार्यपूर्ण और अनुर्वर विचारों का प्रभाव डालने वाले जीवन-विरक्त संन्यासियों का देश है, यह भ्रान्तिपूर्ण विचार तत्कालीन धर्मनिरपेक्ष साहित्य, मूर्तिकला एवं चित्रलेखन से पूर्णतः स्पष्ट है। यह बात और है कि एक सामान्य भारतीय किसी संन्यासी की मौखिक प्रशंसा एवं उसके आदर्शों का सम्मान कर ले, परन्तु वह अपने जीवन को विषादपूर्ण मानते हुए, उससे प्रत्येक मूल्य पर बचने का प्रयत्न कभी नहीं करता। इसके विपरीत उसने इस संसार को जैसा देखा, उसको उसी रूप में स्वीकार करने तथा उससे जो भी आनन्द प्राप्त हो सके, उसे साग्रह प्राप्त करने का वह सदा इच्छुक रहा। उपनिषदों की अपेक्षा 'दण्डी' का वह वर्णन जिसमें उसने एक तुलनात्मक निर्धन घर में साधारण भोजन के आनन्द का वर्णन किया है, प्राचीन भारतीय के दैनिक जीवन का सम्भवतः अधिक आदर्श रूप है।'[४] इसी तरह विवेकानन्द ने भी ५ अप्रैल १८९४ ई० में डिट्रायट, संयुक्त राज्य अमेरिका में दिये गये भाषण में कहा था कि- 'एक हिन्दू के अनुसार अपने लिए घर बनाना स्वार्थपरायणता है, इसलिए वह ईश्वर की उपासना और अतिथिदेव के सत्कार के लिए घर बनाता है। भोजन बनाना स्वार्थपरायणता है, अतः वह दीन जनों के लिए भोजन बनाता है। यदि कोई भूखा अतिथि आ जाय, तो वह अपने लिए भोजन सबसे अंत में परोसता है और यह भावना सम्पूर्ण भारत में व्याप्त है। भारत में कोई भी व्यक्ति भोजन और आश्रय की याचना कर सकता है और सभी घरों के द्वार उसके लिए खुल जाते हैं।'[५] ऐसी है भारतीय संस्कृति व ऐसे हैं भारत के लोग। इसीलिए भारतीय शास्त्रों में कहा भी गया है-

भारतीय जना धन्या धन्य अस्माकं परंपरा।

धन्यस्तु भारतभूमि धन्य भारत संस्कृति।।

इसी भारतीय संस्कृति को विश्व के समक्ष रखते हुए विवेकानन्द ने भारतीय जनता के बारे में १६ मार्च १९०० ई० को ओकलैण्ड में दिये गये अपने व्याख्यान में कहा - 'एशिया के अन्य देशों की भाँति, भारत में एकता का सूत्र भाषा या जाति न होकर धर्म है। यूरोप में जाति से राष्ट्र बनता है, किन्तु एशिया में विभिन्न मूल और विभिन्न भाषाओं के लोग, यदि उनका धर्म एक हो, राष्ट्र बन जाते हैं। उत्तरी भारत के लोग चार बड़े वर्गों में विभाजित हैं। दक्षिणी भारत की भाषाएँ उत्तरी भारत की भाषाओं से इतने मौलिक रूप से भिन्न हैं कि उनमें किसी प्रकार का संबंध दिखायी नहीं पड़ता। उत्तरी भारत के लोग उसी महान आर्य जाति के हैं, जिसमें पिरेनीज पर्वत की बेस्क जाति और फिनलैण्ड वालों को छोड़कर बाकी सब यूरोप वाले माने जाते हैं। दक्षिणी भारत के लोग प्राचीन मिस्श्रियों और सेमेटिक जाति के हैं। भारत में एक दूसरे की भाषाओं को सीखने की कठिनाइयों का उदाहरण देते हुए स्वामी जी ने कहा कि जब कभी मुझे दक्षिणी भारत जाने का अवसर मिला, तो संस्कृत में बात कर सकने वाले कुछ दुर्लभ व्यक्तियों को छोड़कर वहाँ के निवासियों से मैं सदैव अंग्रेजी में बात करता था।'[६] इस प्रकार विवेकानन्द ने स्पष्ट किया कि भारत के लोग राष्ट्र के रूप में न तो यूरोप की भाँति जाति के आधार पर संगठित हैं और न भाषा के आधार पर। वे तो अपने मानवीय गुणों के आधार पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, जो कि सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझते हैं और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को चरितार्थ करते हैं।

हिन्दू धर्म व उसकी विवेचना : हिन्दू धर्म को विवेकानन्द ने शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में १६ सितम्बर १८९३ ई० को अपने प्रसिद्ध व्याख्यान में इस प्रकार स्पष्ट किया- 'प्रागैतिहासिक युग से चले आने वाले केवल तीन ही धर्म

आज संसार में विद्यमान हैं- हिन्दू धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म। उनको अनेकानेक प्रचण्ड आघात सहने पड़े हैं, किन्तु फिर भी जीवित बने रहकर वे सभी अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, परन्तु जहाँ हम यह देखते हैं कि यहूदी धर्म ईसाई धर्म को आत्मसात नहीं कर सका, वरन् अपनी सर्वविजयिनी दुहिता- ईसाई धर्म - द्वारा अपने जन्म स्थान से निर्वासित कर दिया गया और केवल मुट्ठी भर पारसी ही अपने महान धर्म की गाथा के लिए अवशेष हैं, -वहाँ भारत में एक के बाद एक न जाने कितने सम्प्रदायों का उदय हुआ और उन्होंने वैदिक धर्म को जड़ से हिला सा दिया, किन्तु भयंकर भूकम्प के समय समुद्र तट के जल के समान वह कुछ समय पश्चात हजार गुना बलशाली होकर सर्वग्रासी आप्लावन के रूप में पुनः लौटने के लिए पीछे हट गया और जब यह सारा कोलाहल शान्त हो गया, तब इन समस्त धर्म-सम्प्रदायों को उनकी माता (हिन्दू धर्म) की विराट काया ने चूस लिया, आत्मसात कर लिया और अपने में पचा डाला।'[७]

आगे वे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- 'वेदान्त दर्शन की अत्युच्च आध्यात्मिक उड़ानों से लेकर आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनि मात्र प्रतीत होते हैं, मूर्ति-पूजा के निम्न स्तरीय विचारों एवं तदानुशंगिक अनेकानेक पौराणिक दन्तकथाओं तक और बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के निरीश्वरवाद -इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है। तब यह प्रश्न उठता है कि वह कौन सा एक सामान्य बिन्दु है, जहाँ पर इतनी विभिन्न दिशाओं में जाने वाली त्रिज्याएँ केन्द्रस्थ होती हैं? वह कौन सा एक सामान्य आधार है, जिस पर ये प्रचण्ड विरोधाभास आश्रित हैं?'[८] इसी प्रश्न का उत्तर वे इस प्रकार देते हैं-

'हिन्दू जाति ने अपना धर्म श्रुति-वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं। श्रोताओं को, संभव है यह बात हास्यास्पद लगे कि कोई पुस्तक अनादि और अनन्त कैसे हो सकती है। किन्तु वेदों का अर्थ कोई पुस्तक है ही नहीं। वेदों का अर्थ है, भिन्न- भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यों का संचित कोष। जिस प्रकार गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत मनुष्यों को पता लगने से पूर्व से ही अपना काम करता चला आ रहा था और आज यदि मनुष्य जाति उसे भूल भी जाय, तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत् का शासन करने वाले नियमों के संबंध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ और जीवात्माओं के आत्माओं के परम पिता के साथ जो नैतिक और आध्यात्मिक संबंध हैं, वे उनके आविष्कार के पूर्व भी थे और यदि हम उन्हें भूल भी जाएँ तो भी बने रहेंगे। इन नियमों और सत्यों का आविष्कार करने वाले 'ऋषि' कहलाते हैं और हम उनको पूर्णत्व तक पहुँची हुई आत्मा मानकर सम्मान देते हैं। श्रोताओं को मुझे यह बतलाते हुए हर्ष होता है कि इन महानतम ऋषियों में कुछ स्त्रियाँ भी थीं।'[९]

'यहाँ यह कहा जा सकता है कि ये नियम, नियम के रूप में अनंत भले ही हों, पर इनका आदि तो अवश्य ही होना चाहिए। वेद हमें यह सिखाते हैं कि सृष्टि का न आदि है, न अंत। विज्ञान ने हमें सिद्ध कर दिखाया है कि सम्रग विश्व की सारी ऊर्जा-समष्टि का परिमाण सदा एक सा रहता है। तो फिर, यदि ऐसा कोई समय था, जब कि किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं था, उस समय यह संपूर्ण व्यक्त ऊर्जा कहाँ थी? कोई कहते हैं कि ईश्वर में ही वह सब अव्यक्त रूप में निहित थी। तब तो ईश्वर कभी अव्यक्त और कभी व्यक्त है, इससे तो वह विकारशील हो जायेगा। प्रत्येक विकारशील पदार्थ यौगिक होता है और हर यौगिक पदार्थ में वह परिवर्तन अवश्यम्भावी है, जिसे हम विनाश कहते हैं। इस तरह तो ईश्वर की मृत्यु हो जायेगी, जो अनर्गल है। अतः ऐसा समय कभी नहीं था, जब यह सृष्टि नहीं थी।'[१०]

अतः हिन्दुओं की दृष्टि में समस्त धर्म-जगत् भिन्न भिन्न रूचि वाले स्त्री-पुरूषों की, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से होते हुए एक ही लक्ष्य की ओर यात्रा है, प्रगति है। प्रत्येक धर्म जड़भावापन्न मानव से एक ईश्वर का उद्भव कर रहा है और वही ईश्वर उन सबका प्रेरक है, तो फिर इतने परस्पर विरोध क्यों है?हिन्दुओं का ये कहना कि ये विरोध केवल आभासी हैं। उनकी उत्पत्ति सत्य के द्वारा भिन्न अवस्थाओं और प्रकृतियों के अनुरूप अपना समायोजन करते समय होती है। वहीं एक ज्योति भिन्न-भिन्न रंग के काँच में से भिन्न भिन्न रूप से प्रकट होती है। समायोजन के लिए इस प्रकार की अल्प विविधता आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक के अन्तस्तल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में हिन्दुओं को यह उपदेश दिया है, प्रत्येक धर्म में मैं, मोती की माला में सूत्र की तरह पिरोया हुआ हूँ। जहाँ भी तुम्हें मानव-सृष्टि को उन्नत बनाने वाली और पावन करने वाली अतिशय पवित्रता और असाधारण शक्ति दिखायी दे, तो जान लो कि वह मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ है और इस शिक्षा का परिणाम क्या हुआ है?सारे संसार को मेरी यह चुनौती है कि वह समग्र दर्शनशास्त्र में मुझे एक ऐसी उक्ति तो दिखा दे, जिसमें यह बताया गया हो कि केवल हिन्दुओं का ही उद्धार होगा, दूसरों का नहीं। व्यास कहते हैं, हमारी जाति और संप्रदाय की सीमा के बाहर भी पूर्णत्व तक पहुँचे हुए मनुष्य हैं।

एक बात और है, ईश्वर में ही अपने सभी भावों को केंद्रित करने वाला हिन्दू अज्ञेयवादी बौद्ध धर्म और निरीश्वरवादी जैन धर्म पर कैसे श्रद्धा रख सकता है?

भाइयों, हिन्दुओं के धार्मिक विचारों की यही संक्षिप्त रूपरेखा है। हो सकता है कि हिन्दू अपनी सभी योजनाओं को कार्यान्वित करने में असफल रहा हो, पर यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा, जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, संतों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम। वरन इन सबकी समष्टि होगा, किन्तु जिसमें विकास के लिए अनंत आकाश होगा, जो इतना उदार होगा कि मनुष्यों के स्तर से किंचित् उन्नत निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धानत हो जाता है और लोग जिसके मनुष्य होने में संदेह करते हैं, अपनी बाहों से आलिंगन कर सके और उनमें सबको स्थान दे सके। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़ित या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा, वह प्रत्येक स्त्री और पुरूष में दिव्यता को स्वीकार करेगा और उसका संपूर्ण बल और सामर्थ्य मानवता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केंद्रित होगा। आप ऐसा ही धर्म सामने रखिये और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी बन जायेंगे। विश्व धर्म संसद की अन्य परिषदों से तुलना करते हुए विवेकानन्द कहते हैं-

'**सम्राट्** अशोक की परिषद् बौद्ध परिषद् थी। अकबर की परिषद् अधिक उपयुक्त होती हुई भी, केवल बैठक या गोष्ठी ही थी, किंतु पृथ्वी के कोने-कोने में यह घोषणा करने का गौरव अमेरिका के लिए ही सुरक्षित था कि प्रत्येक धर्म में ईश्वर है। वही ईश्वर जो हिंदुओं का ब्रह्मा, पारसियों का अहुरमज्द, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का यहोवा और ईसाइयों का स्वर्गस्थ पिता है। वह ईश्वर आपको अपने उदार उद्देश्य को कार्यान्वित करने की शक्ति प्रदान करे। ज्ञान का यह नक्षत्र पूर्व गगन में उदित हुआ और कभी धुँधला और कभी देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे पश्चिम की ओर यात्रा करते-करते उसने समस्त जग की परिक्रमा कर डाली और अब वह फिर प्राची के क्षितिज में सहस्त्र गुनी अधिक ज्योति के साथ उदित हो रहा है। अंत में कोलम्बस द्वारा भौगोलिक रूप से अन्वेषित अमेरिका की भूमि को सम्बोधित करते हुए विवेकानन्द कहते हैं- ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया, (कोलम्बस द्वारा खोज किये जाने के कारण), तू धन्य है! यह तेरा ही सौभाग्य है कि तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपने हाथ कभी नहीं भिगोये, तूने अपने पड़ोसियों का सर्वस्व हरण कर सहज में ही धनी और सम्पन्न होने की चेष्टा नहीं की, अतएव समन्वय की ध्वजा फहराते हुए सभ्यता की अग्रणी होकर चलने का सौभाग्य तेरा ही था।'[११]

सर्वधर्म समभाव की भावना : इसी विश्व धर्म संसद में स्वामी विवेकानन्द ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा-'हिन्दुओं के ब्राहमण, जरूस्थ्रों के आहुरमजदा, बौद्धों के बुद्ध, यहूदियों के यहोवा, ईसाइयों के स्वर्गीय पिता आपको शक्ति दें। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध बनाना अथवा हिन्दू या बौद्ध को ईसाई बनाना आवश्यक नहीं, परन्तु प्रत्येक को दूसरे धर्म की भावना आत्मसात करनी है और साथ ही अपना वैशिष्ट्य अक्षुण्ण रखते हुए अपने ही नियमों के अनुसार विकास करना है। सर्वधर्म सम्मेलन ने सिद्ध कर दिया है कि धार्मिकता, पवित्रता और सहिष्णुता विश्व के किसी एक धर्म की बपौती नहीं है और प्रत्येक धर्म व उसकी व्यवस्था ने उदारचरित्र अन्यतम नर एवं नारी उत्पन्न किये हैं। प्रत्येक धर्मपताका पर अब प्रतिरोध के स्थान पर अंकित होगा, लड़ो नहीं साथ दो, खण्डन नहीं संगम, समन्वय और भाँति विग्रह नहीं।'[१२] इन्हीं शब्दों के साथ उनका यह कहना था कि- 'यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि वह दूसरे धर्मो का विनाश करके अपने धर्म का प्रचार प्रसार कर देगा तो उसकी यह आशा कभी पूरी नहीं हो सकती है, क्योंकि सभी धर्म हमारे अपने हैं, इस भाव से उन्हें अपनाकर ही हम अपना और सम्पूर्ण मानवजाति का कल्याण कर सकेंगे। यदि भविष्य में कोई ऐसा धर्म उत्पन्न हुआ, जिसे सम्पूर्ण विश्व का धर्म कहा जायेगा तो वह अनन्त और निर्बाध होगा। वह धर्म न तो हिन्दू होगा न मुसलमान न बौद्ध न ईसाई। वह इन सबके मिलन और सामंजस्य से उत्पन्न होगा।'[१३] भारत में इसी प्रकार का सर्वधर्म समभाव प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। अशोक ने अपने बारहवें शिलालेख में घोषणा की कि वह सभी सम्प्रदायों के गृहस्थ और श्रमणों को दान आदि के द्वारा सम्मान करता है। किन्तु महाराज अशोक दान व मान को इतना महत्त्व नहीं देते, जितना कि इस बात को देते हैं कि सभी संप्रदायों के लोगों में सारवृद्धि हो।[१४] इसी प्रकार का संदेश विवेकानन्द ने विश्व धर्म संसद में प्रकट किया।

भारत के लिए धर्म की आवश्यकता प्रधान नहीं अपितु दरिद्रनारायण के लिए भोजन प्रधान है : स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि भूखे व्यक्ति को धर्मोपदेश आवश्यक नहीं, अपितु भोजन आवश्यक है। यही तथ्य उन्होंने २० सितम्बर

१८६३ ई० को विश्व धर्म सम्मेलन शिकागो में दिये गये अपने व्याख्यान में स्पष्ट किया। उनका कहना था कि 'ईसाइयों को भारत में धर्म प्रचार के लिए जाने से पहले भारत के भूखे लोगों के बारे में सोचना चाहिए व पहले उन्हें भोजन प्रदान करने की दिशा में प्रयास करना चाहिए। सभा में उन्होंने कहा कि ईसाइयों को सत् आलोचना सुनने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगों की कुछ आलोचना करूँ तो आप बुरा नहीं मानेंगे। आप ईसाई लोग जो मूर्तिपूजकों की आत्मा का उद्धार करने के लिए अपने धर्म प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके शरीरों को भूख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते?भारतवर्ष में जब भयानक अकाल पड़ा था तो सहस्रों और लाखों हिन्दू भूख से पीड़ित होकर मर गये थे। पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया। आप लोग सारे हिन्दुस्तान में गिरजे बनाते हैं, पर भारत के लिए धर्म की आवश्यकता नहीं है, धर्म उनके पास पर्याप्त है, उनके लिए आवश्यक है रोटी और जब वे आपसे रोटी माँगते हैं तो आप उन्हें पत्थर देते हैं। भूखों को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है, इसलिए उन्हें भोजन चाहिए धर्म नहीं।'[१५]

सच्चा धर्म व धार्मिक व्यक्ति : धर्म संसद में साररूप में विवेकानन्द कहना था कि मैं यह नहीं चाहूँगा कि ईसाई को बौद्ध हो जाना चाहिए और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई। परन्तु प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के धर्म के सार भाग को आत्मसात करके लाभ प्राप्त करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अुनसार वृद्धि को प्राप्त हो। उनका कहना था कि किसी धर्म के सर्वश्रेष्ठ गुण हैं- शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता। ये गुण किसी एक धर्म की बपौती नहीं हैं तथा ऐसे कई महान व्यक्ति प्रत्येक धर्म में हुए हैं। इस प्रकार विवेकानन्द के धर्म के सम्बन्ध में प्रकट विचार अशोक द्वारा की गई धर्म की व्याख्या से मेल खाते हैं। अशोक ने अपने दूसरे तथा सातवें स्तम्भ-लेखों में धर्म की व्याख्या कुछ इसी प्रकार की है- 'धर्म है साधुता, बहुत से कल्याणकारी अच्छे कार्य करना, पापरहित होना, मृदुता, दूसरों के प्रति व्यवहार में मधुरता, दया, दान तथा शुचिता।'[१६] इस तरह उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्ति ही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है तथा यही गुण सच्चे धर्म की पहचान हैं। यही तथ्य विवेकानन्द ने भी सच्चे व्यक्ति तथा सच्चे धर्म के सम्बन्ध में स्पष्ट किये हैं।

भारतीय कला : सैनफ्रांसिस्को में दिये अपने व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय कला पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया कि भारतीय कला की एलिजाबेथ के युग से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उस समय की भारतीय कला इंग्लैण्ड की तुलना में कहीं उन्नत अवस्था में थी। वे मानते हैं कि ऐंग्लो-सैक्सन जातियाँ सदैव ही कला के लिए कम उपयुक्त रही हैं। यद्यपि उनके पास मनोहर काव्य हैं, किन्तु फिर भी वह संसार में सर्वाधिक उत्तम नहीं हैं। भारतीय सन्दर्भ में कला को वर्णित करते हुए वे कहते हैं कि युगों पूर्व भारत में संगीत के सप्त स्वरों का विकास हो चुका था। यहाँ तक कि अर्द्ध एवं चतुर्थांश स्वर तक भी विकसित हो चुके थे। तब भारत ने केवल संगीत में ही नहीं, अपितु नाटक एवं स्थापत्य कला में भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की।[१७] इसी तरह भारत की प्राचीन कला पर प्रकाश डालते हुए ए०एल० बाशम ने भी भारतीय कला की प्रशंसा की है, वे लिखते हैं कि- प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों की प्रकृति धार्मिक है अथवा उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों से हुई थी। धर्मनिरपेक्ष कला भी अवश्य ही थी, क्योंकि हमें साहित्य से ज्ञात होता है कि राजा लोग सुंदर भित्तिचित्रों एवं मूर्तियों से सुसज्जित अत्युत्तम प्रासादों में निवास करते थे, यद्यपि ये सब नष्ट हो गये हैं। लगभग विगत चालीस वर्षों से जब से यूरोपवासी १९वीं शताब्दी के निर्धारित नियमों के प्रति संदेह करने लगे तथा एशिया एवं अफ्रीका की ओर नवीन सौन्दर्यात्मक अनुभव के लिए देखने लगे तब से भारतीय कला के संबंध में बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। उस समय से अधिकांश भारतीय एवं यूरोपीय विशेषज्ञों ने भारतीय कला के धार्मिक एवं रहस्यात्मक स्वरूप पर एक समान बल दिया है। प्रारम्भिक मूर्तिकला के यथार्थवाद एवं लौकिकता को स्वीकार करते हुए अधिकांश आलोचकों ने वर्तमान समय के कलात्मक अवशेषों में वेदान्त अथवा बौद्ध धर्म के सत्यों को पढ़ा है और उन्हें गहन धार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति अर्थात् विश्वात्मा में सबकी एकता के रूप में प्रस्तर पर बने धर्मोपदेश के रूप में स्वीकार किया है।[१८] उपर्युक्त दोनों विवरणों से जहाँ भारतीय कला के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश पड़ता है, वहीं उसकी उपयोगिता भी सिद्ध होती है। इसी महत्त्व को विवेकानन्द ने विदेशों में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से स्पष्ट किया है।

भारतीय नारी : १८ जनवरी १९०० ई० को स्वामी विवेकानन्द ने कैलिफोर्निया के पैसाडेना के शेक्सपियर क्लब हाउस में भारतीय नारी पर अपना प्रसिद्ध भाषण दिया। विवेकानन्द जब श्रोताओं के सामने उपस्थित हुए, तब उनमें से कई श्रोताओं ने भारत के निवासियों व भारतीय नारी के सन्दर्भ में प्रश्न किये। श्रोताओं में से एक ने प्रश्न किया कि क्या विवेकानन्द अपने यहाँ की स्त्रियों के रीति-रिवाज, उनकी शिक्षा और पारिवारिक जीवन में उनके स्थान के सम्बन्ध में कुछ बताएंगे? इस पर स्वामी जी का उत्तर था- हाँ ठीक, ये सब बातें आप लोगों से बड़ी प्रसन्नता

से बताऊँगा और उन्होंने जो कुछ भारतीय स्त्रियों के सन्दर्भ में उस सभा में कहा उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं-

'यद्यपि दूसरे लोगों की अपेक्षा मुझे एक धर्म-प्रचारक होने के नाते भारतीय स्त्रियों के बारे में जानने का साधारणतः अधिक अवसर प्राप्त होता है, फिर भी मेरे लिए यह कहना कि मैं भारतवर्ष की स्त्रियों के सम्बन्ध में सब कुछ जानता हूँ, अतिशयोक्ति होगी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि मैं एक ऐसे आश्रम का मनुष्य हूँ (अर्थात ब्रह्मचारी हूँ), जिसमें विवाह नहीं किया जाता, इसलिए स्त्रियों का प्रत्येक दृष्टिकोण से यथा-माता, स्त्री, कन्या और बहन के रूप से मेरा ज्ञान अन्य लोगों की तरह पूर्ण नहीं भी हो सकता है। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि सन्यासी होने के नाते उन्हें स्त्रियों को ज्यादा जानने का अवसर भी मिला है, क्योंकि वे सम्पूर्ण भारत में घूमे हैं तथा समाज में हर वर्ग की स्त्रियों से उनका परिचय हुआ है। यहाँ तक कि उत्तर भारत की स्त्रियों से भी, जो कि पुरूषों के सामने नहीं आती, पर जो कहीं भी धर्म के लिए इस नियम को तोड़कर हमारे सामने आती हैं, हमारे उपदेश सुनती हैं और हमसे बातें करती हैं।'[१९] भारतीय व पाश्चात्य स्त्रियों के आदर्शों को वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि पाश्चात्य स्त्रियों के आदर्श अलग हैं तथा भारतीय स्त्रियों के अलग। जैसे- पश्चिमी देशों में चचेरे भाई-बहिनों में विवाह वैध है, तो भारत में नितान्त अनुचित। पश्चिमी देशों में विधवा-विवाह उचित व न्याय संगत है, किन्तु भारत में उच्च श्रेणी की स्त्रियों के लिए दूसरी बार विवाह करना उनका सबसे बड़ा पतन समझा जाता है।[२०] (यद्यपि वर्तमान मे भारत में विधवा विवाह को मान्यता प्राप्त है तथा समाज सुधारकों तथा शिक्षित समाज द्वारा इसका समर्थन किया गया है) माता और पत्नी के रूप में पश्चिम व पूर्व की तुलना करते हुए वे कहते हैं कि-भारत में स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व में ही होता है। प्रत्येक हिन्दू के मन में स्त्री शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो आता है और हमारे यहाँ ईश्वर को माँ कहा जाता है। बाल्यावस्था में प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन प्रातःकाल एक कटोरी में जल भरकर अपनी माता के पास ले जाता है, माता उसमें अपने पैर का अंगूठा डुबा देती है और पुत्र उस जल का पान करता है। पश्चिम में स्त्री पत्नी है। वहाँ पत्नी में ही स्त्री का भाव केन्द्रित है, किन्तु भारत में जनसाधारण समस्त स्त्रीत्व को मातृत्व में ही केन्द्रित मानते हैं। पाश्चात्य देशों में गृहस्वामिनी और शासिका पत्नी है, जबकि भारतीय गृहों में घर की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य गृह में यदि माता हो भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है, क्योंकि घर पत्नी का है, जबकि हमारे घरों में माता सदैव रहती है और पत्नी को अनिवार्यतः उसके अधीन होती है। यही पश्चिम व भारतीय आदर्शों में भिन्नता है।

आगे स्त्री के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'मैं आपके समक्ष कुछ तथ्य उपस्थित करूँगा, जिससे आप स्वयं इन दोनों की तुलना कर सकें। यदि आप पूछें, पत्नी के रूप में भारतीय स्त्री का क्या स्थान है?तो भारतीय पूछ सकता है, माता के रूप में अमेरिकन स्त्री कहाँ है?उस तपस्विनी एवं ओजस्विनी माता का, जिसने हमें जन्म दिया, तुमने क्या सम्मान किया है? जिसने हमें अपने भारीर में नौ मास तक वहन किया, वह माता क्या है?जो हमारे जीवन के लिए यदि प्राणों की आहुति देने की आवश्यकता हो, तो बीस बार भी देने को उद्यत है, वह माता कहाँ है? कहाँ है वह, जिसका प्रेम कभी नहीं मरता-मैं कितना ही दुष्ट और अधम क्यों न हो जाऊँ? साधारण सी बात को लेकर तलाक के लिए न्यायालय का द्वार खटखटाने वाली तुम्हारी उस पत्नी के सामने उसका स्थान कहाँ है? हे अमेरिका की स्त्रियों वह माता कहाँ है?उसे मैं आपके देश में नहीं पा सकूँगा। मुझे यहाँ वह पुत्र दिखायी नहीं देता, जो कहता हो कि माता का पद प्रथम है। हमारे देश में तो कोई भी पुरूष यह इच्छा नहीं करता कि उसकी मृत्यु के उपरान्त भी उसकी पत्नी और पुत्र उसकी माता का स्थान लें। हमारी माँ-यदि हमारी मृत्यु उससे पहले हो, तो हम चाहते हैं कि मृत्यु के समय पुनः एक बार हमारा सिर फिर उसकी गोद में हो। कहाँ है वह? क्या स्त्री संज्ञा केवल भौतिक शरीर मात्र को ही दी जाने के लिए है?हिन्दू मन उन आदर्शों के प्रति सशंकित रहता है, जिसमें यह कहा जाता है कि मांस को मांस से ही संलग्न रहना चाहिए। नहीं नहीं देवि! मांसलता से संबद्ध किसी भी वस्तु से तुम्हें संलग्न नहीं किया जायेगा। तुम्हारा नाम तो सदा ही पवित्रता का प्रतीक रहा है, विश्व में माँ नाम से अधिक पवित्र और निर्मल दूसरा कौन सा नाम है, जिसके पास वासना कभी फटक भी नहीं सकती? यही भारत का आदर्श है।'[२१] वे आगे कहते हैं कि क्योंकि मैं एक सन्यासी हूँ, इसलिए सन्यास आश्रम के नियम के अनुसार मुझे हर स्त्री को माँ कहकर ही सम्बोधित करना पड़ता है। प्रत्येक स्त्री को ही क्या, हमें तो छोटी लड़की को भी माँ ही कहकर पुकारना पड़ता है। यही नियम है। पाश्चात्य देशों में आने पर भी मेरा वही संस्कार बना रहा। जब मैं स्त्रियों से कहता हाँ माता! तो वे दहल उठती। पहले तो मैं नहीं समझ सका कि उनके आश्चर्य प्रकट करने का कारण क्या है। बाद में मुझे इसका बोध हुआ कि इस कथन का अर्थ होता है कि वे वृद्धा हैं। जबकि भारतवर्ष में स्त्रीत्व मातृत्व का बोधक है, मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता, कष्ट-सहिष्णुता और क्षमाशीलता का भाव निहित है। पत्नी तो छाया की तरह पीछे चलती है, उसे माता के जीवन का अनुकरण करना पड़ता है, यही उसका कर्तव्य है।

किन्तु माता प्रेम का आदर्श होती है, वह परिवार का शासन करती है और उस पर अधिकार रखती है। भारतवर्ष में यदि बालक कोई अपराध करता है, तो पिता ही उसे मारता-पीटता है। माता सदैव पिता और बालक में बीच बचाव करती है। यहाँ पर ठीक उलटा है। इस देश में बच्चों को मारना पीटना माताओं का कर्तव्य हो गया है और पिता बीच बचाव करता है। आप समझ सकते हैं कि आदर्श की कितनी भिन्नता है। इसे मैं आलोचनात्मक ढंग से नहीं कहता। आप लोग जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं, पर हम लोगों को जो सदा से सिखाया गया है, हमें तो उसी का अभ्यास है। कोई भी माता कभी भी अपने बच्चों को अभिशाप नहीं देती, वह सदा क्षमा ही करती रहती है। हमारे स्वर्गस्त पिता के बदले में हम सदा माता ही कहते हैं। एक हिन्दू के लिए उस शब्द और भाव में अनन्त प्रेम भरा है। इस नश्वर संसार में ईश्वर के प्रेम के समीपतम माता का ही प्रेम है। हे माता दया करो, मैं तो कुपुत्र हूँ, माँ! कुपुत्र तो अनेक हुए हैं, किन्तु माता कुमाता कभी नहीं हुई। महान साधु रामप्रसाद ने यही कहा है।[२२]

माता के महत्त्व को और अधिक स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द कहते हैं कि यह हिन्दू माता ही है, जो कि पुत्र की पत्नी को भी पुत्री की ही तरह रखती है, वह माता की दृष्टि में अपनी पुत्री के समान आती है और उसने उस पुत्री का स्थान ले लिया है, जो विवाहित होकर अपनी माता के घर से अन्यत्र चली गयी है। उसे घर की साम्राज्ञी माता की आज्ञा के अनुसार चलना आवश्यक है। अपनी स्थिति की तुलना करते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि संन्यास-आश्रम में प्रवेश करने के कारण मेरे लिए विवाह करना निशिद्ध है, परन्तु फिर भी कल्पना कीजिए- यदि मैं विवाह कर सकता और यदि मेरी पत्नी मेरी माता को किसी कारण अप्रसन्न रखती, तो ऐसी पत्नी से मुझे बड़ी ग्लानि होती। क्यों?क्या मैं अपनी माता की पूजा नहीं करता? फिर पुत्रवधू माता की पूजा क्यों न करे? मैं जिसकी आराधना करता हूँ, वह भी उसकी आराधना क्यों न करे? उसे क्या अधिकार है कि मेरे सिर पर चढ़कर मेरी माता पर भाासन करे? उसको अपने स्त्रीत्व की निष्पत्ति होने तक प्रतीक्षा करनी होगी और वह वस्तु जो नारीत्व को पूर्ण करने के लिए तथा नारी को नारी बनाने के लिए अपेक्षित है- मातृत्व है। मातृपद प्राप्त होने तक उसे अपेक्षा करनी चाहिए, तदुपरान्त उसे पद का अधिकार प्राप्त होगा। हिन्दू संस्कृति के अनुसार स्त्री-जीवन का महान उद्‌देश्य माता का गौरवमय पद प्राप्त करना ही है। किन्तु अरे कितना अंतर है कि मेरे माता पिता ने कितने दिनों तक भगवान से प्रार्थना की थी, व्रत रखा था कि उन्हें एक संतान प्राप्त हो और जब संतान प्राप्त हुई तो मैं उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सका। इसी तरह भारत में प्रत्येक माता- पिता प्रत्येक बालक के जन्म के लिए ईश्वर से प्रार्थना- याचना करते हैं। आर्य की परिभाषा लिखते समय हमारे स्मृतिकार मनु कहते हैं- वही संतान आर्य है जो प्रार्थना के द्वारा जन्म लेती है, बिना प्रार्थना के उत्पन्न प्रत्येक संतान मानो अधर्म से उत्पन्न संतान है। प्रत्येक बच्चे के लिए माता पिता को प्रार्थना करनी चाहिए। इस प्रकार की संतानों से इस संसार में अधिक क्या आशा की जा सकती है, जो अभिशापों के साथ जन्म लेते हैं, जो दुर्बलता के एक क्षण में, संसार में इसलिए सरक आते हैं कि उससे बचना संभव नहीं था?स्वामी विवेकानन्द अमेरिका की स्त्रियों से भी यही आशा करते हुए कहते हैं कि - अमेरिका की माताओं इस पर जरा विचार कीजिए, हृदय के अन्तस्थल से जरा सोचिये, क्या आप सचमुच नारी होना चाहती हैं? इसमें किसी जाति या किसी देश का प्रश्न नहीं- किसी प्रकार के राष्ट्रीय गौरव के मिथ्या गर्व का स्थान नहीं। इस क्षणभंगुर जीवन में, इस दुख एवं संतापपूर्ण संसार में गर्व करने का साहस भला कौन कर सकता है? ईश्वर की अनन्त शक्तियों के समक्ष मानव कितना तुच्छ है, आप सबसे इस रात्रि को मैं एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपनी संतान की प्राप्ति के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करती हैं?क्या आप माता होने के लिए कृतज्ञ हैं?क्या आप यह समझती हैं कि मातृत्व प्राप्त करके आप पवित्र्यपूर्ण गौरव को प्राप्त करती हैं?आप अपना हृदय टटोलें और पूछें। यदि नहीं, तो आपका विवाह मिथ्या है, आपका नारीत्व मिथ्या है और आपकी शिक्षा एक ढकोसला है और यदि आपके बच्चे प्रार्थना के बिना जन्म लेते हैं, तो वे संसार के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे। इस तरह विवेकानन्द अमेरिका में भी भारतीय नारी के आदर्श को स्थापित कराना चाहते हैं।

प्रत्येक भारतीय नर-नारी के लिए विवेकानन्द का संदेश था-'जीवन संग्राम में वीर बनो। कहो और सबसे कहो कि तुम निर्भय हो। भय का त्याग करो, क्योंकि भय मृत्यु है। भय पाप है, भय अद्योलोक है, भय अधार्मिकता है, भय का जीवन में कोई स्थान नहीं है।[२३] इसी प्रकार युवाओं के लिए उन्होंने सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते सर्वोच्च नैतिक साहस पर डटे रहने की सलाह दी। उन्होंने कहा- अपने मन पर कभी भी दुर्बलता को न छाने दो।[२४]

स्वामी विवेकानन्द द्वारा विश्व धर्म सम्मेलन व अमेरिका तथा यूरोप के अनेक स्थानों पर दिये गये व्याख्यानों के उपर्युक्त अंशों से स्पष्ट है कि उनके द्वारा तत्कालीन व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म, भारतीय कला, भारतीय नारी, भारत की जनता आदि के सन्दर्भ में जो तथ्य प्रस्तुत किये गये, उनका

महत्त्व तो सदैव ही बना रहेगा, परन्तु साथ ही उन्होंने जिस तरह से उपर्युक्त बिन्दुओं पर प्रभावशाली ढंग से अपने विचार व्यक्त किये, उससे न केवल अमेरिका व यूरोप में भारत की छवि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, अपितु विदेशियों द्वारा भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास भी किया गया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर से स्वामी जी की मुलाकात व भारतीय दर्शन के प्रति उनकी रूचि कुछ ऐसे ही प्रयासों का परिणाम था। साररूप में कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में भी स्वामी विवेकानन्द के विचार महत्त्वपूर्ण ही नहीं हैं, अपितु उनकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी। उनके विचारों से हम सदैव लाभान्वित होते रहेंगे। उनके स्वपनों के भारत का निर्माण करने में अपना अहम योगदान देंगे। यही विवेकानन्द जी को सच्ची श्रद्धाँजलि होगी।

सन्दर्भ

१. बाशम, ए०एल०, 'अद्भुत भारत' (अनुवादक- वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, १६५४, पृ०-०१
२. विवेकानन्द साहित्य, अद्वैत आश्रम, प्रकाशन विभाग, डिही एण्टाली रोड, कोलकाता १६६३, पृ०-०३
३. गीता, ४।११।।, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् २०७०, पृ०-६६
४. बाशम, ए०एल०, पूर्वोक्त, पृ०-०७
५. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-२६५
६. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-२७३
७. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-०७
८. वही
६. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-०७ ए० ०८
१०. वही
११. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-२१
१२. रोमां रोलां, 'विवेकानन्द' (अनुवादक-सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १६८६, पृ०-८३
१३. 'भारत के महान व्यक्तित्व', विद्यालयी शिक्षा, उत्तराखण्ड, उत्तराखण्ड शासन, देहरादून, २००६-१०, पृ०-२६
१४. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, 'प्राचीन भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि०वि० दिल्ली, १६६५, पृ०-१८४
१५. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-२२
१६. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, पूर्वोक्त, पृ०-१८२
१७. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-२६२
१८. बाशम, ए०एल०, पूर्वोक्त, पृ०-२५१
१६. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-३०८
२०. वही
२१. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-३१०
२२. विवेकानन्द साहित्य, पूर्वोक्त, पृ०-३११
२३. दुर्गेष नन्दिनी, 'शिक्षा दर्शन', सुमित एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली, २००८, पृ०-१२०
२४. शर्मा, रामनाथ, भारतीय 'शिक्षा दर्शन', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १६७१, पृ०-५५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

राष्ट्रीय स्तर पर बाल अधिकार संरक्षण

❑ **डॉ० निरंकार सिंह**

किसी भी देश या समाज की प्रगति उसके बच्चों पर निर्भर होती है क्योंकि वही आने वाले कल के निर्माता और रचनाकार होते हैं। इस अर्थ में बालकों का समुचित शारीरिक, मानसिक व शैक्षिक विकास किसी भी राष्ट्र की नींव हैं। लेकिन सत्य यह हैं कि भविष्य के नाम पर बच्चों के 'वर्तमान' की तिलांजलि दे दी जाती हैं। अधिकांश लोग बच्चों को बचपन का अधिकार मुहैया नहीं कराते है।[1] उन्हें खेलने का पर्याप्त अवसर नहीं देते। उन्हें कल्पना की उड़ाने भरने का मौका नहीं देते, उन्हें सोचने, विचारने, समझने और अभिव्यक्ति का समुचित मौका नहीं देते, उन्हें खेलने के लिये न तो समय देते हैं और न ही सुविधाऐं।[2] बच्चों से किसी भी विषय में राय नहीं ली जाती हैं। बुजुर्ग व्यक्ति अपने धार्मिक, राजनीतिक विचारों को बच्चों पर अपनी परिपक्वता का उलाहना देकर थोपते रहते हैं। अनेक देशों में बच्चों को श्रमिक सैनिक के रूप में परिवर्तित किया जा रहा है। बच्चों के साथ अपराधों का ग्राफ बढ़ता जा रहा हैं। उनके साथ यौन शोषण[3] की घटनाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं। जब बच्चों के अधिकारों का हनन गर्भ से प्रारम्भ होकर उनके बचपन, जवानी को लील रहा हैं तो हम विश्व में सुसभ्यता की कल्पना कैसे साकार कर सकते है।

किसी भी सुदृढ़ राष्ट्र या समाज की स्थापना के लिए उसके भावी सदस्यों अर्थात बच्चों का सशक्त व सुसंस्कृत होना अति आवश्यक है। इसलिए बच्चों की दशा सुधारने या उनके उन्नयन के लिए प्रत्येक देश चिन्तित है। हमारे देश ने भी बाल अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय पर हस्ताक्षर किये है। भारत में दो प्रकार से बच्चों के अधिकारों का संरक्षण- विभिन्न संवैधानिक प्रावधान करके तथा उनके कल्याण के लिए अनेक नीतियॉ/कार्यक्रम बनाकर किया जाता है। बाल अधिकार संरक्षण के लिए हमारा संविधान वचन देता है। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भारत में राष्ट्रीय स्तर पर बाल अधिक संरक्षण हेतु किए गये विभिन्न संवैधानिक प्रयासों तथा कार्यक्रमों को प्रकाशित किया गया है।

बच्चों के शोषण और अधिकार उल्लघंन की बढ़ती घटनाओं ने विश्व समुदाय का ध्यान अपनी और आकृष्ट किया है। बाल-अधिकार संरक्षण संकल्पना नवीन होते हुये भी समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों के साथ-साथ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ने लगी हैं। इसलिये बाल संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ-साथ प्रत्येक देश ने अपने यहाँ बाल-अधिकार संरक्षण के लिये विभिन्न कानूनों का निर्माण तथा संस्थाओं का गठन करना प्रारम्भ कर दिया है।

राष्ट्रीय स्तर पर बाल अधिकार संरक्षण : बाल अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय के अस्तित्व में आने से पूर्व भी प्रत्येक देश अपने भावी नागरिकों के कल्याण के लिये प्रयत्नशील थे। अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय ने बच्चों के अधिकार की ओर विश्व समुदाय का ध्यान खींचा और बाल अधिकार संरक्षण के प्रयासों को तीव्रता प्रदान की। हमारे देश के संविधान में भी नागरिकों को अपना चतुर्मुखी विकास करने के अवसर प्राप्त हैं। हमारे संविधान में कमजोर वर्गों जैसे बच्चों, विकलांगों, महिलाओं और वृद्धों आदि के लिये सराहनीय उपबन्ध किये गये हैं। भारत में बच्चों के अधिकार संरक्षण का अध्ययन हम निम्न दो शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगें।

कानूनों द्वारा बाल अधिकार संरक्षण : बाल अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने व संविधान में निहित भावनाओं को फलीभूत करने के लिये राज्य की विभिन्न संस्थाओं द्वारा अपने-अपने स्तर पर कई महत्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं। विधायिका ने बालअधिकार संरक्षण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनेक अधिनियमों का निर्माण किया है, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

१. बाल अधिकार संरक्षण आयोग विधेयक २००५[४] – भारत सरकार ने २० जनवरी २००६ को अपने अधिनियम संख्या-४,२००६ के अंतर्गत 'बाल अधिकार संरक्षण आयोग विधेयक २००५' को पास किया। यह अधिनियम राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आयोग तथा राज्य स्तर पर राज्य आयोग की व्यवस्था करता हैं। यह आयोग बच्चों के अधिकारों को उचित प्रकार से लागू करने तथा बच्चों से संबंधित विभिन्न नीतियां एवं कार्यक्रमों का सुझाव देने का कार्य भी करता हैं। यह आयोग एक संवैधानिक निकाय हैं। आयोग में एक अध्यक्ष, छः

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, एम.जी.एम.(पी.जी.) कॉलेज, सम्भल (उ.प्र.)**

सदस्य, सदस्य सचिव और सहायक कर्मचारी शामिल हैं जो बच्चों के अधिकार, विकास, देखभाल, बाल न्याय,बाल श्रम, बाल मनोविज्ञान, बाल अपराध के विशेषज्ञ होते हैं।

राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग- बाल अधिकार संरक्षण आयोग विधेयक २००५ के द्वारा राज्य स्तर पर भी बाल अधिकार संरक्षण के लिये आयोग बनाने का उपबन्ध हैं। राज्य बाल आयोग को भी बच्चों के अधिकार के संरक्षण के लिये नीति निर्माण व कार्यक्रम बनाने की शक्ति प्राप्त हैं। उक्त अधिनियम में जिला स्तर पर भी बच्चों के अधिकार संरक्षण के लिये बाल न्यायलय बनाने का उपबन्ध है। इससे बच्चों के अधिकार स्थानीय स्तर पर भी संरक्षित हो सकेगें।

२. बाल विवाह निरोधक अधिनियम६ २००४- सर्वप्रथम बाल विवाह के विरूद्ध अधिनियम १६२६ में बना था। सन् १६७८ में इसमें संशोधन करके विवाह के लिए पुरूष की न्यूनतम आयु २१ वर्ष और स्त्री के लिये १८ वर्ष निधारित कर दी। यह अधिनियम बाल विवाह पर अंकुश लगाने में असफल रहा। इसलिये दिसम्बर २००६ में संसद ने बाल विवाह निरोधक अधिनियम २००४ पारित किया। इसके द्वारा प्रशासन को अधिक शक्तियां प्राप्त हो गयीं। बाल विवाह के लिये जिम्मेदार लोगों पर १ लाख रूपये तक का जुर्माना या दो वर्ष तक का कारावास या दोनों मिल सकते हैं, मजिस्ट्रेट ऐसे विवाह को रद्द भी कर सकता हैं। विधेयक बाल विवाह से जन्में बच्चों की देखभाल और भरण पोषण का भी प्रावधान करता है।

३. हिन्दू नाबालिगी तथा संरक्षकता अधिनियम १६५६- हिन्दू नाबालिगी तथा संरक्षता अधिनियम १६५६ के द्वारा नाबालिग बच्चों के अधिकार संरक्षण के साथ-साथ स्त्रियों के अधिकारों की भी रक्षा की गयी हैं। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताए है-

१. १८ वर्ष से कम आयु के बालक को नाबालिग माना गया है।

२. अधिनियम में बच्चों के संरक्षकों को दो श्रेणियों-प्राकृतिक संरक्षक तथा न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक में बांटा गया हैं। पिता की मृत्यु पर माँ प्राकृतिक संरक्षक तथा माँ की मृत्यु पर पिता को संरक्षक माना जायेगा।

३. यदि माता तथा पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी हैं तथा किसी ने वसीयत नहीं करायी तो संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जायेगा।

४. नाबालिग की सम्पत्ति का संरक्षक विक्रय नहीं कर सकता, पांच वर्ष से अधिक के लिये पट्टे पर नहीं दे सकता। अगर वह ऐसा करता हैं तो उसे न्यायालय से अनुमति प्राप्त करनी पड़ेगी।

४. हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम १६५६- बच्चों के अनुचित व्यक्तियों के हाथों में जाने और उनका शोषण होने से बचाने के लिये हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम १६५६ बना। इस अधिनियम के अनुसार पति-पत्नी यदि सहमत हैं तो वे बच्चों को गोद ले सकते हैं। गोद लिया जाने वाला बच्चा हिन्दू हो, अविवाहित, १५ वर्ष की आयु से कम का हो, उसके माता-पिता को धन न दिया हो तथा बच्चें और गोद लेने वाले की आयु में २१ वर्ष का अन्तर हो। इस अधिनियम के उपबन्ध बच्चों के गोद लेने के बाद होने वाले शोषण, दुरूपयोग और अधिकार हनन से बचाव करते हैं।

५. प्रसव पूर्व जॉच अधिनियम १६६४[५]**-** कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के उद्देश्य से प्रसव पूर्व जॉच अधिनियम १६६४ बना। इस कानून के तहत प्रसव पूर्व शिशु लिंग जॉच करने के विज्ञापन पर प्रतिबन्ध हैं। इस अधिनियम का उल्लंघन करने वाले को पॉच वर्ष की कैद तथा एक लाख रूपये का जुर्माना तथा क्लीनिक का लाइसेंस व पंजीकरण रद्द हो सकता हैं।

६. किशोर न्याय अधिनियम १६८६, २०००-[६] आपराधिक मामलों के विचारण की दृष्टि से बालकों के लिये सन् १६६० में 'बालक अधिनियम' पारित किया गया। सन् १६८६ में इस अधिनियम को विकसित करके किशोर न्याय अधिनियम पारित किया गया। सन् २००० में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और इसके स्थान पर किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम २००० पारित किया गया। यह अधिनियम गृहविहीन, हत्या की आंशका ग्रस्त, मनोशारीरिक रोग से ग्रस्त, माता-पिता या संरक्षक द्वारा अनियन्त्रित लैंगिक दुरूपयोग के शिकार, अवैध कार्य में संलग्न, दैवी आपदा व सशस्त्र संघर्ष के शिकार बच्चों के देखरेख संरक्षण और उनसे सम्बन्धित अपराधों के न्याय निर्णयन आदि के लिये विस्तृत कानूनी ढ़ॉचा तैयार करता हैं।

७. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम २०००-[७] सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम २००० की धारा ७६ के अनुसार बच्चों का गलत चित्रण, प्रचार एवं व्यापार को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इससे बच्चों के यौन शोषण से बचाव होता हैं।

८. ८६ वां संविधान संशोधन २००२- इस संशोधन के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित कर लिया गया

और लागू करने के लिये आवश्यक कानूनों का निर्माण भी किया जा रहा हैं। इससे बच्चों को शिक्षा के अधिकार का संरक्षण प्राप्त हैं।

९. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम १९८६[८]– बच्चों तथा महिलाओं का अवैध व्यापार तथा उनका यौन उत्पीड़न, इनके अधिकरों के हनन का सबसे घृणित रूप है। भारत को बच्चों और महिलाओं के अवैध व्यापार का स्त्रोत, पारगमन तथा गन्तव्य माना जाता हैं। इसलिए एक चुनौती के रूप में लेते हुये भारत सरकार ने अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम,१९८६ बनाया।

१०. शिशु दुग्ध विकल्प, दुग्ध पान बोतल और शिशु आहार (उत्पादन,आपूर्ति और वितरण) अधिनियम २००२[९] इस अधिनियम के द्वारा शिशुओं के लिये दूध के विकल्प, उनको संरक्षित करने वाले बोतल, आहार की मात्रा, आपूर्ति व विवरण के मानक सुझाये गये हैं।

११. राष्ट्रीय बाल एड्स नीति २००७[१०]– केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने संयुक्त रूप से देश में १८ वर्ष से कम आयु के एड्स पीड़ित बच्चों के लिये ३१ जुलाई २००७ को राष्ट्रीय नीति घोषित की। इस नीति के अनुसार देश में लगभग ७० हजार बच्चें एच०आई०वी० एड्स से ग्रस्त हैं। इस नीति में २ हजार करोड़ रूपये से अधिक व्यय की व्यवस्था की गई। प्रत्येक राज्य एवं जिले स्तर पर बाल सुरक्षा इकाई का गठन किया जायेगा। इस योजना में एच०आई०वी० पाजिटिव या जिनके मॉ-बाप मर चुके हैं, सभी बच्चों को सम्मिलित किया गया हैं।

बाल श्रमिकों का अधिकार संरक्षण : बाल श्रम को भारत वर्ष में पूर्ण रूप से प्रतिबन्धित नहीं किया गया है, इसके प्रति चयनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, अर्थात कतिपय उद्योगों में तो बालश्रम को पूर्णरूपेण प्रतिबन्धित किया है, अन्य में नहीं। बालश्रम पर प्रतिबन्ध बच्चें की आयु के आधार पर भी लगाया है। दूसरें शब्दों में बच्चों की आयु और उद्योगों/प्रतिक्रियाओं को आधार मानकर बाल श्रम का अपवर्जन किया गया हैं। इस समबन्ध में कतिपय अधिनियमों की विवेचना समीचीन होगीं-

बालक (श्रम गिरवीकरण)अधिनियम १९९३– इसके अनुसार बालक के श्रम गिरवी करने का करार शून्य होगा। इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये 'बालक' से १५ वर्ष से कम आयु का व्यक्ति अभिप्रेत हैं। बालश्रम को गिरवी करने का करार ऐसा लिखित या मौखिक, अभिव्यक्त या विवक्षित करार हैं, जिसके द्वारा बालक का माता-पिता या संरक्षक अपने द्वारा प्राप्त किये गये या प्राप्त किये जाने वाले किसी संदाय या प्रसुविधा के बदले में इस बात का वचन देता हैं कि वह बालक की सेवाओं का उपयोग किसी में किया जाना पारित या अनुज्ञात करेगा। अधिनियम के प्रावधानों का उल्लघंन करने के लिये दण्ड की भी व्यवस्था है।

कारखाना अधिनियम १९४८– बच्चों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण अधिनियम कारखाना अधिनियम,१९४८ हैं। इसके प्रावधानों के अनुसार कोई बालक जिसने १४ वर्ष की आयु न प्राप्त कर ली हो किसी कारखाने में नियोजित नहीं किया जायेगा। १४ वर्ष के ऊपर के बच्चों को कतिपय शर्तों के साथ नियोजित किया जा सकता हैं।

खान अधिनियम १९५२– खान अधिनियम भी बाल श्रम को खान में या किसी भूमिगत खान में बच्चे की उपस्थिति या खुली खदानों में जहाँ खुदाई सम्बन्धी क्रिया चल रही, को प्रतिबन्धित करता है। मूल रूप में बालक से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है या जिसने १५ वर्ष की आयु न प्राप्त कर ली हो, किन्तु अब यह उम्र १४ वर्ष कर दी गयी है। अन्य अधिनियमों की भॉति यह भी काम के घंटो, साप्ताहिक आराम आदि के लिये प्रावधान करता है।

वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम १९५८– यह अधिनियम भी १४ वर्ष से कम आयु के बच्चों का नियोजन पोत उद्योग में प्रतिबन्धित करता है सिवाय निम्न के-

१. एक विद्यालय पोत या प्रशिक्षण पोत में।
२. एक ऐसा पोत जिसमें सभी नियोजित व्यक्ति एक ही परिवार के हो।
३. एक घरेलू व्यापार पोत जिसकी सकल लदान क्षमता २०० टन से कम हो, और जहा ऐसा व्यक्ति नाम मात्र मजदूरी पर कार्य करे और अपने पिता, निकट व्यस्क परिजन के निगरानी में हो।
४. 'युवजन' के लिये जिनकी उम्र १४ वर्ष से ज्यादा किन्तु १८ वर्ष से कम हो उनके नियोजन के लिये अधिनियम कतिपय शर्तें विहित करता हैं।

मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम १९६१– यह अधिनियम किसी मोटर परिवहन उपक्रम में बच्चे के नियोजन का किसी भी हैसियत से, प्रतिषेध करता है। किशोर के नियोजन की अनुमति तो देता हैं किन्तु कतिपय शर्तों के साथ बालक से तात्पर्य उस व्यक्ति से हैं जिसने १४ वर्ष की आयु पूरी न की हो और 'किशोर' से तात्पर्य उस व्यक्ति से हैं जिसने १४ वर्ष की आयु तो पूरी कर ली हों किन्तु १८ वर्ष की आयु

पूरी न की हो।

बन्धित श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम १९७६-भारत के संविधान के अनुच्छेद-३४ (क) (२) में प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग में भारतीय संसद ने यह अधिनियम १९७६ में अधिनियमित किया। इसका उद्देश्य जनता के दुर्बल वर्गों के आर्थिक और शारीरिक शोषण का निवारण हैं। इस अधिनियम ने बन्धित श्रम पद्धति का उन्मूलन कर दिया, बन्धित श्रमिकों को उनके दायित्वों से मुक्त कर दिया तथा उनके बन्धित ऋणों को भी निर्वापित कर दिया। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार बन्धित व्यक्ति की सम्पत्ति के बन्धक को भी समाप्त किया गया तथा उसके आवास की बेदखली भी रोक दी गयी। इस अधिनियम के प्रावधानों के उल्लघंन की स्थिति में दण्ड की व्यवस्था की गयी हैं।

बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियम) अधिनियम १९८६[११]- अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार बालक एक व्यक्ति से अभिप्रेत है जिसने अपनी उम्र का चौदह वर्ष पूरा न किया हो। अधिनियम बच्चों के नियोजन को उन उपजीविकाओं में जो इसके साथ संलग्न अनुसूची के भाग 'क' तथा भाग 'ख' में उल्लिखित प्रक्रियायें जारी रखी जाती हैं, का प्रतिषेध करता हैं। अनुसूची के भाग 'क' में अल्लिखित उपजीविकायें-

१. रेल मार्ग द्वारा यात्रियों, माल या डाक का परिवहन
२. अधजला कोयला इकट्ठा करना, राख के गढ्ढों को साफ करना
३. रेल स्टेशनों पर खान-पान व्यवस्था में काम करना जहाँ विक्रेता का आवागमन अन्तर्ग्रस्त हो, या स्थापना के किसी कर्मचारी का एक प्लेटफार्म से दूसरे पर या गाड़ियों में आना जाना होता हो
४. रेलवे स्टेशन से सम्बन्धित निर्माण कार्य या ऐसा अन्य निर्माण कार्य जो रेलवे लाइन व सन्निकट चल रहा हो और
५. पत्तन की सीमाओं के अन्तर्गत एक पत्तन अधिकारी।

अनुसूची के भाग 'ख' में दी गयी प्रक्रिया-

१. बीड़ी बनाना
२. गलीचा बनाना
३. सीमेन्ट निर्माण व सीमेन्ट बोरियों में भरना
४. कपड़े की छपाई, रंगाई और बुनाई
५. माचिस, विस्फोटक और पटाखों का निर्माण
६. अभ्रक की कटाई तथा तुड़ाई
७. चमड़ा निर्माण
८. साबुन का निर्माण
९. चर्म शोधन
१०. ऊपर की सफाई और
११. भवन निर्माण उद्योग

ऊपर उपजीविकाओं की दी गई सूची से स्पष्ट है कि ये जीवन, अंग और स्वास्थ्य के लिये जोखिम पैदा करने वाला हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम में काम के घंटे और अवधि साप्ताहिक छुट्टी तथा बच्चों के स्वास्थ और सुरक्षा से सम्बन्धित प्रावधान भी दिये गये हैं।

राष्ट्रीय बाल श्रमनीति१९ १९८७[१२]-

बालश्रम उन्मुलन व बालश्रमिकों के अधिकार संरक्षण के लिए सन् १९८७ में एक राष्ट्रीय नीति बनाई गयी। इस नीति के मुख्य उपबन्धों में बच्चों को बाल श्रम से मुक्त कराना है। बच्चों की अनौपचारिक शिक्षा व पूरक पोषाहार, १४ वर्ष तक के बच्चों की निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा, जोखिम पूर्ण कार्यों से बचाव, आर्थिक शोषण के विरूद्ध संरक्षणात्मक व्यवस्था, बाल श्रमिक अधिकता वाले क्षेत्रों में परियोजना आधारित कार्यक्रम, आई०एल०ओ० के सहयोग से बालश्रम समाप्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम बालश्रम कार्य तथा सहयोग कार्यक्रम चलाना।

बाल अधिकारों के संरक्षण के लिए विभिन्न नीतियाँ/ कार्यक्रम- भारत सरकार ने बच्चों के कल्याण, दुर्व्यवहार व शोषण से बचाने व उनके अधिकार संरक्षण के लिए समय-समय पर अनेक नीतियों के साथ-साथ कार्यक्रम भी बनाये है। भारत सरकार के कई मंत्रालयों ने अलग-अलग और संयुक्त रूप से अनेंक कार्यक्रमों की घोषणा की है। इस संबंध में निम्न नीतियाँ व कार्यक्रम सुचारू रूप से चल रहे है-

राष्ट्रीय बाल नीति १९७४[१३]- भारत सरकार ने २२ अगस्त १९७४ को राष्ट्रीय बाल नीति की घोषणा की। यह नीति बच्चों को जन्म से पूर्व तथा जन्म के बाद, वृद्धि के स्तरों पर शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास के लिए सेवाओं, दशाओं का प्रावधान करती हैं। बच्चों और उनकी माताओं के लिए व्यापक स्वास्थ कार्यक्रम और पूरक पोषण का भी प्रावधान करती हैं। साथ ही यह नीति शारीरिक पोषण व मनोरंजन गतिविधियों, १४ वर्ष तक के सभी बच्चों की शिक्षा, समाज के कमजोर वर्गो के लिए विशेष उपबन्ध तथा बच्चों के सभी प्रकार के शोषण का विरोध करती हैं।

राष्ट्रीय नीति और बाल चार्टर २००४[१४]- बच्चों के लिए एक राष्ट्रीय नीति और चार्टर २००४ का प्रारूप तैयार किया गया। इससे विभिन्न प्रकार के बाल अधिकारों जैसे उत्तर जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, पोषण का

अधिकार, जीवन स्तर का अधिकार, खेल और अवकाश का अधिकार, बचपन के प्रारम्भिक देखभाल का अधिकार, शिक्षा के अधिकार, आर्थिक शोषण से मुक्ति का अधिकार, संरक्षण का अधिकार, बच्चियों के संरक्षण का अधिकार, किशोर शिक्षा और कौशल विकास का अधिकार, समानता का अधिकार, स्वतंत्रता, नाम और राष्ट्रीयता का अधिकार, सूचना मांगने और प्राप्त करने का, स्वतंत्रता का अधिकार, संगम और शान्तिपूर्ण सम्मेलन की स्वतंत्रता का अधिकार और परिवार का अधिकार आदि सम्मिलित हैं।

राष्ट्रीय बाल बोर्ड का गठन[१५]– बच्चों के स्वास्थ्य पोषण, शिक्षा और कल्याण गतिविधियों को संचालित करने के लिए एक ऐसा केन्द्र बिन्दु और मंच होना जरूरी हैं जिसके माध्यम से बच्चों की आवश्यकताओं को पूरी करने में लगी विभिन्न सेवाओं का नियोजन, समीक्षा और समन्वय हो सके। ऐसे ही राष्ट्रीय बाल बोर्ड के गठन की बात बालनीति में कही गयी है।

बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना २००५[१६]–महिला और बाल विकास विभाग ने भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के परामर्श से बच्चों के लिए एक राष्ट्रीय कार्य योजना २००५ तैयार की थी। इस योजना से बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार, शिशु मृत्यु दर तथा मातृ मृत्यु दर में ह्रास, बच्चों के नामांकन अनुपात को बढ़ाना व छीजर दर को कम करना, टीकाकरण का क्षेत्र बढ़ाना, प्राथमिक शिक्षा का सर्वाभौमिकरण को लक्ष्य बनाया गया था। प्रधानमंत्री कार्यालय हर तीसरे महीने इस कार्य योजना की समीक्षा करता है। राष्ट्रीय कार्य योजना २००५ निम्न आठ आयामों पर आधारित थी –

१. सन् २०१० तक शिशु मृत्यु दर को ३० प्रति १००० करना।
२. सन् २०१० तक बाल शिशु मृत्यु दर को ३१ प्रति १००० करना।
३. मातृ मृत्यु दर के १०० प्रति लाख के स्तर से २०१० तक नीचे लाना।
४. सभी को स्वच्छ पानी व स्वास्थ्य सुविधा को २०१० तक उपलब्ध कराना।
५. २०१२ तक सम्पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या को स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना।
६. २०१० तक बाल विवाह दर पर पूर्ण प्रतिबन्ध।
७. देश से पोलियों का २००७ तक उन्मूलन।
८. एच.आई.वी. पीड़ित शिशुओं के अनुपात में २००७ तक २० तथा २०१० तक ५० प्रतिशत की कमी लाना।

बच्चों से सम्बन्धित संसदीय समिति– बच्चों से सम्बन्धित सभी विषयों पर विचार करने के लिए लोक सभा अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक संसदीय समिति गठित की गयी है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने २२ मई २००६ को बालिकाओं से सम्बन्धित सभी मुद्दों को संसदीय समिति के समक्ष रखा और बालिकाओं के परिवार में तथा समाज में उपलब्ध विभिन्न अवसरों पर चर्चा हुई। समिति में बच्चों के लिए कोष बनाने तथा बाल श्रमिकों की समस्याओं के निराकरण करने पर भी चर्चा हुई।

बाल प्रतिनिधि मंडल का मंगोलिया जाना– मंगोलिया में आयेजित एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ट्रेसिंग नोमदस पथवेज में भारतीय बाल प्रतिनिधि मण्डल ने ८ अगस्त २००६ तक हिस्सा लिया। जे.एस. कोचर, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने बच्चों के प्रतिनिधिमंडल को सहयोग दिया। बाल प्रतिनिधि मंडल में विभिन्न क्षेत्रों के बच्चें सम्मिलित थे। बच्चों ने श्रोताओं के समक्ष अपने विचार रखे। भारतीय बच्चों के प्रदर्शन को सभी दर्शकों श्रोताओं ने सराहा।

बाल विकास पर कार्य समूह[१७] : योजना आयोग ने महिला एवं बाल विकास मंत्री की अध्यक्षता में बाल विकास कार्य समूह को बनाया था, जिसने ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना में बच्चों के विकास सम्बन्धित उपाय बताये। कार्य समूह ने पहली मंत्रणा ३१ जुलाई २००६ को की ओर चार उपसमूह विभिन्न क्षेत्रों समन्वित बाल विकास योजना एवं पोषण, प्राथमिक शिक्षा, बालिका और बाल संरक्षण पर बनाये। चारों आयोग की रिपोर्ट दूसरी मंत्रणा में कार्य समूह को सौंप दी हैं। अन्त में कार्य समूह ने अपनी अन्तिम व पूर्ण रिपोर्ट योजना आयोग को भेजी।

बाल दिवस/वात्सल्य मेला (१४-१६ नवम्बर २००६)[१८]– महिला और बाल विकास मंत्रालय के तत्वाधान में बच्चों और महिलाओं के लिए वात्सल्य मेला तालकटोरा बाग में तथा १४ नवम्बर को विज्ञान भवन में प्रधानमंत्री की उपस्थिति में एक उत्सव का आयोजन किया गया था। प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय बाल सुरक्षा पुरस्कार २६ बच्चों को असाधारण उपलब्धि के लिए दिये। विभिन्न स्वयं सेवी संगठनों द्वारा लाये गये ६०० बच्चों ने इस उत्सव में भाग लिया। इसमें सरकारी विद्यालयों के साथ-साथ विभिन्न स्वयं संगठनों के बच्चों ने १८ नवम्बर २००६ को सांस्कृतिक कार्यक्रमों व बच्चों की उपलब्धियों को दर्शाया। साथ ही बच्चों ने विभिन्न गतिविधियों जैसे, प्रतियोगिता, निबन्ध कहानी, लेखन, सामान्य ज्ञान व बुद्धि परीक्षण व खेलों में उत्तम प्रतिभा दिखाई। बच्चों को उनकी योग्यता व प्रदर्शन

के आधार पर पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

राष्ट्रीय बाल कोष की स्थापना[१६]– भारत सरकार ने बच्चों के लिए राष्ट्रीय बाल कोष की स्थापना १९७९ में की जिसका लक्ष्य बाल कल्याण सम्बन्धी साधनों में वृद्धि करना हैं।

एकीकृत बाल रक्षा योजना[२०]– विभिन्न योजनाओं में सामंजस्य न होने, विभिन्न संगठनों के परामर्श व सुझाव के आधार पर बच्चों के अधिकार रक्षा के लिए एकीकृत बाल रक्षा योजना प्रारम्भ की गयी हैं। इस योजना का लक्ष्य सभी बच्चों की देखभाल व रक्षा करना, व उनको कानूनी सहायता भी उपलब्ध कराना हैं। यह योजना परिवारों को टूटने से बचाने के लिए प्रयास करेगी। ताकि बच्चे निराश व निराश्रय न हो। यह बच्चों के परिवार को समाज में सामंजस्य कराने व पुनर्वास में सहायता करेंगी। इस योजना का प्रभावी क्रियान्वयन ग्यारहवी पंचवर्षय योजना में किया गया था।

समन्वित बाल विकास सेवा[२१]– समन्वित बाल विकास सेवा १९७५ में केन्द्र प्रयोजित योजना के तौर पर शुरू की गयी है। इसके उद्देश्य है : (क) ६ वर्ष से कम उम्र के बच्चों और गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के पौष्टिक आहार तथा स्वास्थ्य स्तर में सुधार, (ख) बच्चों के समुचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास की नींव डालना, (ग) बाल मृत्यु दर, कुपोषण और स्कूली शिक्षा अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की दर में कमी लाना, (घ) बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों के बीच नीति तथा कार्यन्वयन में कारगर तालमेल, (ड़) स्वास्थ्य, शिक्षा की समुचित व्यवस्था करके माताओं की, बच्चों की स्वास्थ्य व पोषाहार संबन्धी आवश्यकताओं की देखरेख की क्षमता बढ़ाना।

योजना के तहत ६ साल से कम उम्र के बच्चों और गर्भवती तथा स्तनपान करने वाली माताओं को कई एकमुश्त सेवाएं प्रदान की जाती हैं, जो इस प्रकार है : (१) पूरक पोषाहार (२)टीकाकरण (३) स्वास्थ्य जांच (४) विशेषज्ञ सेवा (५) स्कूल पूर्व अनैपचारिक शिक्षा (६) पोषाहार और स्वस्थ्य शिक्षा।

योजना के दिशानिर्देशों में एक लाख की आबादी पर एक ग्रामीण/शहरी परियोजना और ३५००० की आबादी पर एक जनजातीय परियोजना तथा ग्रामीण/शहरी परियोजनाओं में १००० की जनसंख्या पर जनजातीय परियोजनाओं में ७०० की आबादी पर एक आंगनबाड़ी केन्द्र का प्रावधान किया गया हैं।

विरल जनसंख्या वाले पर्वतीय/रेगिस्तानी इलाकों में ३०० या इससे अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक गांव या बस्ती में एक आंगनवाड़ी स्थापित करने का प्रावधान हैं। ऐसे छोटे गॉवों, जिनकी जनसंख्या ३०० से कम हो, उनके निकट भी आंगनवाड़ी स्थापित करने पर विचार किया जा सकता है। मौजूदा निर्देशों के अनुसार जनजातीय ब्लाकों में डेढ़ सौ से तीन सौ के बीच आबादी वाले दूरदराज के गांवो में छोटी आंगनवाड़ियां स्थापित करने का प्रावधान किया गया हैं।

कामकाजी और बीमारी माताओं के बच्चों के लिए शिशु सदन/बाल अनुरक्षण केन्द्र– राष्ट्रीय बाल नीति १९७४ पर अमल करते हुये केन्द्रीय योजना के रूप में बालबाडी योजना १९७५ में शुरू की गयी। इसके अन्तर्गत १८०० रूपये से कम आय वाले माता-पिता के बच्चे (५ वर्ष तक की आयु के) की दिन के समय देखभाल की जाती हैं। आमतौर पर आकस्मिक मजदूरों, विस्थापित और कृषि तथा निर्माण मजदूर इस सेवा के दायरे में आते हैं। जिन बच्चों की माताएं बीमारी, संचारी रोग से पीड़ित हैं वे भी इस योजना का लाभ उठा सकती है। यह योजना केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड और राष्ट्रीय स्तर के दो स्वैच्छिक संगठनों भारतीय बाल कल्याण परिषद तथा भारतीय आदिम जाति सेवक के माध्यम से देश भर में लागू हैं। इस योजना का लाभ १२४७० शिशु गृहों को मिल रहा हैं।

राष्ट्रीय शिशु सदन कोष[२२]– शिशु सदन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिये वर्ष १९९३-९४ में १९.९० करोड़ रूपये की राशि से एक राष्ट्रीय शिशु सदन कोष बनाया गया। इसके माध्यम से मौजूदा आंगनवाड़ियों को सशक्त बनाने एवं आंगनवाड़ी सह शिशु सदन केन्दों, पंजीकृत स्वयंसेवी संगठनों और महिला मंडलों को सचिव कोष से प्राप्त ब्याज से आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती हैं।

राष्ट्रीय बाल घोषणा पत्र[२३]– राष्ट्रीय बाल घोषणा पत्र को ९ फरवरी २००४ को राजपत्र में अधिसूचित किया गया। यह नीति घोषणा पत्र है, जिसमें बच्चों के अधिकारों और समाज के प्रति उनके कर्तव्यों का उल्लेख हैं। यह घोषणा पत्र बच्चों के अधिकारों के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते (१९८९)के अनुरूप हैं। जिस पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए है। इस घोषणा पत्र का उद्देश्य बच्चों को जीवन जीने, स्वास्थ्य देखभाल, पोषाहार, जीवन-स्तर, शिक्षा और शोषण से मुक्ति के अधिकार सुनिश्चित कराना हैं। इसमें परिवार, समाज और देश के प्रति बच्चों के कर्तव्य भी दिये गये हैं।

भारत यूनिसेफ सहयोग[२४]– भारत में यूनीसेफ कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, 'मास्टर प्लान ऑफ आपरेशंस' के माध्यम से किया जाता हैं जिसे परस्पर विचार विमर्श के बाद आपसी सहमति से लागू किया गया हैं। महिला एवं बाल विकास विभाग

इस मास्टर पलान ऑफ आपरेशंस को लागू करने में समन्वयक का काम किया। 'मास्टर प्लान ऑफ आपरेशंस' २००३-०७ अवधि में रहा। इसके उद्देश्य इस प्रकार थे- (क) बच्चों की सुरक्षा और देखभाल में सुधार के तरीकों के बारें में परिवारों और समुदायों को समुचित जानकारी देना (ख) बच्चों के लिए संसाधन जुटाने और दखल बढ़ाने के लिए भागीदारी बढ़ाना (ग) बच्चों पर प्रयोग के लिए मूल्यांकन तथा जानकारी के आधार को मजबूत करना।

कार्यक्रम की प्राथमिकता इस प्रकार थी - (क) शिशु और माता मृत्यु दर में कमी (ख) बाल पोषण के स्तर में सुधार (ग) बच्चों के लिये प्रारम्भिक शिक्षा सुनिश्चित करना (घ) बाल संरक्षण को बढ़ावा देना (ड़) बच्चों और किशोरों का एच.आई.वी./एड्स से बचाव। यूनीसेफ ने २००३-०७ के लिए इण्डिया कंट्री प्रोग्राम के वास्ते ४०० मिलियन अमरीकी डालर की राशि आवंटित की थी।

सार्वभौम बाल दिवस- भारत में हर वर्ष १४ नवम्बर को बाल दिवस मनाया जाता हैं। यह दिन हमें अवसर प्रदान करता हैं कि इस लक्ष्यों को हासिल करने, कमियां दूर करने और बाधाएँ समाप्त काने की दिशा में की गई प्रगति की समीक्षा करें और इन लक्ष्यों को पाने के लिए समयबद्ध रणनीति तैयार करें।

बाल अधिकार सम्बन्धित समझौता- भारत ने बच्चों के प्रति अपनी वचनबद्धता दोहराते हुए ११ दिसम्बर,१९९२ में बच्चों के अधिकारों संबन्धी संयुक्त राष्ट्र सन्धि का अनुमोदन किया। इस संधि का उद्देश्य प्रत्येक बच्चें को स्वस्थ और अनुकूल माहौल में जीने और बढ़ने का अधिकार देना हैं। इस सन्धि का अनुमोदन करने वाले सदस्य देशों को अपने देश में इस पर अमल की स्थिति के बारे में समय-समय पर रिपोर्ट देनी होगी। इस समझौते के अनुरूप पहली इंडिण्या कंट्री रिपोर्ट १९९७ में संयुक्त राष्ट्र को सौंपी गयी। बच्चों के अधिकारों के बारे में दूसरी रिपोर्ट २००१ में प्रस्तुत की गयी जिस पर जिनेवा में २१ जनवरी २००४ के मौखिक रूप से विचार विमर्श किया गया। समिति ने इस रिपोर्ट की प्रशंसा की और इस पर अपनी टिप्पणी और राय दी। अगली कंट्री रिपोर्ट २००८ में भेजी गयी।

महिला और बाल विकास विभाग ने एक राष्ट्रीय समन्वय दल का गठन किया हैं ताकि बाल अधिकार संधि के अमल और इससे संबन्धित सभी गतिविधियों का निरीक्षण और निगरानी की जा सके। भारत ने बाल अधिकार संधि की दो वैकल्पिक विज्ञप्तियों पर सितम्बर २००४ में हस्ताक्षर किये हैं ये विज्ञप्तियां इन विषयों के सम्बन्ध में हैं- (१) सशस्त्र संघर्ष में बच्चों की संलिप्तता, (२) बच्चों की खरीद फरोख्त, वैश्यावृत्ति और अश्लील साहित्य।

सर्व शिक्षा अभियान[२५]- प्राथमिक शिक्षा के सार्वत्रीकरण के बहुप्रतीक्षित उद्देश्य को निर्धारित समय सीमा में प्राप्ति की दिशा में यह ऐतिहासिक पहल हैं। यह कार्यक्रम राज्यों के सहयोग से चलाया गया, जिसके अन्तर्गत देश के प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र की चुनौतियों का सामना करने, संकल्प वर्ष २०१० तक ६-१४ आयुवर्ग के सभी बच्चों को उपयोगी एवं स्तरीय शिक्षा उपलब्ध कराना शामिल हैं। कार्यक्रम की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है-

१. बालिकाओं पर विशेषतः अनुसूचित जाति/जनजाति और अल्पसंख्यक वर्ग की बालिकाओं पर ध्यान।
२. विद्यालय छोड़कर जा चुकी बालिकाओं को वापस लाने हेतु अभियान चलाना।
३. लड़कियों के लिए निःशुल्क पाठ्य पुस्तके।
४. बालिकाओं हेतु विशेष प्रशिक्षण (कोचिंग) और तैयारी कक्षाओं का आयोजन और सीखने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाया।
५. शिक्षा के समान अवसर को बढ़ावा देने हेतु शिक्षक जागरूकता कार्यक्रम।
६. बालिका शिक्षा से संबंधित प्रयोगात्मक परियोजनाओं पर विशेष ध्यान।
७. ५० प्रतिशत महिला शिक्षकों की नियुक्ति।

प्रजनन तथा बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम[२६]- यह कार्यक्रम १९९७ से पूरे देश में चल रहा है। परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत चलने वाले इस कार्यक्रम के तीन उद्देश्य हैं। नीतियां तथा कार्यक्रम अनुकूल के जरिये प्रजनन, स्वास्थ्य, शिशु उत्तर जीविता तथा जनन नियमन। ये कार्यक्रम पहले चलाये गये कार्यक्रमों से भिन्न हैं। ये कार्यक्रम मुख्य प्राथमिक स्वास्थ्य ढांचे के द्वारा लागू किये जाते हैं। इस कार्यक्रम का मुख्यतः लक्ष्य मातृत्व मृत्यु दर व शिशु मृत्यु दर को कम करना और बीमारी/प्रजनन स्वास्थ्य सुनिश्चित करना है। इस कार्यक्रम के लिए विश्व बैंक, यूरोपिय यूनियन, यूनिसेफ, यू.एन.एफ.सी.ए. आदि के द्वारा व अन्य अनुदान दाताओं का वित्तीय सहयोग प्राप्त होता है।

सार्वत्रिक टीकाकरण कार्यक्रम[२७]- सार्वत्रिक टीकाकरण (यू.आई.पी.) सन् १९८५ में चरणबद्ध तरीके से लागू किया गया था। कार्यक्रम का उद्देश्य टीकों से रोकी जा सकने वाली छह बीमारियों- क्षय, डिपथीरिया, टिटनेस, पोलियों, खसरा

और परटयूसिस निरोधक टीकों से शिशुओं/बच्चों और मां की प्रसवकालीन अवस्था दर और मृत्यु दर घटाना था।

हैपेटाइटिस बी परियोजना[२८]– सार्वजनिक टीकाकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रायोगिक तौर पर हैपेटाइटिस बी के टीके शुरू करने का निर्णय लिया हैं। यह १० जून २००२ को शुरू किया गया। इस परियोजना के तहत हैपेटाइटिस बी का टीका बच्चों को ६ वें, १० वें और १४ वें सप्ताह में डीपीटी के प्राथमिक खुराकों के साथ दिया जा रहा हैं। यह परियोजना ३३ जिलों और १५ मेंट्रोपोलिटन शहरों में लागू हैं। आई.ई.सी. प्रशिक्षण और निगरानी बजट का व्यय घरेलू कोष से किया जा रहा हैं।

पोलियों प्रतिरक्षण कार्यक्रम[२६]– विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन के १६८८ के प्रस्ताव के अनुरूप पल्स पोलियों प्रतिरक्षण सन् १६६६ में ३ वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिये प्रारम्भ किया गया था। सन् १६६६-६७ में लक्षित आयु वर्ग को ५ वर्ष कर दिया गया। टाइप-तीन के पोलियों वायरस में से १६६६ में टाइप-दो का उन्नमूलन हो गया हैं। टाइप- तीन वायरस केवल पश्चिम उत्तर प्रदेश के चार जिलों मुरादाबाद,रामपुर,बरेली, शाहजहॉपुर में सीमित रह गया है। टाइप-एक के पोलियों वाइरस की बहुलता के कारण भारत सरकार ने उत्तर प्रदेश, बिहार,दिल्ली और मुम्बई में ओ.पी.बी. का उपयोग विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग पर करने का निश्चय किया है।

विशिष्ट उपलब्धि के लिए राष्ट्रीय बाल पुरस्कार[३०]– विशिष्ट उपलब्धि के लिए राष्ट्रीय बाल पुरस्कार की शुरूआत १६६६ में की गई है। इसका उद्देश्य ५ से १५ वर्ष की आयु तक के उन बच्चों की पहचान करना हैं, जिन्होंने शिक्षा, कला, संस्कृति खेल आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इसके तहत हर राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के बच्चों को प्रतिवर्ष एक स्वर्ण पदक और ३५ रजत पदक दिये जाते है।

बच्चों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार[३१]– इसकी शुरूआत १६७६ में की गई थी। इसके तहत बाल कल्याण के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये पांच संस्थानों तथा तीन व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाता हैं। राष्ट्रीय बाल कल्याण पुरस्कार के अन्तर्गत प्रतयेक संस्थान को तीन लाख रूपये नगद तथा प्रमाण पत्र और प्रत्येक व्यक्ति को एक लाख रूपये तथा प्रमाण पत्र दिया जाता हैं।

राजीव गांधी मानव सेवा पुरस्कार[३२]– बच्चों की सेवा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान करने वाले व्यक्ति को पुरस्कृत करने के लिए १६६४ में इस पुरस्कार की शुरूआत की गई। इसके अंतर्गत एक लाख रूपये नगद, एक रजत पदक और प्रशस्ति पत्र दिया जाता हैं।

मॉरीशस प्रतिनिधिमंण्डल भारत में[३३]– महिला तथा बाल विकास विभाग के अंतर्गत स्थापित स्वायत्त संगठन 'सार्वजनिक सहयोग तथा विकास संस्थान' ने मॉरीशस में १२ सदस्यों के प्रतिनिधिमंण्डल के लिए दो प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयेजन किया। बाल विकास तथा बाल कल्याण के बारे में प्रशिक्षण कार्यक्रम और स्वयं समूह के बारे में पाठ्यक्रम तथा अल्प उद्यम विकास के कार्यक्रम २००५ में कमशः फरवरी तथा अप्रैल में आयोजित किये गए। इन कार्यक्रमें का आयोजन दोनों देशों के बीच हुए सांस्कृतिक आदान प्रदान कार्यक्रमों के अंतर्गत किया गया।

बच्चों पर हिंसा के बारे में सार्क क्षेत्रीय बैठक[३४]– बच्चों पर हिंसा के सम्बन्ध में १६ से २१ मई २००५ तक इस्लामाबाद में दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय बैठक में विचार विमर्श किया गया। इसका आयोजन बच्चों और महिलाओं के यौन शोषण के खिलाफ दक्षिण समन्वयक दल द्वारा गठित बाल अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र समिति की सिफारिशों के बाद २००१ में किया गया।

राष्ट्रीय बाल भवन[३५]– राष्ट्रीय बाल भवन, नई दिल्ली मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा वित्त पोषित एक स्वायत्त संस्था हैं, जो ५-१६ वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को रचनाशीलता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने व चुनौती स्वीकार करने, रचना धार्मिता की भावना बढ़ाने के लिए की गयी थी।

अपनी स्थापना के बाद से ही बाल भवन ने उत्तरोत्तर प्रगति की है और पिछले कई वर्षों से बाल भवन आन्दोलन में उत्तरोत्तर तेजी आई हैं।

राष्ट्रीय बाल भवन के लक्ष्य विज्ञान, रचनात्मक कला एवं शिल्प, नृत्य नाटक (मंचीय) कला, फोटोग्राफी, सिलाई/कढ़ाई खेल, प्रकाशन से जुड़ी गतिविधियॉ इत्यादि कई विषयों पर व्यपक कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान केन्द्र (एन.टी.आर.सी.) बाल भवन द्वारा आयोजित रचनात्मक कार्यो से जुड़े शिक्षक एवं प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देने के संसाधन केन्द्र के रूप में काम करता हैं। एन.टी.आर.सी. प्राथमिक शिक्षकों एवं प्रशिक्षित स्नातक शिक्षकों को प्रशिक्षण देता हैं।

रचनात्मक कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रतिभा से सम्पन्न बच्चों को राष्ट्रीय बाल भवन की बालश्री योजना के अन्तर्गत सम्मानित किया जाता है। इसके चयन हेतु क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कठोर प्रक्रिया अपनाई जाती हैं। राष्ट्रीय बाल भवन

स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अपने कार्यक्रमों का आयोजन करने के अलावा अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक आदान प्रदान कार्यक्रम में भी भाग लेता हैं।

महिला और बाल विकास विभाग- महिलाओं और बच्चों के समग्र विकास को वांछित गति प्रदान करने के लिए १९८५ में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला और बाल विकास विभाग गठित किया गया। विभाग महिलाओं और बच्चों के विकास की देखरेख करने वाली प्रमुख एजेन्सी के रूप में योजनाएँ, नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करता हैं, महिलाओं और बच्चों के बारे में कानून बनाता है और उनमें संशोधन करता है और महिलाओं तथा बच्चों के विकास के क्षेत्र में काम करने वाली सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के संगठनों के प्रयासों का दिशानिर्देशन और समन्वय करता हैं। इसके अलावा विभाग महिलाओं और बच्चों के लिये कुछ अभिनव कार्यक्रमों को भी लागू करता हैं। ये कार्यक्रम प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण,रोजगार और आमदनी बढ़ाने, कल्याण और सहायक सेवाओं तथा जागरूकता पैदा करने और महिलाओं के बारे में चेतना जगाने के क्षेत्र में होते हैं।

राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान- नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान एक स्वायत्त संगठन है जिसकी स्थापना महिला बाल विकास विभाग, मानव संस्थान मंत्रालय के तत्वाधान में की गयी हैं। इसका उद्देश्य सामाजिक विकास में स्वैच्छिक कार्यो को प्रोत्साहन देना तथा उनका विकास करना, बाल विकास पर व्यापक दृष्टि रखना, राष्ट्रीय बाल नीति के अनुरूप कार्यक्रमों का विकास, प्रोत्साहन और सामाजिक विकास में सरकारी तथा स्वयंसेवी संगठनों में समन्वय के उपाय करना और सरकारी तथा स्वैछिक संगठनों के प्रयासो के जरिए बच्चों के लिए कार्यक्रम आयोजित करने के लिए पृष्ठभूमि तथा ढ़ॉचा तैयार करना हैं।

समन्वित बाल विकास कार्यक्रम का संचालन करने वालों का प्रशिक्षण देने वाला यह अग्रणी संस्थान हैं। यह महिला एवं बाल विकास के कार्यक्रमों तथा नीतियों पर अमल करने तथा उन्हें बढ़ावा देने और स्वैच्छिक कार्यों के लिए सरकार तथा स्वयंसेवी एजेन्सियों को तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराता है। इसके अलावा यह क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों, अनुसंधानों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी इकाइयों के साथ समन्वय रखता हैं। संस्थान के चार क्षेत्रीय केन्द्र हैं जो बंगलौर, गुवाहाटी, लखनऊ और इन्दौर में हैं।

चाइल्ड हैल्प लाइन[३६] : चाइल्ड हैल्प लाइन इण्डिया फाउण्डेशन ने भारत सरकार की सहायता से एक फोन सेवा आरम्भ की है। यह फोन सेवा आपात सेवा है और उन बच्चों के लिये है जिन्हें किसी भी समय देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। ऐसे बच्चों की समस्याओं को समझने और दूर करने के लिए २४ घंटे की टेलीफोन हैल्प लाइन-चाइल्ड लाइन १०९८ शुरू की गयी है। चार अंको की यह निःशुल्क लाइन है जिससे किसी बच्चों की फोन कॉल सेन्टर से जुड़ जाती है। शरणार्थी, अकेले, निराश्रित, मनोशारीरिक रोग से ग्रस्त बच्चे, निरक्षर, कुपोषण का शिकार बच्चें, एड्स से पीड़ित आदि बच्चें इस फोन सेवा का लाभ उठा सकते हैं। इस समय यह फोन सेवा ७४ नगरों में चल रही हैं। हर रोज १५०० सामाजिक कार्यकर्ता तथा १५५ बाल अधिकारकर्मी, ८३ चाइल्ड लाइन सेन्टर और ३३ सहयोग सेवा केन्द्र चलाते हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयेग- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने समय-समय पर बच्चों के अधिकार संरक्षण के लिए आवाज उठायी है। बच्चों के गायब होने, बाल श्रमिकों की समस्या व बच्चों के शोषण के खिलाफ अनेक निर्देश दिये हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार बच्चों के गायब होने के लिए पुलिस प्रशासन जिम्मेंदार हैं। आयोग के अनुसार सन् २००६ में ४५ हजार बच्चें गायब हुए। आयोग ने विद्यालय, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, जेल में कैद माताओं के संग बच्चें, व पारिवारिक विच्छेद के कारण होन वाले बाल अधिकार उल्लंघन को संज्ञान में लेकर कठोर निर्देश दिये हैं।

किशोर न्याय के लिए समेंकित कार्यक्रम- कठिन परिस्थितियों एवं सरकारी संस्था व स्वयं सेवी संगठनों के संघर्षरत बच्चों के लिए यह कार्यक्रम सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम के मुख्य आयाम इस प्रकार हैं-

१. किशोर न्याय के लिए राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन।
२. किशोर न्याय फंड का निर्माण।
३. किशोर न्याय अधिनियम से सम्बन्धित न्यायिक, प्राशसनिक, पुलिस व स्वयं सेवी संगठनों का प्रशिक्षण, अवस्थापना एवं सक्रियता बढ़ाना।
४. सही विकल्पों के लिए संस्थात्मक देखभाल सुनिश्चित करना।
५. संरचना में गुणात्मक सुधार के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना।

उपर्युक्त बाल अधिकार संरक्षण के लिए विभिन्न संस्थाओं के प्रयासो, राष्ट्रीय व राज्यसरकार द्वारा बनाये गये अधिनियमों

व अभिकरणों के बावजूद बच्चों के अधिकारों की स्थिति दयनीय है। अतः बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए अभी और प्रयासों की जरूरत है। यह प्रयास व्यक्तिगत स्तर से लेकर परिवार,समाज, राज्य, राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने चाहिए। बच्चों के अधिकारों की संकल्पना का प्रसार आम आदमी तक होना अति आवश्यक है। इसमें सरकारी प्रयासों के साथ-साथ स्वयं सेवी संस्थाओं की मदद भी ली जानी चाहिए। साथ ही न्यायपालिका को और अधिक सक्रिय होकर भावी नागरिकों के अधिकारों के प्रति सजग होना चाहिए।

सन्दर्भ

१. शर्मा, सुभाष, ''भारत में बाल मजदूर'' प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली १९९९, पृ. १९५८

२. व्होरा, आशा रानी, ''बाल अधिकार और बाल संरक्षण'' प्रकाशन विभाग २००५, नई दिल्ली, पृ. ३४

३. अमर उजाला, मुरादाबाद संस्करण दिनांक २४ जुलाई २०१५, पृ. १२

४. भारत, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली २००७, पृ. ९५७

५. भारत, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली २००७, पृ. ५०७

६. श्रीवास्तव एच.बी., ''किशोर न्याय अधिनियम २०००'' सेन्ट्रल ला पब्लिकेषनस, इलाहाबाद, पृ. २

७. सिंह,वन्दना एवं झा, सुजाता, ''बालशोषण एवं उत्पीड़न'' योजना पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली जून २००७, पृ. ४३

८. भारत, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली २००७, पृ. ९५४

९. भारत, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली २००७, पृ. ९५५

१०. दैनिक जागरण, मुरादाबाद संस्करण दिनांक ०१ अगस्त २००७, पृ. १६

११ शर्मा, सुभाष, पूर्वोक्त, पृ. १०१

१२. शर्मा, सुभाष, पूर्वोक्त, पृ. १०२

१३. यूनीसेफ, एक बच्चा होने का अधिकार, यूनीसेफ इण्डिया कन्ट्री ऑफिस, इन्डो/थामसन प्रेस, नोयडा १९९४,पृ. १५

१४. त्रिपाठी टी.पी., 'मानव अधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि', इलाहाबाद ला पब्लिकेशन २००४, पृ. १४६

१५. वही, पृ. १४६

१६. भारत, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, पृ. ४५८

१७. योजना आयोग, ''ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लक्षित रिपोर्ट'' पृ. १०

१८. दैनिक जागरण,मेरठ संस्करण दिनांक १५ नवम्बर २००६, पृ. १

१९. भारत २००७, पृ. ९५६

२०. वही, पृ. ९५५

२१. वही, पृ. ९५५

२२. वही, पृ. ९५६

२३. वही, पृ. ९५६

२४. भारत , प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, पृ. ९५६

२५. वही, पृ. २३५

२६. भारत, पूर्वोक्त, पृ. ५०२

२७. भारत, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, पृ. ५०१

२८. भारत, पृ. ५०३

२९. भारत, पृ. ५०२

३०. भारत, पृ. ९५८

३१. भारत, पृ. ९५८

३२. भारत, पृ.

३३. भारत, पूर्वोक्त, पृ. ९५६

३४. वही, पृ. ९५६

३५. वही, पृ. ९९५

३६. साल्दी, रतन, ''चाइल्ड हैल्प लाइन-१०९८'' योजना पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली नवम्बर २००६, पृ. ३७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारत का जनजातीय परिदृश्य

❑ डॉ. सीमा श्रीवास्तव

भारत में अनेक जनजातियाँ पाई जाती है जो देश के विभिन्न हिस्सों में निवासरत हैं। जनजाति शब्द की उत्पत्ति तथा अर्थ के विषय में अलग-अलग विचारधारा है- मानवशास्त्र शब्दकोष के अनुसार जनजाति एक सामाजिक समूह है जो प्रायः निश्चित भूभाग में रहते हैं जिनकी अपनी भाषा, सभ्यता, सामाजिक संगठन व एक मुखिया होता है।[१] देश के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र के लगभग २० प्रतिशत भाग में इनका निवास है। विश्व के विभिन्न सुदूर पहाड़ी जंगली क्षेत्रों में निवास करने वाले मानव समूह को जनजाति कहा जाता है, इनकी सांस्कृतिक विशेषतायें, जीवनशैली, भाषा, व्यवसाय सभ्य समाज से एकदम अलग होते हैं। भारत में इन्हें समय-समय पर अलग-अलग नाम दिये गये हैं। रिजले ग्रियर्सन, ने इन्हें आदिवासी कहा है[२] तो हट्टन ने इन्हें प्राचीन जनजाति कहा है।[३] सन्- १८९१ की जनसंख्या रिपोर्ट में तत्कालीन जनसंख्या आयुक्त बेन्स ने इन्हें कृषक व चरवाहा श्रेणी के अन्तर्गत वन्यजाति कहा। १९०१ की जनसंख्या रिपोर्ट में प्रकृतिवादी, १९११ में जनजातीय प्रकृतिवादी, १९२१ में पहाड़ी व वन्य जनजाति, १९३१ में आदिम जनजाति, १९४१ में जनजाति कहा गया।[४]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सन् १९५० में अनुसूचित जनजाति आदेश १९५० के अंतर्गत २१२ जनजातियों की सूची तैयार की गई व उन्हें अनुसूचित जनजाति माना गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४२ के द्वारा राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह समय-समय पर सार्वजनिक सूचना के द्वारा विभिन्न जनजातियों को सूचीबद्ध कर उन्हें अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में शामिल कर सकते हैं। वर्ष १९५० में जो २१२ जनजातियों की सूची बनाई गई थी वर्तमान में इनकी संख्या ७०० से अधिक हो गई है।[५]

> भारत में अनेक जनजातियाँ पाई जाती हैं जो देश के विभिन्न हिस्सों में निवासरत हैं। भारत के सभी राज्यों में जनजातियों के वितरण में काफी भिन्नता है। अधिकांश जनजातीय जनसंख्या भारत के मध्य क्षेत्रों में केन्द्रित है। यद्यपि कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत पूर्वोत्तर राज्यों में अधिक है। इसी प्रकार अधिकांश जनजातीय जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है क्योंकि ये मुख्यतः कृषि कार्य से जुड़े हुए हैं। कुछ स्वयं कृषक हैं तो अधिकांशतः कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत है। जनजातीय जनसंख्या में स्त्रियों की संख्या पुरूषों की तुलना में अधिक है जो जनजातीय समाज में स्त्रियों की बेहतर स्थिति को दर्शाता है। आजादी के बाद विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों के कारण जनजातीय साक्षरता में वृद्धि तो हुई है लेकिन उनमें बीच में पढ़ाई छोड़ देने की दर भी अधिक है। शिक्षित न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही है। सामान्य वर्ग की तुलना में अधिक जनजातीय जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जनजातीय जनसंख्या आज भी आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है।

जनजातीय समाज सभ्य दुनिया के दिखावे से दूर सभ्यताजनित अनेक वर्जनाओं व आडम्बरों से परे एक अलग संसार है जिनका जीवन प्रकृति की गोद में बसता है। प्रकृति के प्रति इनका लगाव अनुपम होता है । आधुनिक समाज में आज भी एकमात्र समाज यही है जिसे आधुनिकता की दौड़ पसंद नहीं आती । ये आज भी पहाड़ों, दुर्गम पठारों, जंगलों, अनुर्वरा भूमि पर निवास करते हैं व परम्परागत व्यवसाय करते हैं । जनजातीय समाज के पारिवारिक व सांस्कृतिक मूल्य गैर जनजातीय समाज से स्पष्टता भिन्न होते हैं। जनजातीय समाज में ऊँच-नीच का भेद, खान-पान व सामाजिक सहवास जैसे निषेध नहीं पाए जाते हैं। यह समाज जितना आदिम है उतना ही सरल है जो स्वनिर्मित सामाजिक नियमों के द्वारा अनुशासित होता है । अधिकांश जनजातियों में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कार्यों का विभाजन स्त्री व पुरूष के आधार पर होता है जहाँ पुरूष बांध बनाना, धनुष- बाण, जाल और मछली मारने के उपकरणों का निर्माण, टोकरी बनाना, छप्पर निर्माण का कार्य करते हैं वहीं स्त्रियाँ वनोपज संग्रहण, दस्तकारी भारवहन, रस्सी निर्माण, कृषि कार्य, लकड़ी संग्रह उत्पादित समान को बाजार ले जाना, घर की देखभाल आदि कार्य करती हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में भारत के जनजातीय परिदृश्य को विभिन्न जनगणनाओं के आधार पर विश्लेषित किया गया है।

भारतीय जनजातियों का भौगोलिक वितरणः- भारत

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, शासकीय कला महाविद्यालय कटंगी, जिला- बालाघाट (म.प्र.)

के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में इनके निवास के आधार पर इनके भौगोलिक वितरण को निम्नानुसार समझा जा सकता हैः

तालिका क्रमांक- १

भारत में जनजातियों का भौगोलिक वितरण

उत्तर पूर्वी क्षेत्र	**जनजातियाँ**
मिजोरम	लुसाई, कूकी, गारो, खासी, मिकिर, जयंतिया।
नागालैण्ड	नागा, कूकी, मिकिर, गारो।
मेघालय	गारो, खासी, जयंतिया।
सिक्किम	लेपचा, भूरिया, लिम्बू, तमांग।
त्रिपुरा	चकमा, गारो, खासी, कूकी, लुसाई, लियांग, संथाल।
अरूणाचल प्रदेश	डाफला, सिंगफू।
आसाम	बोरो, मिकिर, लालुंग, हर्जोंग।
मणिपुर	नागा, कूकी,
पूर्वी क्षेत्र	
उड़ीसा	बिरहोर, गोंड, जुआंग, खोंड, ओरांव, धारूआ।
पश्चिम बंगाल	असुर, बिरहोर, कोरवा, लेपचा, मुण्डा, संथाल।
बिहार	असुर, बंजारा, बिरहोर, कोरबा, ओरांव, संथाल।
झारखण्ड	बंजारा, बाथुड़ी, बेदिया, भूमिज, चिक।
मध्य क्षेत्र	
मध्यप्रदेश	भील, गोंड, बिरहोर, खरिया।
छत्तीसगढ़	गोंड, बैगा, कोरबा, बाइसन हार्न, भारिया, हल्बा
पश्चिमी क्षेत्र	
गुजरात	भील, धोदिया, गोंड, सिद्दी, बोदिया।
राजस्थान	भील, दामोर गरसिया, मीणा, सहरिया।
महाराष्ट्र	भील, भूमिज, ढोडिया, नायक, रथवा।
गोआ	ढोडी, सिद्दी।
दमन व दीव	दुबला, ढोडिया, वारली, नैकडा, सिद्दी।
दादरा व नागर	ढोडिया, दुबला, काथोड़ी, कोकना, कोली।
उत्तरी क्षेत्र	
उत्तर प्रदेश व उत्तरांचल	भोरिया, बुकसा, जौनसारी, थारू व राजी।
हिमाचल प्रदेश	गद्दी, गुज्जर, स्वांग्ला।
जम्मू व कश्मीर	गुज्जर, गद्दी।
दक्षिणी क्षेत्र	
आंध्रप्रदेश	भील, चेंचू, गोंड।
केरल	चोलानायकन, कादर, कुरूम्बा
तमिलनाडू	कुरूम्बा इरूला ,पणियन ,टोडा
कर्नाटक	जेनू कुरूम्बा, कोरागा
द्वीपसमूह	
अंडमान व निकोबार	जारवा, निकोबारी, ओंग।
लक्षद्वीप	अमिनदीवी, कोया।

स्त्रोतः- वार्षिक रिपोर्ट २०१२-१३ जनजातीय मंत्रालय।

तालिका क्रमांक- २

भारत के राज्यों में जनजातीय जनसंख्या

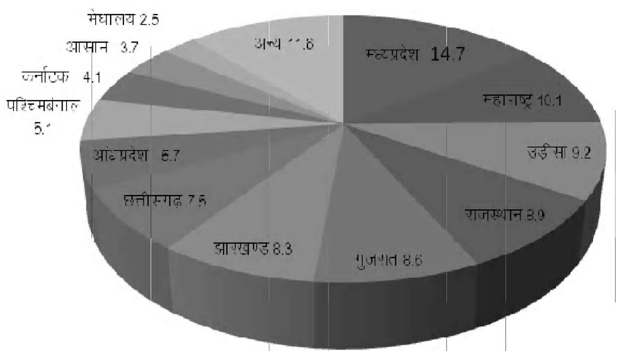

स्त्रोत : Statistical profile of scheduled tribes in India 2013

देश के विभिन्न राज्यों में जनजातीय जनसंख्या में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। तालिका क्रमांक- २ से स्पष्ट होता है कि देश की सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या मध्यप्रदेश में १४.७ प्रतिशत निवास करती है। इसके पश्चात १०.१ प्रतिशत महाराष्ट्र में, ९.२ प्रतिशत उड़ीसा में, ८.९ प्रतिशत राजस्थान में, ८.६ प्रतिशत गुजरात में, ८.३ प्रतिशत झारखण्ड में, तथा ७.५ प्रतिशत जनसंख्या छत्तीसगढ़ में निवास करती है। लेकिन राज्यों की कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या की स्थिति इससे भिन्न है जो तालिका क्रमांक- ३ से स्पष्ट होती है।

तालिका क्रमांक- ३

जनजातीय जनसंख्या का अनुपात

अधिकतम		न्यूनतम	
राज्य	अनुपात %	राज्य	अनुपात %
लक्षद्वीप	९४.८	उत्तरप्रदेश	०.५६
मिजोरम	९४.४	तमिलनाडु	१.१
नागालैंड	८६.५	बिहार	१.२८
मेघालय	८६.१	केरल	१.४५
अरूणाचल	६८.८	उत्तराखण्ड	२.८६

statistical profile of scheduled tribas in India 2013

देश के विभिन्न राज्यों की कुल जनसंख्या में अधिकतम जनजातीय जनसंख्या वाले राज्यों/द्वीप में सर्वाधीक जनसंख्या लक्षद्वीप की है जहाँ की ९४.८ प्रतिशत जनजाति जनसंख्या है। इसी प्रकार मिजोरम, नागालैण्ड व मेघालय की भी अधिसंख्य आबादी जनजाति है। अरूणाचल प्रदेश की कुल ६८.८ प्रतिशत आबादी विभिन्न जनजातियों की है। देश में न्यूनतम जनजाति जनसंख्या वाले राज्य उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, केरल व उत्तराखण्ड है जहाँ क्रमशः ०.५६, १.१, १.२८, १.४५, २.८६ प्रतिशत जनजाति आबादी निवास करती है।

तालिका क्रमांक- ४

भारत में जनजातीय जनसंख्या व दशकीय वृद्धि

जनगणना वर्ष	जनसंख्या			दशकीय वृद्धि		
	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय
१९६१	३,०१,३०,१८४	२,९३,५७,७९०	७,७२,३९४	–	–	–
१९७१	३,८०,१५,१६२	३,६७,२०,६८१	१२,९४,४८१	२६.२	२५.१	६७.६
१९८१	५,१६,२८,६३८	४,८४,२७,६०४	३२,०१,०३४	३५.८	३१.९	१४७.३
१९९१	६,७७,५८,३८०	६,२७,५१,०२६	५०,०७,३५४	३१.२	२९.६	५६.४
२००१	८,४३,२६,९७८	७,७३,३९,३३५	६६,८७,६४३	२४.५	२३.२	३९.५
२०११	१०,४२,८१,०३४	९,३८,१९,१६२	१,०४,६१,८७२	२३.७	२१.३	४९.७

Tribal Demography 2013, Ministry of Tribal Affairs Statistics Division, Government of India.

भारत में जनजातीय जनसंख्या : स्वतंत्र भारत की प्रथम जनगणना वर्ष १९५१ में हुई थी जिसके अनुसार जनजातीय जनसंख्या १,९१,१६,४९८ थी जो कुल जनसंख्या का ५.३६ प्रतिशत थी।[७] तालिका क्रमांक-४ से स्पष्ट होता है कि १९६१-७१ के दशक में कुल जनजातीय जनसंख्या में २६.२ प्रतिशत की वृद्धि हुई इस समय कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का अनुपात ६.९ प्रतिशत ही था। इस दशक में ग्रामीण जनसंख्या के २५.१ प्रतिशत की तुलना में नगरीय जनसंख्या में ६७.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण रोजगार की तलाश में जनजातीय जनसंख्या का नगरों की ओर आना है। वर्ष १९७१-८१ के दशक में यह वृद्धि सर्वाधिक ३५.८ प्रतिशत थी जो क्रमशः अगले दशकों में ३१.२ प्रतिशत, २४.५ प्रतिशत, २३.७ प्रतिशत हो गई। अर्थात जनजातीय जनसंख्या की दशकीय वृद्धि निरंतर कम होती गई। तालिका के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या की वृद्धि तेजी से हुई है।

ग्रामीण नगरीय अनुपातः

तालिका क्रमांक- ५

जनजातीय जनसंख्या (प्रतिशत में)

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का अनुपात		
	ग्रामीण	नगरीय	कुल
१९६१	८.१	१.०	६.९
१९७१	८.४	१.२	६.९
१९८१	९.२	२.०	७.६
१९९१	१०.१	२.३	८.१
२००१	१०.४	२.४	८.२
२०११	११.३	२.८	८.६

स्त्रोतः- जनगणना आंकड़े १९६१ १९७१ १९८१ १९९१ २००१ २०११

जनजातियों के निवास संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय जनसंख्या अधिक है। वर्ष १९६१ में जहाँ ८.१ प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या ग्रामों में निवास करती थी वह वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार ११.३ प्रतिशत हो गया है। इसी क्रम में नगरीय जनसंख्या १.० प्रतिशत से २.८ प्रतिशत हो गई है। अर्थात ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर में बहुत ज्यादा अंतर नही है। आज भी अधिसंख्य जनजातीय जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में ही निवास करती है। इसका मुख्य कारण उनका परंपरागत व्यवसाय जैसे शिकार करना, वनोपज संग्रहण, कृषि, पशुपालन करना इत्यादि है। भारत की कुल जनसंख्या में से जनजातीय जनसंख्या १०४.२ मिलियन है जो कुल जनसंख्या का ८.६ प्रतिशत है जिसमें अधिसंख्या आबादी ११.३ प्रतिशत आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जबकि केवल २.८ प्रतिशत आबादी ही नगरीय क्षेत्रों में निवास करती है।

जनजातीय लिंग अनुपातः- लिंग अनुपात अर्थात स्त्री पुरूष जनसंख्या, प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या। यदि किसी समाज में पुरूषों की संख्या अधिक है तो यह माना जाता है कि उस समाज में स्त्रियों की स्थिति चिंतनीय है। जनसंख्या का लिंग अनुपात सामाजिक व आर्थिक विशेषता को प्रभावित करता है। अधिक पुरूष होने से अविवाहित पुरूषों की संख्या बढ़ेगी जबकि अधिक स्त्रियाँ होने से अविवाहित स्त्रियों की संख्या बढ़ेगी। जनजातीय सामाजिक संरचना में लिंगानुपात ही ज्यादा है जो महिलाओं की उच्च सामाजिक प्रस्थिति को दर्शित करता है।

भारत एक विविधता युक्त देश है जहाँ अलग-अलग धर्मो एवं जाति के लोग निवास करते हैं इनके लिंग अनुपात में भी पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इसी क्रम में विभिन्न वर्षो में इस अनुपात में भी अंतर दिखाई देता है।

तालिका क्रमांक- ६

जनजातीय लिंग अनुपात

जनगणना वर्ष	जनजातीय लिंग अनुपात			सामान्य लिंग अनुपात
	ग्रामीण	नगरीय	कुल	
१९६१	९९०	८६५	९८७	९४१
१९७१	९८५	८६६	९८२	९३०
१९८१	९८८	९१२	९८३	९३५
१९९१	९७६	९२०	९७२	९२७
२००१	९८१	९४४	९७८	९३३
२०११	९९१	९८०	९९०	९४०

तालिका क्रमांक- ६के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जनजातीय जनसंख्या में स्त्री पुरूष अनुपात सामान्य जनसंख्या की तुलना में अधिक है। सामान्य जनसंख्या में लिंगानुपात बढ़ाने के लिये अनेक सरकारी व गैर सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं इसके बावजूद विभिन्न वर्षो में जनजातीय लिंगानुपात ही अधिक रहा है। इसी प्रकार ग्रामीण व नगरीय जनसंख्या का तुलनात्मक लिंगानुपात देखने से स्पष्ट होता है कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में यह हमेशा ही अधिक रहा है। इसका मुख्य कारण जनजातीय समाजों में स्त्रियों की स्थिति अन्य समाजों की तुलना में अच्छी है। यहाँ तक कि कुछ जनजातियाँ जैसे गारो, खासी, नायर ऐसी है जो मातृसत्तात्मक है।

साक्षरता : शिक्षा से किसी भी समाज की प्रगति का पता लगाया जा सकता है। यदि किसी समाज के लोग शिक्षित है तो निश्चित ही वह समाज तेजी से प्रगति करेगा, वहाँ अंधविश्वासों व कुरीतियों का प्रचलन नही होगा, इसके विपरीत यदि किसी समाज में शिक्षा का प्रसार अधिक नही होगा तो वहाँ कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का प्रचलन अधिक होगा। जैसा कि हम जानते हैं विभिन्न जनजातीय समूह सुदूर दुर्गम जंगलों व पहाड़ों में निवास करते हैं अतः उन्हें शिक्षा हेतु पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध नही हो पाती । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इस दिशा में निरंतर सरकारी व गैर सरकारी प्रयास जारी है जिसका परिणाम भी जनजातीय जनसंख्या के आंकड़ों से स्पष्ट होता है।

तालिका क्रमांक - ७

जनजातीय साक्षरता

वर्ष	जनजातीय जनसंख्या			कुल जनसंख्या		
	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	कुल
१९६१	१३.८३	३.१६	८.५३	४०.४०	१५.३५	२८.३०
१९७१	१७.६३	४.८५	११.३०	४५.९६	२१.९७	३४.४५
१९८१	२४.५२	८.०४	१६.३५	५६.३८	२९.७६	४३.५७
१९९१	४०.६५	१८.१९	२९.६०	६४.१३	३९.२९	५२.२१
२००१	५९.१७	३४.७६	४७.१०	७५.२६	५३.६७	६४.८४
२०११	७१.६७	५४.०४	६३.०१	८४.०३	६४.००	७२.८

स्त्रोत - जनगणना रिपोर्ट १९६१, १९७१, १९८१, १९९१, २००१, २०११

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्ष १९६१ में जनजातीय साक्षरता केवल ८.५३ प्रतिशत थी जो कुल जनसंख्या की तुलना में लगभग ४ गुना कम थी। इसमें भी जनजातीय महिलायें साक्षरता के दृष्टिकोण से सामान्य महिला जनसंख्या की साक्षरता १५.३५ प्रतिशत की तुलना में केवल ३.१६ प्रतिशत थी। विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों के चलते जनजातीय साक्षरता की स्थिति में पर्याप्त अंतर आया है। विगत पाँच दशकों में कुल जनजातीय साक्षरता ८.५३ प्रतिशत से बढ़कर ६३.०१ प्रतिशत हो गई है जबकि कुल जनसंख्या की साक्षरता दर २८.३० प्रतिशत से ७२.८ प्रतिशत हुई है अर्थात जनजातीय साक्षरता में जहाँ लगभग ८ गुना वृद्धि हुई है वहीं कुल जनसंख्या में केवल लगभग ३ गुना वृद्धि हुई है। इसी प्रकार जनजातीय पुरूषों की साक्षरता में विगत पाँच दशक में पाँच गुना वृद्धि हुई है जबकि कुल जनसंख्या की वृद्धि दर केवल दो गुनी है। जनजातीय महिलाओं की साक्षरता ३.१६ प्रतिशत से बढ़कर ५४.०४ प्रतिशत हो गई है जबकि कुल जनसंख्या में महिला साक्षरता १५.३५ प्रतिशत से बढ़कर ६४ प्रतिशत हो गई है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सामान्य जनसंख्या की तुलना में जनजातीय साक्षरता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है लेकिन फिर भी इस दिशा में और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। वर्तमान में विभिन्न शैक्षणिक स्तरों पर जनजातीय शिक्षा की स्थिति तालिका क्रमांक- ८ से स्पष्ट होती है।

तालिका क्रमांक- ८

जनजातीय साक्षरता

शैक्षणिक स्थिति	जनजातियाँ						सभी वर्ग					
	ग्रामीण			नगरीय			ग्रामीण			नगरीय		
	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	कुल
निरक्षर	३५.८	५८.३	४७.०	१२.७	३१.३	२१.८	२६.०	४९.८	३७.८	१०.४	२३.६	१६.७
साक्षर	२६.४	२१.७	२४.२	१७.६	१६.७	१७.१	२५.३	२२.०	२३.७	१५.६	१७.२	१६.४
माध्यमिक	१८.३	१०.३	१४.३	१९.३	१५.३	१७.३	२०.५	१३.५	१७.०	१७.५	१५.३	१६.४
सेकेण्डरी	११.१	५.७	८.४	१८.२	१४.७	१६.५	१४.७	८.२	११.५	१६.५	१५.६	१७.७
हायर सेकेण्डरी	५.७	२.७	४.२	१४.३	११.१	१२.८	८.०	४.२	६.२	१३.६	१२.१	१३.०
डिप्लोमा/सर्टिफिकेट	०.६	०.३	०.४	२.६	१.८	१.८	१.०	०.४	०.७	२.६	१.३	२.१
स्नातक व अन्य	२.२	०.९	१.६	१५.३	९.८	१२.६	४.५	२.०	३.२	१९.८	१४.७	१७.३

स्त्रोत : रिपोर्ट नं. ५४३, nfhs 2009, causus of India.

तालिका क्रमांक-८ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारत की कुल जनजातीय जनसंख्या एवं देश की कुल साक्षरता दर में पर्याप्त अंतर है वहीं ग्रामीण जनजातीय जनसंख्या नगरीय जनजातीय जनसंख्या से साक्षरता के मामले में पीछे है। जनजातीय जनसंख्या के शैक्षणिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनका बीच में ही पढ़ाई छोड़ देना है। जिसके आंकड़े तालिका क्रमांक -९ से स्पष्ट होते हैं।

तालिका क्रमांक- ६
जनजातीय ड्राप आर्डर रेट

कक्षा	बालक		बालिका	
	जनजाति	अन्यवर्ग	जनजाति	अन्यवर्ग
कक्षा I - V	३७.२	२८.२	३३.६	२५.१
कक्षा I - VIII	५४.७	४०.३	५५.४	४१.०
कक्षा I - X	७०.६	५०.४	७१.३	४७.६

स्रोत Statistics of school education 2010-11

जनजातियों में बीच में ही पढ़ाई छोड़े जाने संबंधी आंकड़े का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अन्य वर्गों की तुलना में प्राथमिक स्तर पर ही जनजातीय विद्यार्थियों के स्कूल छोड़ने की दर लड़कों में ३७.२ प्रतिशत तथा लड़कियों में ३३.६ प्रतिशत है। कक्षा १० वीं तक आते-आते जनजाति वर्ग के ७०.६ प्रतिशत लड़के एवं ७१.३ प्रतिशत लड़कियाँ बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती है। इसका मुख्य कारण उनकी गरीबी है।

जनजातीय व्यवसायिक संरचना : सामान्यतः जनजातियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नही होती जनजातियों में गरीबी की स्थिति बहुत अधिक चिंतनीय है। परंपरागत रूप से इनका मुख्य व्यवसाय खाद्य संग्रहण, कृषि कार्य, दस्तकारी, पशुपालन इत्यादि है।सामान्य रूप से आर्थिक संदर्भ में जनजातीय समाज अपनी अर्थव्यवस्था में एक ऐसा आधारभूत समाज माना जाता है जो आर्थिक व्यवहार में आज भी प्रारंभिक अवस्था में जीवन-यापन कर रहा है । जनजातीय अर्थव्यवस्था प्राकृतिक साधनों फल-फूल, पशु-पक्षी, पहाड़ों-घाटियों, नदियो-झरनों एवं जंगलों पर निर्भर है । आज भी लगभग ६० प्रतिशत जनजातियाँ कृषि, खाद्य संग्रहण, शिकार, मछली पालन, शिल्पकला, औद्योगिक श्रमिक के रूप में कार्यरत है ।

तालिका क्रमांक-१०
जनजातीय व्यवसायिक संरचना

विवरण	कुल जनसंख्या			जनजातीय जनसंख्या		
	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय
कुल कार्यशील	४६.१	४८.६	३६.६	५८.०	५६.८	४२.६
मुख्य कार्यशील	३४.६	३४.५	३४.६	३७.६	३७.६	३५.०
कृषक	२४.६	३३.०	२.८	३४.५	३६.६	५.८
कृषि मजदूर	३०.०	३६.३	५.५	४४.५	४७.१	१३.३
गृह निर्माण, सेवायें	३.८	३.४	४.८	१.८	१.७	२.५
अन्य कार्य	४१.६	२४.३	८६.६	१६.२	१४.३	७८.३
अकार्यशील जनसंख्या	५३.३	५०.४	५६.४	४२.०	४०.२	५७.४

स्त्रोत भारत की जनगणना २०११

वर्ष २०११ की जनगणना के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि कुल कार्यशील जनसंख्या ४६.१ प्रतिशत की तुलना में कुल जनजातीय जनसंख्या ५८ प्रतिशत है। अधिसंख्या जनजाति आबादी अब भी अन्य वर्गो की तुलना में कृषि कार्य से जुड़ी हुई है। कुल अकार्यशील जनसंख्या में जनजाति जनसंख्या का प्रतिशत ४२.२ प्रतिशत है। अर्थात अधिकांश जनजाति जनसंख्या किसी न किसी प्रकार के व्यवसाय से जुड़ी हुई है।

जनजातीय व्यवसायः- परंपरागत रूप से जनजातियों का मुख्य कार्य कृषि, पशुपालन, वनोपज संग्रहण इत्यादि है। जिसमें परिवार के लगभग सभी सदस्य सक्रिय सहभागिता रखते हैं। विकास की प्रक्रिया में कुछ जनजातियाँ आज भी अपने परंपरागत व्यवसाय से जुड़ी हुई है तो कुछ जनजातीय जनसंख्या को विस्थापन के चलते अपना पैतृक निवास छोड़कर काम की तलाश में दूसरे स्थानों पर जाकर बसना पड़ा। जनजातियों के विकास हेतु किये जाने वाले सरकारी व गैर-सरकारी प्रयासों के चलते धीरे-धीरे जनजातीय जनसंख्या विकास की मुख्य धारा से जुड़ने लगी है।

तालिका क्रमांक-११
जनजातीय कार्यशील जनसंख्या

कार्यशीलता	जनजातीय जनसंख्या		कुल जनसंख्या		अंतर	
	२००१	२०११	२००१	२०११	२००१	२०११
कुल कार्यशील जनसंख्या						
पुरूष	५३.२	५५.६	५१.७	६८.६	१.५	-१३.३
महिला	४४.८	४४.४	२५.६	३१.१	१६.२	१३.३
मुख्य कार्यशील जनसंख्या						
पुरूष	४३.५	६३.६	४५.१	७५.४	-१.६	-११.५
महिला	२३.६	३६.१	१४.७	२४.६	६.२	११.५
सीमांत कार्यशील जनसंख्या						
पुरूष	६.७	४०.२	६.६	४६.२	३.१	-६.०
महिला	२०.६	५६.८	११	५०.१	६.६	६.७

स्त्रोत भारत की जनगणना २०११

तालिका क्रमांक- ११ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्ष २०११ में कुल कार्यशील जनसंख्या में ६८.६ प्रतिशत पुरूषों तथा ३१.१ प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी है जबकि जनजातीय जनसंख्या में पुरूषों की भागीदारी ५५.६ प्रतिशत तथा महिलाओं की भागीदारी ४४.४ प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि जनजातीय जनसंख्या में पुरूषों की कार्यशीलता कुल पुरूष क्रियाशीलता से कम है जबकि जनजातीय महिला क्रियाशीलता कुल महिला क्रियाशीलता से अधिक है। जो वर्ष २००१ में १६.२ प्रतिशत तथा वर्ष २०११ में १३.३ प्रतिशत अधिक है। यही स्थिति मुख्य कार्यशील जनसंख्या तथा सीमांत कार्यशील जनसंख्या में भी दिखाई देती है। इसका कारण यह हो सकता है कि जनजातियों में बहुत ज्यादा गरीबी है अतः महिलायें अधिक अनुपात में कार्य करती है।

जनजातियों के जनसंख्यात्मक विश्लेषण के आधार पर भारत के जनजातीय परिदृश्य के बारे में कहा जा सकता है कि भारत के सभी राज्यों में जनजातियों के वितरण में काफी भिन्नता है। अधिकांश जनजातीय जनसंख्या भारत के मध्य क्षेत्रों में केन्द्रित है। यद्यपि कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत पूर्वोत्तर राज्यों में अधिक है। इसी प्रकार अधिकांश जनजातीय जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है क्योंकि ये मुख्यतः कृषि कार्य से जुड़े हुए हैं। कुछ जनजातीय जनसंख्या स्वयं कृषक है तो अधिकांशतः कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत है। जनजातीय समाज में स्त्रियों की संख्या पुरूषों की तुलना में अधिक है जो जनजातीय समाज में स्त्रियों की बेहतर स्थिति को दर्शाता है। आजादी के बाद विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों के कारण जनजातीय साक्षरता में वृद्धि तो हुई है लेकिन उनमें बीच में पढ़ाई छोड़ देने की दर भी अधिक है। अधिक शिक्षित न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही है। सामान्य वर्ग की तुलना में अधिक जनजातीय जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही हैं उल्लेखनीय है कि जनजातीय महिलायें भी अनेक प्रकार के कार्य करती है। संक्षेप में भारत के जनजातीय परिदृश्य के बारे में कहा जा सकता है कि जनजातीय जनसंख्या आज भी आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है, शिक्षा व रोजगार में सुधार तो हुआ है पर और अधिक सुधार की आवश्यकता है।

संदर्भ

१. तिवारी विजय कुमार, 'भारत की जनजातियाँ', हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, १६६८

२. उप्रेती, हरिश्चंद्र, 'इंडियन ट्राइब्स', सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, १६७०, पृ. १

३. हट्टन जे. एच., सेन्सस रिपोर्ट ऑफ इण्डिया- १६३१', १६३७

४. तिवारी विजय कुमार, पूर्वोक्त पृ. २

५. भारत (२०१२), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, १२१३

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

भूमिका संघर्ष : कृत्रिम एवं वास्तविक

❑ **डा० रेनू प्रकाश**

दो या दो से अधिक भूमिकाओं के मध्य जब विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होती है तो भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। भूमिका संघर्ष की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति विभिन्न पद मर्यादाओं को धारण करके अपने जीवन में विरोधी भूमिकाओं का सामना करता है। एक व्यक्ति की बहु भूमिकाओं के कारण ही भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भूमिका संघर्ष एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्तियों को अनेक ऐसी भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है जिनका एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित होना दुष्कर होता है।

> भूमिका संघर्ष एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्तियों को अनेक ऐसी भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है जिनका एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित होना दुष्कर होता है। भूमिका संघर्ष को खुले समाजों की एक विशेषता माना जाता है और इनके भिन्न रूप हो सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि क्या वास्तव में महिलाओं को भूमिका संघर्ष का सामना करना पड़ता है यदि हॉ तो इसकी गहनता क्या है?

भूमिका संघर्ष को खुले समाजों की एक विशेषता माना जाता है और इनके भिन्न रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ एक शिक्षित कामकाजी महिला को अपने कार्यरत जीवन तथा माँ के रूप में दो विरोधी भूमिकाओं के संघर्ष का सामना करना पड़ता है। एक तरफ अपने कार्यालय का कार्यभार तथा दूसरी ओर माँ के रूप में संतानों की देखभाल, इसी प्रकार एक कार्यरत महिला अपने कार्य के साथ-साथ घर और परिवार की देखभाल करती है तब भी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। भूमिका संघर्ष एक ही व्यक्ति द्वारा दो भिन्न परिस्थितियों से जुड़े हुए भिन्न दायित्वों से संबधित है। महिलाओं की भूमिका और प्रस्थिति परिवर्तन के सन्दर्भ में मृदुला ने लिखा है कि ''भारतीय समाज एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है जिसके कारण समाज में पारम्परिक और आधुनिक मूल्यों के बीच एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। विशेषकर समाज में महिलाओं को नई जिम्मेदारी के कारण घर और बाहर दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। परिवार की बढती आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप बढते आर्थिक दबाव के कारण नौकरी करने को बाध्य होना पड़ता है।''[१]

भूमिकाओं के मध्य संघर्ष की स्थिति को स्पष्ट करते हुए अनुराधा भोटी लिखती हैं कि, ''ऐसा प्रतीत होता है कि एक महिला की समस्यायें उत्पन्न होने के कारण दो समूहों के मूल्यों में संघर्ष उत्पन्न होना है जो एक दूसरे से पूर्णतया विपरीत है। भारतीय महिलाऐं हमेशा से ही केवल अपने छोटे प्राथमिक पारिवारिक समूह से बंधी होती हैं। अतः उसकी कुछ समस्याओं का कारण इन दोनों समूहों के मूल्यों के बीच टकराव से है।''[२]

पारसन्स ने भूमिका संघर्ष और विचलन की वास्तविकता के सन्दर्भ में भूमिका संघर्ष की व्याख्या करते हुए कहा है कि,''विचलन उन्मेष के लिए भूमिका संघर्ष का कारक महत्वपूर्ण होता है। भूमिका संघर्ष के विषय में पारसन्स का यह मत है कि इसका यह अर्थ होता है कि कर्ता को वैद्य भूमिकाओं की अपेक्षाओं के विरोधी पुंजों का सामना करना पड़ता है और यह ऐसी स्थिति है जिसमें वास्तविकता में दोनों को पूर्ण करना असम्भव होता है। ऐसी स्थिति में पारसन्स के मतानुसार कर्ता को समझौता करना पड़ता है अर्थात दोनों ही अपेक्षा पुंजों में कुछ का बलिदान करना अथवा दोनों में से एक का विकल्प चयन कर दूसरे को पूर्णतया त्याग देना। किन्तु किसी भी स्थिति में कर्ता को नकारात्मक अनुशस्तियों का सामना करना पड़ता है और जहां तक मूल्यों के दोनों पुंज आन्तरीकृत होते हैं, कर्ता को आन्तरिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है।[३]

उमां शंकर जहाँ और प्रेमलता के अनुसार, ''एक महिला का संघर्षात्मक परिस्थिति में व्यवहार इस बात पर निर्भर होता है कि क्या उसके अपने विचार, व्यवहार और उसकी आर्थिक क्रिया से संबंधित अवधारणायें उसकी भूमिका तनाव के सदस्यों के विचारों, अवधारणाओं तथा व्यवहार से सहमत हैं या नहीं, क्योकि उनकी विचारधारा उसके लिए महत्वपूर्ण होती है।[४]

व्यवसायिक भूमिका तथा परम्परागत भूमिकाओं को साथ निभा पाना एक महिला के लिए प्राकृतिक रूप से कठिन हो जाता है। आज भी परिवार में कई कार्य या भूमिकायें ऐसी होती हैं जिनके निर्वाह की पूर्ण जिम्मेदारी एक महिला की ही मानी जाती है। अतः एक कार्यरत महिला के लिए दोनों क्षेत्रों में

❑ **असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस०एस०जे० परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)**

समायोजन एक समस्या उत्पन्न कर देता है। निमकॉफ का इस सन्दर्भ में कहना है कि, ''कई लोगों के लिए एक साथ विवाह और कार्य के उद्देश्य को स्वीकार करना एक संघर्ष उत्पन्न कर सकता है। इससे निश्चय ही कठिनाईयां उत्पन्न होती हैं क्योकि दो प्रकार के उद्देश्यों की संतुष्टि के लिए दो विभिन्न प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है''।[५]

''**विकासशील** देशों में जहां आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार के कई कारक हैं जो व्यवहारों तथा जीवन स्तरों में सम्पूर्ण परिवर्तन लाते हैं नई परिस्थितियों को स्वीकार करना ऐसे लोगों के लिए कठिन होता है जिनके विचार शताब्दियों पुरानी संस्कृति से जुड़े हैं तथा जहां जीने के प्रत्येक भाव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक रूप से दिये गये मूल्यों द्वारा निर्धारित होते हैं। कार्यरत विवाहित महिलाओं तथा शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं के व्यक्गित अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि भूमिका संघर्ष के प्रत्यक्ष होने या न होने की कोई अकेली व्याख्या नही है। प्रत्येक उदाहरण में कई व्यवहारिक तथा विचारात्मक कारक है जो एक दूसरे से टकराते हैं और या तो प्रत्यक्ष होने वाले संघर्ष को रोकते हैं या उनको फैलने में मदद करते हैं।''[६]

फोर्ट गाटी और उसके सहयोगियों ने उच्च पदों पर आसीन महिलाओं के परिवार, व्यवसाय और कार्यरत जीवन के अध्ययन में पांच प्रकार की दुविधाओं को पाया।

१. अत्यधिक कार्यभार के कारण उत्पन्न होने वाली दुविधायें।
२. वातावरण में तीव्र संघर्षात्मक विचार और दिशाओं से अनुभव की गई दुविधा।
३. इस प्रकार की दुविधायें जो एक निश्चित प्रकार के जीवन निर्वाह में उत्पन्न होन वाले आंतरिक संघर्ष के कारण उत्पन्न होती हैं।
४. ऐसी दुविधायें जो जिम्मेदारियों, जुड़ाव और इच्छाओं के संघर्ष के कारण उत्पन्न होती हैं जहां रिश्तेदारों, दोस्तों और सहयोगियों का प्रश्न है।
५. ऐसी दुविधायें जो भूमिकाओं के बीच संघर्ष के कारण उत्पन्न होती हैं, जो अलग-अलग समय पर अपनी मांगों में भिन्नता रखती हैं।[७]

एक कार्यरत महिला के भूमिका संघर्ष को स्पष्ट करते हुए कृष्ण चक्रवर्ती ने अपने अध्ययन में कहा है कि वास्तव में स्थिति में परिवर्तन और महिलाओं की भूमिका अब भी पूर्णतया स्पष्ट है। घर और कार्य की दोहरी जिम्मेदारियां भी महिलाओं के लिए कुछ मुश्किलें उत्पन्न करती हैं जो उनकी दोहरी जिम्मेदारी पूर्ण करने, उम्मीदों को बराबरी की संतुष्टि व प्रतिस्पर्धा से पूरा करने से सम्बन्धित हैं। महिलायें जो दोहरी भूमिकाओं का निर्वाह करती हैं वे अपनी दोहरी जिम्मेदारियों के संघर्ष के कारण एक प्रकार के दबाव और संघर्ष का अनुभव करती है।[८]

परम्परागत रूप से आज भी महिलाओं की गृहणी की भूमिका को प्रमुख माना जाता है। चूकिं एक कार्यरत महिला परिवार एवं कार्यालय दोनों ही स्थानों पर अपनी बहुल भूमिकाओं का निर्वाह करती है। अतः ऐसा माना जाता रहा है कि उन्हें भूमिका संघर्ष का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि क्या वास्तव में महिलाओं को भूमिका संघर्ष का सामना करना पड़ता है यदि हॉ तो इसकी गहनता क्या है?

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कुमाऊ के राजकीय कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं में भूमिका संघर्ष की कृत्रिमता तथा वास्तविकता को देखने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध नैनीताल जिलें के नगरीय क्षेत्रों के राजकीय कार्यालयों में कार्यरत सभी श्रेणियों की कार्यरत महिलाओं पर आधारित है। ३६ शासकीय विभागों में केवल ११ विभागों में चारों श्रेणियों में महिलायें कार्यरत हैं। अतः अध्ययन में इन्ही विभागों को सम्मिलित किया गया है। प्रथम व द्वितीय श्रेणी की समस्त महिलाओं तथा तृतीय व चतुर्थ श्रेणी की कार्यरत महिलाओं में ५० प्रतिशत को दैव निर्दशन की लाटरी विधि से चयनित किया गया है। इस प्रकार यह अध्ययन ४६४ कार्यरत महिलाओं पर आधारित है। (श्रेणीवार इनकी संख्या क्रमशः १८,३६,२५० तथा १६० है) अध्ययन प्राथमिक आकड़ों पर आधारित है तथा आकड़े एकत्र करने के लिए साक्षात्कार अनुसूचि व आवश्यकतानुसार असहयोगी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ :

१. ५३.४ प्रतिशत उत्तरदाता इस सामान्य मान्यता से असहमत हैं कि कार्यरत महिलायें गृहणी व कार्यस्थल दोनों भूमिकाओं का संतोषजनक तरीके से निर्वाह नही कर पाती हैं।
२. ७६.७ प्रतिशत उत्तरदाता अपनी कार्यरत भूमिका को अधिक प्राथमिकता देती हैं।
३. उन उत्तरदाताओं का प्रतिशत समान (२८.० प्रतिशत) है जो इस मत से सहमत तथा आंशिक रूप से सहमत हैं कि प्रायः कार्यरत महिला से जो उम्मीदें रखी जाती हैं उनके लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती हैं।

४. सर्वाधिक उत्तरदाताओं (७१.१ प्रतिशत) का मानना है कि घरेलू और कार्यरत दोनों प्रकार की जिम्मेदारियों के अकेले निर्वहन से वे त्रस्त हो जाती हैं जिससे अत्यधिक तनाव उत्पन्न होता है।

५. ५७.७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि एक ही कार्यालय में पत्नी पति से उच्च पद पर कार्यरत है तो पति का अहम आगे आता है जो संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

६. अधिकांश उत्तरदाता (७०.३ प्रतिशत) अपनी दोहरी जिम्मेदारियों के कारण तनावग्रस्त रहती है।

७. ७४.१ प्रतिशत उत्तरदाता अपनी भूमिका संघर्ष की उत्तरदायी परिस्थितियों के लिए महत्वपूर्ण परिस्थिति स्वयं की जीवनशैली को मानती हैं।

८. अधिकांश उत्तरदाताओं (७६.३ प्रतिशत) ने स्वीकार किया है कि भूमिका संघर्ष की स्थिति विवाह के उपरान्त आती है।

९. छोटे शिशु के पालन पोषण व उसकी जिम्मेदारियों के प्रति ४२.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि कार्यरत भूमिका होने के कारण वह उनका समुचित ध्यान नही रख पाती।

१०. अपराधबोध के सन्दर्भ में सर्वाधिक उत्तरदाताओं (८२.८ प्रतिशत) ने परिवार के दायित्वों के प्रति न्याय न कर पाने से उत्पन्न किसी भी अपराधबोध की भावना को महसूस नही किया है।

११. कार्य संतुष्टि के आधार पर ही ६७.८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कार्य संतुष्टि पाई गई।

१२. उच्चतम् एवं निम्नतम श्रेणी के शत प्रतिशत उत्तरदाता परिवार के दायित्वों का निर्वहन भली प्रकार से कर लेते हैं। जबकि द्वितीय व तृतीय श्रेणी के अधिकांश उत्तरदाता (क्रमशः ७२.२ प्रतिशत तथा ६१.२ प्रतिशत) स्वीकार करते हैं कि कार्यरत होने के कारण वे परिवार के दायित्वों का भली प्रकार निर्वहन नही कर पातीं। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम् एवं निम्नतम् श्रेणियों के उत्तरदाताओं में भूमिका संघर्ष की संभावनायें शून्य हैं जबकि मध्ययम श्रेणियों के उत्तरदाताओं में भूमिका संघर्ष की संभावनायें तुलनात्मक रूप से अधिक हैं।

१३. सर्वाधिक उत्तरदाता (७३.७ प्रतिशत) यह नही मानते है कि केवल परिवार की आय पर्याप्त न होने के कारण महिलाओं को आर्थिक क्षेत्र में आना चाहिए। क्योंकि स्त्री की वैचारिकी भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कार्यरत महिलाओं में आर्थिक स्वतन्त्रता एवं नवीन वैचारिकी का विकास हो रहा है। कार्य संतुष्टि के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं का स्तर काफी ऊंचा है। इसके साथ ही पति, बच्चों व परिवार के दायित्वों के सन्दर्भ में अधिकतर उत्तरदाता किसी भी प्रकार के अपराधबोध से मुक्त हैं। केवल मध्यम श्रेणी के उत्तरदाताओं द्वारा परिवार के दायित्वों का उचित रूप से निर्वहन नही हो पाता है। अधिकतर उत्तरदाताओं का यह भी मानना है कि कार्यरत महिला के जीवन में भूमिका संघर्ष की स्थिति विवाह के उपरान्त आती है। उत्तरदाताओं ने उत्तरदायित्वों की बहुलता को तनाव का प्रमुख कारण माना है। अतः यह कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं ने भूमिका संघर्ष के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारक/परिस्थिति स्वयं की जीवन पद्धति को माना गया है अर्थात भूमिका संघर्ष परिस्थितिजन्य न होकर जीवन पद्धतिजन्य है।

सन्दर्भ

१. भदूरिया मृदुला, 'वूमेन इन इण्डिया' ए०पी०एच० पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली, १९९७ पृ. ८२
२. भोटी अनुराधा, 'वूमेन इम्पलाई एण्ड रूलर डेवलपमेन्ट' (प्रोब्लम्स ऑफ इम्पलाइड वुमेन इन रूलर एरिया) ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८७ पृ. २४
३. पारसन्स टी०, 'रोल कान्फिलिक्ट एण्ड द जेनेसिस आफ डिवाइन्स, फ्रोम द सोसियल सिस्टम', न्यूयार्क, १९५१, पृ. २८०-८३
४. शंकरजहॉ उमा, प्रेमलता पुजारी, 'इडियन वूमेन टूडे, ट्रेडिसन, मार्डनिटी एण्ड चैलेन्ज' वाल्यूम ३ कनिष्का पब्लिर्सस नई दिल्ली १९९८, पुजारी २०९
५. निमकॉफ उद्धृत कपूर प्रोमिला, 'मैरीज एण्ड द वर्किंग वूमेन' विकास पब्लिकेशन नई दिल्ली १९७१, पृ. १४-१५
६. शंकरजहॉ उमा, पुजारी प्रेमलता, 'इडियन वूमेन टूडे, ट्रेडिशन, माडर्निटी एण्ड चैलेन्ज' वाल्यूम ३ कनिष्का पब्लिर्सस नई दिल्ली १९९८ पृ. १९९
७. उद्‌दृत कृष्ण चक्रवर्ती, 'दि कन्फिलिक्टिंग वर्ल्ड ऑफ वर्किंग मदर्स', प्रोगोसिक पब्लिशर्स, कलकत्ता, १९८८, पृ. ५१
८. वही, पृ. ४८

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

पंचायती राज संस्थाओं में महिला सहभागिता एवं जागरूकता

❑ **डा० उदय भान सिंह**
❖ **लवली मौर्या**

भारतीय संविधान में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से विकसित हुई है। विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र में जन-जन की शासन की गतिविधियों में सहभागिता को विकसित करने का साधन है – पंचायती राज

पंचायत व्यवस्था का इतिहास भारत में बहुत पुराना है। आदिम समाज ने जब से सभ्यता की ओर बढ़ना शुरू किया था सम्भवतः तब से ही पंचायत व्यवस्था शुरू हुई। विदेशी शासन काल में पंचायतों के बिगड़े हुए स्वरूप को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद ४० में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत त्रिस्तरीय पंचायती राज ढाँचे का प्रावधान किया गया।[1]

एक लोकतांत्रिक देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि आधी जनसंख्या की ऊर्जा रसोई घर तक सीमित रहेगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में लैंगिक समानता के लिए विभिन्न अधिनियम पारित हुए हैं।

भारतीय संविधान में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से विकसित हुई है। एक लोकतांत्रिक देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि आधी जनसंख्या की ऊर्जा रसोई घर तक सीमित रहेगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में लैंगिक समानता के लिए विभिन्न अधिनियम पारित हुए हैं। लेकिन उनकी राजनैतिक सहभागिता एवं जागरूकता का स्तर कम है। विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक बाधायें जिनके कारण महिलायें नेतृत्व की भूमिका निभाने में असमर्थ हो रही हैं। महिलाओं की सहभागिता का स्तर तो बढ़ रहा है, लेकिन संतोषजनक नहीं है, वे आज भी प्रशासन स्तर में सहभाग करने से कतरा रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता एवं जागरूकता के स्तर को जानने का एक प्रयास है।

इसी दिशा में ७३वाँ संविधान संशोधन पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण एक साहसिक कदम है। ७३वाँ संविधान संशोधन महिलाओं को शिक्षित करने, ग्रामीण विकास में उनकी भागीदारी, महिला सशक्तीकरण, लैगिंक समानता को बढ़ाने के साथ ही लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को जमीनी स्तर से ऊपर उठाना है।

राष्ट्रपति ने ४ जून २००६ को संसद में अपने अभिभाषण में कहा था कि वर्ग, जाति और लिंग के आधार पर अनेक प्रकार की वर्जनाओं से पीड़ित महिलाओं को पंचायतों में ५० प्रतिशत आरक्षण के फैसले से अधिक महिलाओं को सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रवेश का अवसर प्राप्त होगा। तद्नुसार मंत्रिमण्डल ने २७ अगस्त २००६ को संविधान की धारा-२४८घ को संशोधित करने के प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया ताकि पंचायत के तीनों स्तर की सीटों और अध्यक्ष के ५० प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित किया जा सके।[2]

यद्यपि पंचायती राज में महिलाओं की सहभागिता को बढ़ाने के लिए संवैधानिक प्रावधान है, लेकिन उनकी राजनैतिक सहभागिता एवं जागरूकता का स्तर कम है। विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक बाधायें जिनके कारण महिलायें नेतृत्व की भूमिका निभाने में असमर्थ हो रही हैं। महिलाओं की सहभागिता का स्तर तो बढ़ रहा है, लेकिन संतोषजनक नहीं है, वे आज भी प्रशासन स्तर में सहभाग करने से कतरा रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता एवं जागरूकता के स्तर को जानने का एक प्रयास है।

अध्ययन का उद्देश्य :

१. उत्तरदाता महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति ज्ञात करना।

२. पंचायती राज संस्थाओं में उत्तरदाता महिलाओं की जागरूकता एवं सहभागिता का स्तर ज्ञात करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध रायबरेली जनपद में राही विकास खण्ड पर आधारित है। राही विकास खण्ड में ५६ ग्राम पंचायतें हैं, जिसमें अध्ययन की सुविधा के लिए ४ ग्राम पंचायतों क्रमशः इब्राहिमपुर, रायपुर महेरी, मधुपुरी, सरांयदामू, का चयन लाटरी पद्धति से किया गया। इन ग्राम पंचायतों में १८ वर्ष

❑ **एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, फ़ीरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली (उ०प्र०)**
❖ **शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, फ़ीरोज़ गाँधी कालेज, रायबरेली (उ०प्र०)**

से अधिक आयु की महिलाओं की कुल जनसंख्या ३,७६७ है। इन ४ ग्राम पंचायतों में से प्रत्येक ग्राम से २५ महिलाओं को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि चयन करते हुए कुल १०० महिलाओं का चयन किया गया है। प्राथमिक स्रोत में साक्षात्कार अनुसूची द्वारा महिला उत्तरदाताओं से सूचनायें एकत्रित की गई हैं। द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत कार्यालय पंचायती राज विभाग रायबरेली और अन्य स्रोतों से सूचनायें प्राप्त की गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति पंचायती राज संस्थाओं में उत्तरदाता महिलाओं की जागरूकता एवं सहभागिता के स्तर को ज्ञात करने के लिए उनकी आयु, शिक्षा, जाति, परिवार का स्वरूप, परिवार की आय, राजनैतिक पृष्ठभूमि का विवरण अग्रिम तालिकाओं में दिया गया है।

उपलब्धियाँ :

तालिका -१

महिला उत्तरदाताओं की आयु

आयु समूह	संख्या	प्रतिशत
१८-३०	४५	४५
३१-४५	३०	३०
४६-६०	२०	२०
६१ से अधिक	०५	०५
योग :	१००	१००

तालिका-१ उत्तरदाता महिलाओं की आयु समूह को प्रदर्शित करता है, जिनमें १०० उत्तरदाता महिलाओं में सर्वाधिक ४५ प्रतिशत महिलाएं १८-३० आयु वर्ग से सम्बन्धित है, जो युवा महिला वर्ग को प्रदर्शित करता है। ३० प्रतिशत महिलाएं ३१-४५ आयु वर्ग से सम्बन्धित हैं, जो मध्यम आयु वर्ग को प्रदर्शित करता है। २० प्रतिशत महिलाएं ४६-६० आयु वर्ग से सम्बन्धित है। सबसे कम ०५ प्रतिशत महिलाएं ६० से अधिक आयु वर्ग से है, जो वृद्धावस्था को प्रदर्शित करता है।

तालिका-२

जाति के आधार पर महिला उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

जाति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य जाति	१०	१०
अनुसूचित जाति	६५	६५
अनुसूचित जनजाति	-	-
अन्य पिछड़ी जाति	२५	२५
योग :	१००	१००

तालिका २ प्रदर्शित करती है कि अध्ययन के अंतर्गत सर्वाधिक ६५ प्रतिशत महिलाएं अनुसूचित जनजाति की है। २५ प्रतिशत महिलाएं अन्य पिछड़ी जाति से सम्बन्धित हैं। १० प्रतिशत महिलाएं सामान्य जाति की हैं। अनुसूचित जनजाति में महिला उत्तरदाता की स्थिति नगण्य हैं। सर्वाधिक अनुसूचित जाति की महिलाओं की संख्या है, किन्तु जाति व्यवस्था पंचायती राज में सहभागिता पर कोई प्रभाव नहीं डालती है।

तालिका-३

महिला उत्तरदाताओं की शैक्षिक योग्यता

शैक्षिक योग्यता	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	०६	०६
हाईस्कूल	३८	३८
इण्टरमीडिएट	२५	२५
स्नातक	१८	१८
परास्नातक	१०	१०
योग :	१००	१००

तालिका ३ में स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक ३८ प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की है। २५ प्रतिशत महिलाओं ने इण्टरमीडिएट तक शिक्षा ग्रहण की। १८ प्रतिशत महिलाएँ स्नातक उत्तीर्ण हैं। शेष १० प्रतिशत महिलाएँ सबसे कम परास्नातक उत्तीर्ण हैं। ०६ प्रतिशत महिलाएं तो निरक्षर है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का स्तर निम्न है। अध्ययन में केवल १० प्रतिशत ही परास्नातक तक की शिक्षा प्राप्त की हैं शिक्षा, महिलाओं में जागरूकता लाने के लिए एक अति आवश्यक तत्व है।

तालिका-४

महिला उत्तरदाताओं के परिवार के आय स्रोत

व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
कृषि	६४	६४
सरकारी नौकरी	०६	०६
प्राइवेट नौकरी	१०	१०
अन्य व्यवसाय	२०	२०
योग :	१००	१००

तालिका ४ से स्पष्ट है कि सर्वाधिक ६४ प्रतिशत महिला उत्तरदाता के परिवार जीविका हेतु कृषि व्यवसाय में कार्यरत है। कृषि ही उनकी आय का मुख्य स्रोत है। २० प्रतिशत महिला उत्तरदाता के परिवार अन्य व्यवसायों में कार्यरत हैं। १० प्रतिशत प्राइवेट क्षेत्र में नौकरी में संलग्न है। केवल ०६ प्रतिशत महिला उत्तरदाता के परिवार सरकारी नौकरी में सेवारत हैं जो उनकी आय का स्रोत है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कृषि व्यवसाय में कार्यरत महिला उत्तरदाताओं के

परिवार की संख्या सर्वाधिक है।

तालिका-५

पंचायती राज में महिलाओं को प्राप्त आरक्षण की मात्रा की जानकारी

७३वाँ संविधान संशोधन के आधार पर	संख्या	प्रतिशत
३३ प्रतिशत	२०	२०
३३ प्रतिशत से कम	१२	१२
३३ प्रतिशत से अधिक	१५	१५
कोई जानकारी नहीं	५३	५३
योग :	१००	१००

उपर्युक्त तालिका-५ से स्पष्ट होता है कि ७३वाँ संविधान संशोधन के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव में प्राप्त महिला आरक्षण की संख्या के विषय में सही जानकारी मात्र २० प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं को है। १२ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि ३३ प्रतिशत से कम आरक्षण है। १५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि ३३ प्रतिशत से अधिक आरक्षण देय है। ५३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि आरक्षण की संख्या की कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार मात्र २० प्रतिशत उत्तरदाताओं को आरक्षण की मात्रा की सही जानकारी है। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में महिला आरक्षण की जानकारी का स्तर निम्न है।

तालिका-६

पंचायती कार्यो के विषय में जानकारी की श्रेणियाँ

पंचायती कार्यो के विषय में जानकारी की श्रेणियाँ	संख्या	प्रतिशत
सड़क, पेय-जल, जल निकासी उलपब्ध कराना	२५	२५
रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य उपलब्ध कराना	१५	१५
उपर्युक्त दोनों	४०	४०
कोई जानकारी नहीं	२०	२०
योग :	१००	१००

तालिका - ६ से स्पष्ट है कि २५ प्रतिशत उत्तरदाताओं को सड़क, पेयजल आदि की जानकारी है। १५ प्रतिशत उत्तरदाताओं को शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी है, ४० प्रतिशत उत्तरदाताओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पेय-जल, सड़क आदि की जानकारी है २० प्रतिशत उत्तरदाता पंचायत कार्यो से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। इस प्रकार पंचायत के सामान्य कार्यो के विषय में सर्वाधिक उत्तरदाताओं को जानकारी है, जो इस सम्बन्ध में उनकी जागरूकता को स्पष्ट करता है।

तालिका-७

पंचायती चुनाव के अन्तराल के विषय में जानकारी

त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव के अन्तराल सम्बन्धी विकल्प की श्रेणियाँ	संख्या	प्रतिशत
५ वर्ष पर	६५	६५
५ वर्ष से अधिक	१५	१५
५ वर्ष से कम	१०	१०
कोई जानकारी नहीं	१०	१०
योग :	१००	१००

तालिका - ७ से स्पष्ट है कि ६५ प्रतिशत उत्तरदाताओं को पंचायती चुनाव के अन्तराल की जानकारी है। १५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने उत्तर दिया कि ५ वर्ष से अधिक समय पर पंचायत चुनाव होता है। १० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि ५ वर्ष से कम समय पर चुनाव होता है। १० प्रतिशत उत्तरदाताओं को इसकी कोई जानकारी नहीं है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि सर्वाधिक संख्या में उत्तरदाताओं को पंचायत चुनाव की सही समय सीमा ५ वर्ष के विषय में जानकारी है, जो इस सम्बन्ध में उनकी जागरूकता के स्तर को प्रकट करता है।

तालिका-८

पंचायत चुनाव में महिलाओं की सहभागिता की पद्धति का रूप

सहभागिता की प्रकृति	संख्या	प्रतिशत
एक मतदाता के रूप में	४५	४५
आरक्षित महिला सीट पर अभ्यर्थी के रूप में	१४	१४
चुनावी सभाओं में केवल सहभागिता के रूप में	०६	०६
राजनीतिक पार्टी के सहयोगी के रूप में	३२	०६
योग :	१००	१००

तालिका - ८ से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं की चुनाव में मतदाता के रूप में सहभागिता ४५ प्रतिशत है। ३२ प्रतिशत महिलाएँ राजनैतिक पार्टी में सहयोगी के रूप में सहभागिता करना चाहते हैं। १४ प्रतिशत उत्तरदाता महिला आरक्षित सीट होने के कारण सहभाग करती हैं। केवल ६ प्रतिशत महिलाओं ने उत्तर दिया कि उनके गाँव में चुनावी सभायें होने पर वह उसमें सहभाग करती हैं। उपर्युक्त तालिका

से स्पष्ट है कि सर्वाधिक महिलायें एक मतदाता के रूप में ही चुनाव में सहभाग करना चाहती हैं। महिला ग्राम प्रधानों से लिए साक्षात्कार में उन्होनें कहा है कि महिला सीट आरक्षित होने पर वह पति एवं परिवार के कहने पर चुनाव लड़ी थी।

इस प्रकार हम महिला उत्तरदाताओं के सभी उत्तरों का विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि सर्वाधिक महिलाएँ पंचायती चुनाव में मात्र एक मतदाता के रूप में सहभागिता करना चाहती हैं, उनका ग्रामीण विकास पंचायत के मुद्‌दों एवं कार्यो में कोई रूचि नहीं है। ७३वाँ पंचायती राज संशोधन अधिनियम के विषय में महिला उत्तरदाताओं में जागरूकता का स्तर अत्यन्त निम्न है। वे मात्र ग्राम पंचायत, ग्राम प्रधान के नाम पंचायत के सामान्य कार्यो को ही जानती हैं, किन्तु उनमें महिला आरक्षण, चुनाव प्रक्रिया, संवैधानिक अधिनियम आदि के विषय में कोई जागरूकता नहीं है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : प्रस्तुत शोध पत्र ''पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता एवं जागरूकता'' जिसमें पंचायती राज में महिलाओं की जागरूकता एवं सहभागिता को जानने का प्रयास किया गया है, जिसमें ७३वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के विषय में जागरूकता का स्तर निम्न है। राज्य सभा, लोक सभा, पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण की जानकारी अत्यन्त कम है, वे आज भी सैद्धान्तिक ज्ञान से अनभिज्ञ हैं, जिसका कारण अशिक्षा, गरीबी, पितृसत्तामक परिवार, परम्परात मूल्य, पुरूष प्रधान समाज आदि है।

पंचायती राज महिला सशक्तिकरण, नेतृत्व एवं महिला विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण प्रदान करते हुए उनको सशक्तीकरण प्रदान किया गया है, किन्तु आज भी महिलाएं परम्परागत मूल्यों, अशिक्षा, पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था से अलग नहीं हो पा रही हैं। महिलाओं को अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार चुनाव लड़ने, ग्रामीण मुद्‌दों एवं विकास कार्यो आदि को करने में अपने को असमर्थ महसूस कर रही हैं। इसके लिए उनको शिक्षा, प्रशिक्षण कार्यक्रम, जागरूकता शिविरों, चुनावी जनसभाओं में उनकी सहभागिता को अधिक से अधिक सुनिश्चित करना होगा। इसके लिए पति एवं परिवार की मुख्य भूमिका होनी चाहिए तभी पंचायती राज में ७३वाँ संवैधानिक संशोधन सफल साबित होगा।

संदर्भ

१. वर्मा विजय कुमार एवं सुनीता यादव, 'भारत में पंचायती राज और महिला सशक्तीकरण', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १२ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१५, पृ. ६३

२. श्रीवास्तव मनोज, 'कुरूक्षेत्र', ''पंचायाती राज के जरिए राजनीतिक रूप से सशक्त हुई महिलाएँ'' सितम्बर-२०११ पृष्ठ-१२

३. कार्यालय, जिला अर्थ एवं सांख्यिकीय विभाग, रायबरेली।

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

महिलाओं के आर्थिक विकास में स्वयं सहायता समूह की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ कुलदीप यादव
❖ प्रोफेसर जितेन्द्र प्रसाद

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं सन्तुलित विकास के लिए महिला वर्ग या राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। स्वयं सहायता समूह का गठन महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को समाप्त कर उन्हें आर्थिक रूप से सबल करने का एक नया प्रारूप है। इस सामाजिक नीति के अंतर्गत भारत के पंचवर्षीय योजना में बजट का प्रावधान किया गया था जिसके द्वारा महिला स्वयं सहायता समूह को संगठित कर उन्हें आर्थिक रूप से मदद पहुंचाने की मंशा थी। हरियाणा में भी इस प्रकार के प्रयास पिछले एक दशक से किये गये हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणा प्रान्त के रेवाड़ी जिला में महिलाओं की आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए स्वयं सहायता समूह की भूमिका का अध्ययन किया गया है।

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं सन्तुलित विकास के लिए महिला वर्ग या राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। महिलाएं समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। महिला अस्तित्व के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। प्राचीन काल से वर्तमान तक महिलाओं की स्थिति के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। राष्ट्र की आधी शक्ति तो महिलाओं के रूप में निहित है। विभिन्न विद्वानों का मत है कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति व सम्पन्नता का वहां की महिलाओं की स्थिति से अनुमान लगाया जा सकता है।

स्वयं सहायता समूह का गठन महिलाओं की आर्थिक निर्भरता को समाप्त कर उन्हें आर्थिक रूप से सबल करने का एक नया प्रारूप है। इस सामाजिक नीति के अंतर्गत भारत के पंचवर्षीय योजना में बजट का प्रावधान किया गया था जिसके द्वारा महिला स्वयं सहायता समूह को संगठित कर उन्हें आर्थिक रूप से मदद पहुंचाने की मंशा थी।[१] हरियाणा में भी इस प्रकार के प्रयास पिछले एक दशक से किये गये हैं।

स्वयं सहायता समूह सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के लोगों का एक स्वैच्छिक संगठन है। स्वयं सहायता समूह आर्थिक लेन-देन के माध्यम से आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए एक साथ तत्पर रहते है। तीन दशक पहले बंगलादेश में माइक्रो फाइनेंस (सूक्ष्म वित्त) के द्वारा शुरू किया गया था। इसे एक हथियार के रूप में, गरीबी और भूख के खिलाफ प्रयोग किया गया।[२] तमिलनाडु निगम फार डवलपमेंट ऑफ विमेन लिमिटेड (TNCDW) अपने क्रेडिट दिशा निर्देशों में स्वयं सहायता समूह एक छोटा गरीब ग्रामीण लोगों का अंत समूह है जो स्वेच्छा से लोगों के सामाजिक, आर्थिक उत्थान के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है, जो स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के आपसी निर्णय पर आधारित होता है। अरुण कुमार सिंह ने स्वयं सहायता समूह को स्वेच्छा से लोगों के उस समूह के रूप में परिभाषित किया है जो एकत्रित होकर कुछ विशेष गतिविधियां सामूहिक रूचि के आधार पर करता है।[३] सिंह ने स्वयं सहायता समूह को व्यक्तियों के अनौपचारिक समूह के रूप में दर्शाया है, जो व्यक्तियों की आवश्यकता एवम् उनकी आने वाली समस्याओं के प्रति एक सामूहिक दृष्टिकोण रखता है। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में २००० तक १४ लाख समूह बने हैं। जिनके सदस्यों की संख्या लगभग २ करोड़ से ज्यादा है।[४]

अतः हम कह सकते हैं कि स्वयं सहायता समूह किसी समुदाय द्वारा गठित किया गया एक समूह है जिसके सदस्यों की विशिष्ट संख्या १५ या २० होती है। इस तरह के एक समूह में कम सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि की महिलाओं को आर्थिक सहायता के लिए एक साथ आने का आह्वान किया जाता है।

स्वयं सहायता समूह के उद्देश्य निम्न हैं -

१. सदस्यों की आत्म जागरूकता को बढ़ावा देना
२. स्वास्थ्य और स्वच्छता चेतना का विकास
३. ग्रामीण महिलाओं का सशक्तीकरण व उत्थान
४. ग्रामीण महिलाओं की आय सृजन और योजना बनाने में

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
❖ प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भागीदारी बढ़ाना

५. महिलाओं में नेतृत्व के गुणों का विकास

शोध प्रारूप

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महिलाओं में आर्थिक सशक्तीकरण का अध्ययन करना है तथा सशक्तिकरण के परिणामस्वरूप महिलाओं के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को जानना है। अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए हरियाणा राज्य के रेवाड़ी क्षेत्र की ६० महिलाओं का प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया है। सूचनादाताओं से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयाग किया गया है।

निम्न तालिकाओं के माध्यम से उतरदाताओं के सामाजिक, आर्थिक स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, साथ ही किस प्रकार से इन समूहों ने समूह से लोन लेकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारा है, उसका वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

तालिका १

उत्तरदाताओं की मासिक आय में वृद्धि का अध्ययन

आय में वृद्धि (रूपये में)	संख्या	प्रतिशत
१००-२००	१५	१६.६७
२०१-३००	२८	३१.११
३०१-४००	२५	२७.७८
४०१-५००	१३	१४.४४
५०१ से अधिक	६	१०.००
कुल संख्या	६०	१००

जहां तक उत्तरदाताओं के मासिक आय का प्रश्न है, तालिका संख्या १ के द्वारा यह स्पष्ट है कि प्रत्येक स्वयं सहायता समूह के आय में वृद्धि हुई है। उनकी मासिक आय में जो वृद्धि हुई है वह १०० रूपये से लेकर ५०० रूपये तक की हुई है। ज्यादातर महिलाओं ने यह बताया कि उनकी आय में लगभग २०० से ४०० रूपये तक की मासिक वृद्धि हुई है। लगभग १० प्रतिशत महिलाओं ने यह बताया कि उनकी आर्थिक मासिक वृद्धि ५०० रूपये से ऊपर तक की हुई। इस प्रकार इस सारणी से निष्कर्ष यह निकलता है कि स्वयं सहायता समूह के द्वारा उत्तरदाताओं के मासिक आय में निरन्तर वृद्धि हुई है।

तालिका २

प्रशिक्षण एक्सपोज़र के आधार पर उत्तरदाताओं का वितरण

प्रशिक्षण	यदि हाँ, तो किस प्रकार का					उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
	रोजगार	बुटिक	साबुन बनाने	घरेलू	अन्य		
हाँ	१४	२२	०६	१८	०६	६६	७३.३३
नहीं	-	-	-	-	-	२४	२६.६७
कुल						६०	१००

तालिका २ में प्रशिक्षण एक्सपोज़र के आधार पर उत्तरदाताओं के वितरण को दर्शाया गया है। १५.५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने रोजगार के प्रति सकारात्मक सोच व्यक्त की। २४.४४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बूटिक में, २०.०० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने घरेलू उत्पाद में तथा ६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य को चुना है। साथ ही २६.२७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रशिक्षण एक्सपोजर की उपेक्षा की है। अतः यह स्पष्ट है कि अगर उन्हें सही प्रशिक्षण दिया जाए तो प्रशिक्षण के पश्चात् रोज़गार से जुड़े अवसर को प्राप्त करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

तालिका ३

ऋण राशि का उपभोग करने के उद्देश्य

उद्देश्य	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक सुरक्षा	५	५.५६
खाद्य सुरक्षा	१०	११.११
शिक्षा	८	८.८६
स्वास्थ्य	१४	१५.५५
विवाह	१६	२१.११
त्यौहार	८	८.८६
आपातकालीन	१४	१५.५६
अन्य	१२	१३.३३
कुल	६०	१००

तलिका ३ में ऋण राशि के उपयोग करने के उद्देश्य का पता चलता है। २१.११ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋण का उपयोग शादी के उद्देश्य के लिए किया। १५.५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वास्थ्य तथा आपातकाल में किया। १३.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋण राशि का उपयोग अन्य के लिए किया जबकि ११.११ प्रतिशत उत्तदाताओं ने खाद्य सुरक्षा को महत्व दिया तथा ५.५६ फीसदी उत्तरदाताओं ने सामाजिक सुरक्षा को

महत्व दिया। स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की अनेकों जरूरतें होती हैं जिसके लिए उन्हें पैसे की जरूरत पड़ती है। स्वास्थ्य तथा विवाह ऐसी जरूरतें हैं जिसके लिए अत्यधिक धनराशि की जरूरत होती है। आंशिक रूप से ही इस प्रकार की जरूरतों के लिए समूह के द्वारा लोन पर ली गई राशि उनकी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में काफी मददगार होती है।

तालिका ४

समूह में शामिल होने से पहले उत्तरदाताओं के बैंक खाते का विवरण

बैंक खाता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३२	३५.५६
नहीं	५८	६४.४४
कुल	९०	१००.००

तालिका ४ में समूह में शामिल होने से पहले उत्तरदाताओं के बैंक खाते के वितरण को दर्शाया गया है। तथ्यों से स्पष्ट रूप से दर्शाया हे कि ३५.६६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का बैंक खाता था, जबकि ६४.४४ प्रतिशत उत्तरदाताओं का बैंक खाता नहीं था। अतः हम कहत सकते हैं कि समूह में शामिल होने से पहले अधिकतर उत्तरदाताओं का बैंक खाता नहीं था।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पहले की अपेक्षा अब लोगों में बैंक में पैसा जमा करवाने की प्रवृत्ति बढी है। जिसके कारण आपातलाकीन स्थिति में पैसे के लिए उन्हें महाजनों की बजाय बैंक में जमा राशि का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति बढी है।

तालिका ५

उत्तरदाताओं का वितरण ऋण लेने के द्वारा

संस्था का नाम	संख्या	प्रतिशत
सहकारी बैंक	५	५.५६
ग्रामीण बैंक	४८	५३.३३
साहूकार	१७	१८.८६
नातेदारी	१३	१४.४४
अन्य	०७	७.७८
कुल	९०	१००.००

तालिका ५ में उत्तरदाताओं के ऋण लेने के विवरण को दर्शाया गया है। जिसमें स्पष्ट रूप से ५.५६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋण सहकारी बैंक से लिया है, ५३.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋण ग्रामीण बैंक से लिया है। १८.८६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने साहूकार से ऋण लिया है और साथ ही १४.४४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नातेदारी से ऋण लिया तथा ७.७८ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य से ऋण लिया। अतः इस तालिका में ग्रामीण बैंक से ऋण लेने वाले उत्तरदाताओं का बहुमत है।

तालिका ६

ऋण लेने के उद्देश्य से उत्तरदाताओं का वितरण

ऋण लने का उद्देश्य	संख्या	प्रतिशत
उद्यमिता कौशल	१७	१८.८६
कृषि	१६	१७.७७
विवाह	१८	२०.००
घर की मरम्मत	१५	१६.६७
बीमारी	०४	४.४४
शिक्षा	०६	६.६६
अन्य	१४	१५.५५
कुल	९०	१००.००

तलिका ६ में ऋण लेने के उद्देश्य से उत्तरदाताओं के वितरण को दर्शाया गया है। आंकडे दर्शाते हैं कि १८.८६ प्रतिशत ऋण उद्यमिता कौशल के लिए लिया। १७.७७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कृषि कार्य के लिए ऋण लिया। २० प्रतिशत ऋण विवाह के लिए तथा १६.७६ प्रतिशत घर की मरम्मत के लिए लिया। ४.४४ प्रतिशत ने बीमारी की रोकथाम के लिए लिया। ६.६६ प्रतिशत ने शिक्षा पर किया। १५.५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ऋण का उपयोग अन्य उद्देश्यों के लिए किया। उक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने इस बात का समर्थन किया है कि लोन द्वारा लिये गये राशि का इस्तेमाल मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।

तालिका ७

सदस्य बनने के बाद सामाजिक स्थिति में परिवर्तन

परिवर्तन के बारे में धारणा	संख्या	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	१०	११.११
सहमत	५७	६३.३३
असहमत	१९	२१.११
पूर्णतः असहमत	-	-
कुछ कह नहीं सकते	०४	४.४४
कुल	९०	१००.००

तालिका ७ में उत्तरदाताओं की सामाजिक स्थिति में होनेवाले बदलाव को दर्शाया गया है। जिसमें स्पष्ट रूप से ११.११ प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णतः सहमत हें कि उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है। साथ ही अधिकांश (६३.३३ प्रतिशत) उत्तरदाता सहमत हैं। परन्तु २१.११ प्रतिशत उत्तरदाता असहमत हैं और ४.४४ प्रतिशत ने कुछ नहीं कह सकते का अनुभव किया। इसलिए अध्ययन में पाया कि ६३.३३ प्रतिशत

उत्तरदाताओं ने सहमती जताई है कि स्वयं सहायता समूह के द्वारा उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है।

तालिका ८

आर्थिक स्थिति में परिवर्तन

आर्थिक परिवर्तन	संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक	६९	७६.६७
नकारात्मक	२१	२३.३३
कुल ९०	१००.००	

तालिका ८ में उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति को दर्शाया गया है। ७६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक स्थिति में होने वाले परिवर्तन को स्वीकारा है। जबकि २३.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक बदलाव को नकारा है।

तालिका ९

राजनीतिक भागीदारी में उनकी प्रतिक्रिया

वोटिंग के लिए पसंद	संख्या	प्रतिशत
उम्मीदवार की साफ छवि	०७	७.७८
उम्मीदवार की ईमानदारी	०८	८.८९
शिक्षित	१५	१६.६७
जाति के लिए वोट	३९	४३.३३
लिंग के लिए वोट	०९	१०.००
अन्य	१२	१३.३३
कुल	९०	१००.००

तालिका ९ में राजनीतिक भागीदारी में उनकी प्रतिक्रिया के माध्यम से उत्तरदाताओं का वितरण दर्शाया गया है जिसमें उम्मीदवार के समर्थन में उनकी स्वयम् की क्या धारणा है जो उनके समर्थन को सहायक बनाती है। ७.७८ प्रतिशत आंकडे साफ छवि के उम्मीद्वार का समर्थन करते हैं। ८.८९ प्रतिशत आंकड़े ईमानदार उम्मीदवार को दर्शाते हैं, १६.६७ प्रतिशत आंकड़े शिक्षित उम्मीदवार का समर्थन करते हैं। ४३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता जाति के आधार पर वोट डालते हैं। १० प्रतिशत लिंग के आधार का समर्थन करते हैं और १३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता अन्य उम्मीद्वारों का समर्थन करते हैं। इस प्रकार ४३.४३ प्रतिशत बहुमत जाति पर आधारित वोट डालते हैं। उक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण से जाति उनके निजी जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए जातिगत मानसिकता को ध्यान में रखकर वे वोट डालते हैं।

तालिका १०

जाति-वार्षिक आय की स्थिति में सुधार दिखाकर उत्तरदाताओं का विवरण

जाति का नाम	वार्षिक आय की स्थिति			उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
	१००० से कम	१००१-४०००	४००१-७०००		
अहीर	१०(११.११)	२५(२७.७८)	०५(५.५५)	४०	४४.४४
कुम्हार	०२(२.२२)	०५(५.५५)	०१(१.११)	०८	८.८९
नाई	०३(३.३३)	०६(६.६७)	०१(१.११)	१०	११.११
चमार	२०(२२.२२)	१०(११.११)	०२(२.२२)	३२	३५.५६
कुल	३५(३८.८९)	४६(५१.११)	०९(१०.००)	९०	१००.००

तालिका १० में जाति और वार्षिक आय के स्तर में सुधार दिखाकर उत्तरदाताओं के वितरण को दर्शाया है। इन आकंड़ों की सहायता से ३८.८९ प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय १००० रूपये से कम, ५१.११ प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय १००१ से ४००० रूपये तथा १० प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय ४००१ से ७००० रूपये है। सभी जातियों की सहायता से पंजीकरण किया गया अहीर जाति में वार्षिक आय का सुधार ज्यादा हुआ है। बल्कि कुम्हार जाति में यह सुधार बहुत कम हुआ है। स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति में से चमार जाति के लोगों के वार्षिक आय की स्थिति में काफी वृद्धि हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चमार जाति से जुड़े लोग अब शिक्षा और स्वास्थ्य में भी पैसे खर्च करने लगे हैं।

तालिका ११
जाति उद्यमशील कौशल के आधार पर उत्तरदाताओं का वितरण

जाति	व्यवसाय				संख्या	प्रतिशत
	घरेलू गतिविधियाँ (डेयरी, टेलरिंग आदि)	मजदूरी	दुकान	अन्य		
अहीर	३०(३३.३३)	०४(४.४४)	०१(१.११)	०५(५.५५)	४०	४४.४४
कुम्हार	०४(४.४४)	०२(२.२२)	००	०२(२.२२)	०८	८.८६
नाई	०४(४.४४)	०१(१.११)	०४(४.४४)	०१(१.११)	१०	११.११
चमार	१७(१८.८६)	१२(१३.३३)	०१(१.११)	०२(२.२२)	३२	३५.५६
कुल	५५(६१.११)	१६(२१.११)	०६(६.६७)	१०(११.११)	९०	१००.००

तालिका ११ में जाति-उद्यमशील कौशल के आधार पर उत्तरदाताओं का वितरण दर्शाया गया है। ६१.११ प्रतिशत उत्तरदाता घरेलू गतिविधियों में लगे हुए हैं। जिनमें से ३३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता अहीर जाति से सम्बन्ध रखते हैं। २१.११ प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी के कार्यों में लिप्त हैं। जिनमें से १३.३३ प्रतिशत उत्तरदाता चमार जाति से सम्बन्ध रखते हैं। ११.११ प्रतिशत उत्तरदाता अन्य गतिविधियों में तथा ५.५५ प्रतिशत उत्तरदाता अहीर जाति से सम्बन्ध रखते हैं।

तालिका १२
जाति-ऋण के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

जति	ऋण लेना							संख्या	प्रतिशत
	कृषि	व्यवसाय	विवाह	भवन की मरम्मत	रोग	शिक्षा	अन्य		
अहीर	८(८.८६)	५(५.५५)	८(८.८६)	११(१२.२२)	१(१.११)	३(३.३३)	४(४.४४)	४०	४४.४४
नाई	१(१.११)	२(२.२२)	१(२.२२)	१(१.११)	१(१.११)	१(१.११)	२(२.२२)	१०	११.११
चमार	६(६.६७)	८ (८.८६)	७ (७.७८)	३(३.३३)	१(१.११)	२(२.२२)	५(५.५५)	३२	३५.५६
कुम्हार	१(१.११)	२ (२.२२)	१ (१.११)	००	१(१.११)	००	३ (३.३३)	०८	८.८६
कुल	१६(१७.७८)	१७(१८.८६)	१८ (२०.००)	१५(१६.६७)	४(४.४४)	६(६.६७)	१४(१५.५६)	९०	१००.००

तालिका १२ में आधार पर लिये गये ऋण के द्वारा उत्तरदाताओं का विवरण को दर्शाया गया है। इन आकड़ों में १७.७८ प्रतिशत ऋण कृषि के लिए जिनमें से ८.८६ अहीर जाति है। २० प्रतिशत उत्तरदाता विवाह के लिए ऋण लेते हैं। जिसमें ८.८६ प्रतिशत उत्तरदाता अहीर जाति के हैं। १६.८५ प्रतिशत उत्तरदाता व्यवसाय के लिए ऋण लेते हैं जिनमें ८.८६ प्रतिशत चमार जाति के हैं। १५.५६ प्रतिशत सूचनादाता अन्य कार्यों हेतु ऋण लेते हैं।

तालिका १३
ऋण डिफाल्टर उत्तरदाताओं का विवरण

ऋण प्रयोजन एजेन्सी	संख्या	प्रतिशत
डी.आर.डी.ओ.	१७	५४.८४
बैंक	०४	१२.९०
एन.जी.ओ.	१०	३२.२६
कुल	३१	१००.००

तालिका नं. १३ में ऋण डिफाल्टर उत्तरदाताओं की संख्या का पता चलता है। इसमें दर्शाया गया है कि कुल (९०) में से ३१ उत्तरदाता को ऋण डिफाल्टर पाया गया है। इसमें ५८.८४ फीसदी डी.आर.डी.ओ. डिफाल्टर की संख्या अधिक है और बैंक द्वारा ऋण डिफाल्टर की संख्या बहुत कम है। इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि कुल उत्तरदाताओं में से केवल ३४.४४ प्रतिशत ही डिफाल्टर थे बाकी ६६.५६ प्रतिशत लोगों ने लिये गये ऋण का भुकगतान समय पर कर दिया था।

निष्कर्ष : एक पिछड़े क्षेत्र में गरीबी उन्मूलन के लिए स्वयं सहायता समूह एक नयी ताकत के रूप में उभरा है। इसलिए स्वयं सहायता समूह यह साबित कर चुका है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अनपढ़ महिलाओं की रूढ़िवादी परम्पराओं की सोच में बदलाव लाने में कारगर साबित हुआ है। स्वयं सहायता समूह महिला सशक्तीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। यदि

वित्तीय संसाधन को प्रभावपूर्ण तरीके से वितरण किया जाए तो महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति में सुधार करने व ग्रामीण क्षेत्र में असमानता कम करने में मदद की जा सकती है। स्वयं सहायता समूह के सदस्यों को पंचायत व ब्लाक स्तर पर विभिन्न नारी विकास कार्यक्रमों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। स्वयं सहायता समूहों के द्वारा विशेष रूप से राज्यों की वंचित कमजोर और गरीब महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास के तेजी लाने के लिए एक समाधान घटक के रूप में देखा जाना चाहिए।

यह अध्ययन दर्शाता है कि ७७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना है कि उनके आर्थिक स्थिति में बदलाव आया है। अधिकतर उत्तरदाताओं ने स्वयं सहायता समूह के द्वारा गरीबी दूर करने में उनकी भूमिका के बारे में सकारात्मक रूख अपनाया है। ६३.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना है कि स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद सामाजिक स्थिति में सुधार को स्वीकार किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह का गठन एक सही पहल है। परन्तु इसे सक्रिय बनाने में नगरीय सामाजिक संगठन की भूमिका को सुनिश्चित करना आवश्यक है। नगरीय सामाजिक संगठन के द्वारा जिन स्वयं सहायता समूह का गठन किया गया है उन महिलाओं में आपसी लेन-देन तथा ऋण लेकर रोज़गार से जुड़े प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की एक प्रबल इच्छा है। निश्चय ही इस प्रकार की पहल से स्वयं सहायता समूह का गठन महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ करने में मील का पत्थर साबित हो सकता है। इस प्रकार के प्रयास भारत के दक्षिण राज्यों में सफल रूप से हुए हैं। परन्तु उत्तर भारत में इस प्रकार के प्रयास को आगे बढ़ाने में सरकारी तंत्र अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर पाये हैं।

संदर्भ

1. Srivastava, Alka , "Women"s self-help group : Finding from a study in four Indian States," Social Change, June 2005, Vol. 35, No. 2, pp. 156-164
2. Das, Sanjit Kumar, "Expansion of micro-financing trough swaranjwayanti gram swarojgar yojana : Experience in west Bengal," Econoic Affairs, Vol. 55, No. 2, June 2010, pp 180-186
3. Sing, Arun Kumar, "Empowerment of Women in India," Manak Publication Pvt. Ltd., New Delhi, 2000, p. 88
4. Ibid, p. 98

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारत की जातिगत जनगणना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ. अनिल कुमार

भारत में विविध शासन करने हेतु यहां की सांस्कृतिक विशेषताओं को जानने के उद्देश्य से १८८२ में लार्ड रिपिन के कार्यकाल में जनता की अनेक विशेषताओं के आधार पर गणना कराई गई जिसे जनगणना नाम दिया गया। स्वतंत्र भारत में १९५१ में स्वतंत्रता और समानता पर आधारित विकसित राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से जनगणना प्रारंभ की गई जो १० वर्ष के अंतराल से अब तक हो रही है। इस समय सातवीं जनगणना में व्यक्ति, परिवार और मकान से संबंधित विस्तृत सूचनाएं संकलित करने की योजना है जिसमें जातिगत-गणना भी सम्मिलित है। किन्तु जातिगत गणना पर गतिरोध उत्पन्न हुआ क्योंकि अनेक सामाजिक संगठनों, विचारकों एवं राजनीतिज्ञों में इसके प्रति मतभेद है कि जाति आधारित जनगणना सामाजिक विकास में सहायक हो सकती है अथवा बाधा डाल सकती है। प्रस्तुत आलेख में दोनों विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

जनता किसी समाज की मौलिक इकाई है, इसी के द्वारा समाज और राज्य का निर्माण होता है। भारत एक प्राचीन राष्ट्र है और भारतीय समाज का इतिहास लगभग ५००० वर्ष पुराना माना जाता है। समय-समय पर यहाँ सामाजिक व शासकीय व्यवस्थाओं में परिवर्तन होते रहे हैं। ब्रिटिश शासन से पहले यह राष्ट्र अनेक छोटी-छोटी रियासतों और राज्यों में बंटा हुआ था और सामन्तवादी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था अपने चरम पर थी। शासन और प्रशासन परंपरागत रूप से चलता था। राजा- महाराजा अपनी सीमाओं के विस्तार और अन्य कारणों से एक दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते रहते थे और जनता का अनेक प्रकार से शोषण करते रहते थे। सोलहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में भारत में अंग्रेजों का प्रवेश हुआ और यहाँ के राजा महाराजाओं के आपसी संघर्ष का लाभ उठाते हुए धीरे-धीरे उन्होंने यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और कई सौ रियासतों को अपने अधीन कर लिया। अंग्रेजों ने भारत की जनता के विकास और अपने निजी हितों को साधने के लिए एक आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था यहाँ स्थापित की जो कि आज तक भी लगभग उसी रूप में उनके जाने के बाद भी यहाँ पर विद्यमान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी हम उसमें ज्यादा परिवर्तन नहीं कर पाये हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली का आरम्भ, अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की स्थापना, सड़कों, नहरों और रेल यातायात जैसी आधारभूत सुविधाएं भी ब्रिटिश शासन में ही भारत की जनता को उपलब्ध हुईं। लेकिन वे भी उसी तरह जनता का शोषण करते रहे, जिस तरह पहले से होता था। अत्यधिक लगान और बेरोजगार जैसी शोषणकारी नीतियाँ फिर भी चलती रहीं। १८५७ में अंग्रेजों के विरूद्ध मेरठ से स्वतंत्रता आन्दोलन का आगाज हुआ। इस क्रांति से अंग्रेजों के मन में एक भय उत्पन्न हुआ। भारत की जनता पर निर्विध्न शासन करने के लिए उन्होंने यहाँ की जनसंख्यात्मक व सांस्कृतिक विशेषताओं को जानने की आवश्यकता का एहसास हुआ। इसलिए १८८२ में लार्ड रिपन के कार्यकाल में भारत की जनता की अनेक विशेषताओं के आधार पर गणना करायी गयी, जिसे जनगणना का नाम दिया गया। इसमें जातीय विशेषताओं अर्थात जातियों की जनगणना का नाम दिया गया। इसमें जातीय विशेषताओं अर्थात जातियों की गणना भी की गयी। अनेक क्षेत्रों में पायी जाने वाली जातियों की विशेषताओं और संस्कृति के बारे में अनेक बुद्धिजीवियों और विद्वानों द्वारा सूचनाएं प्राप्त की गयीं। इस प्रकार भारत में जनगणना प्रारंभ का उद्देश्य अंग्रेज शासकों द्वारा अपना शासन कुशलतापूर्वक चलना था न कि यहाँ का सुनियोजित विकास। जाति भारतीय सामाजिक संरचना की एक प्रमुख विशेषता है और यहाँ के लोग जातिगत आधार पर बंटे हुए हैं तथा इनमें असमानता और वैमनस्य के भाव पाये जाते हैं। यह समाज का एक कमजोर पक्ष है और इसी को पकड़कर समाज को तोड़ा जा सकता है। ''फूट डालो और राज्य करो'' की उनकी प्रशासनिक नीति रही है इसलिए उन्होंने जातियों की गणना और उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ-साथ इनकी ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि की भी अलग से जांच करायी। १९३१ में जे.एच. हटटन, जो कि एक प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी के साथ-साथ एक समाजवेत्ता

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, उदित नारायण (पी.जी.) कालेज, पडरौना, कुशीनगर (उ.प्र.)

भी थे, के निर्देशन में भारत की जनगणना करायी गयी, जिसमें जातियों की संख्या और उनकी जनसंख्या की गणना भी की गयी। हटटन के द्वारा भारत की जाति व्यवस्था उसकी उत्पत्ति और विशेषताओं पर अलग से भी प्रकाश डाला गया हैं जो उनके प्रमुख लेखों और कृतियों के रूप में उपलब्ध है। इस जनगणना में पाया गया कि भारत में लगभग ३००० जातियाँ निवास करती हैं।[1] १६३१ के बाद १६४१ में भारत की जनगणना दूसरे विश्वयुद्ध के कारण नहीं हो सकी और १६५१ में स्वतंत्र भारत में पहली बार जनगणना की गयी।

स्वतंत्र भारत के नीति-निर्धारिक भारत को समानता और स्वतंत्रता पर आधारित विकसित राष्ट्र बनाना चाहते थे। अतः १६५१ की जगणना के आधार और उद्देश्य ब्रिटिश कालीन जनगणना से भिन्न थे। जनगणना का उद्देश्य भारतीय समाज के सुनियोजित विकास का था न कि निर्बाध शासन करने का। भारतीय जनता की कुल संख्या, उसमें पायी जानी वाली अनेक विविधताओं और विशेषताओं को जानकर ही भारतीय जनता का सुनियोजित विकास किया जा सकता था। गरीबी-अमीरी, सकल घरेलू उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय, कुल कृषि भूमि और उसका विभाजन जैसे अनेक बुनियादी आधारों पर भारत की जनगणना करायी गयी, लेकिन इसके जातिगत आधार को यह मानते हुए नहीं अपनाया गया कि इससे भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होगी। इस प्रकार १६५१ की जनगणना १६३१ की जनगणना की कई अर्थों में भिन्न रही। इसके बाद प्रत्येक १०वर्ष में भारत की जनगणना होती रही। जनगणना से प्राप्त आंकड़ों में से आम लोग केवल तथ्यों से ही परिचित हो पाते हैं, जैसे कुल जनसंख्या, वृद्धि दर, शिक्षा कर स्तर, लिंग अनुपात आदि। शेष आंकड़े सरकारी कार्यालयों के उपयोग में आते हैं। यदि जनगणना के प्रकारों पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रकाश डाला जाये तो हम पाते हैं कि यह सुनियोजित सामाजिक विकास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इसके द्वारा समाज में पायी जाने वाली विविधताओं की वैज्ञानिक जानकारी हमें प्राप्त होती है और समाज की स्पष्ट तस्वीर हमारे सामने आ जाती है जिससे सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर सामाजिक विकास के कार्य किए जा सकें।

भारतीय सामाजिक संरचना : भारतीय समाज एक प्राचीन समाज है परंपरावाद और बंद समाज के लक्षण इसकी प्रमुख विशेषता हैं, क्योंकि इसकी संरचना और प्रकार्य में जाति विशेष स्थान रखती है। यद्यपि हिन्दू दर्शन कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण में कर्म का निर्धारिण जन्म के आधार पर होता है न कि योग्यता और क्षमता के। इस प्रकार हिन्दू धर्म और जाति व्यवस्था एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ तक जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रश्न है, इसका स्पष्ट व तथ्यपरक उत्तर किसी के पास नहीं हैं। अधिकतर विचारक मानते हैं कि आर्यों और द्रविड़ों के संघर्ष के पश्चात भारत में समाज का वर्णों के रूप में विभाजन हुआ और कालान्तर में इन वर्णों में अनेक उपवर्णों का उदय हुआ जिन्हें जाति का नाम दिया गया। आज भी भारत में वर्ण है लेकिन व्यवस्था नहीं है क्योंकि लोगों ने वर्णों के अनुरूप व्यवसाय बंद कर दिए हैं। जाति की उत्पत्ति के संबंध में धुर्ये ने एक संभावाना व्यक्त की है कि जातियों की उत्पत्ति व्यवसाय, निवास स्थान के नाम व विवाह की दशा पर हुई हैं जैसे वे उदाहरण देते हैं कि धातु का काम करने वाली जातियों के नाम जैसे लोहार, तांबट, कासार व ठठेरा उस धातु से निकलते हैं जिसका वे उपयोग करते हैं जैसे लोहा, तांबा, कांसा तथा पीतल। कुम्भार, कुम्बार या कुम्हार एक जाति का नाम है और इसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जो कुम्भ बनाता है। नाई एक जाति का नाम या तो नाई के संस्कृत पर्याय से निकला है या इसका अर्थ बाल काटना वाला होता है। चमड़े का काम करने वाली जाति का नाम चमार या चांभर। चूहे खाने वाली जाति का नाम मुसहर। भंगी जो मैला उठाने का समाजोपयोगी कार्य करते हैं उसे कहते हैं। यह नाम भी संभवतः वह जाति के प्रति घृणा के प्रतीक के रूप में लागू किया गया है। इसका अर्थ भग्न जाति या जातिच्युत होता है। अधिकांश जातियों में ऐसी उपजातियाँ विद्यमान हैं जो किसी प्राचीन नगर या स्थान का नाम धारण कर लेती हैं जैसे कन्नौजिया का नाम कन्नौज से, चौरसिया मिर्जापुर के चौरासी परगने से, जायसवाल, रायबरेली के जायस कस्बे से, भिलाल राजपूत पुरूषों तथा भील स्त्रियों की संतान के रूप में प्रसिद्ध है।[2] इस प्रकार वर्णानुसार व्यवसायों को लंबे समय तक करते रहने वाले समूहों को उनके व्यवसाय के नाम के अनुसार नाम दिया गया। रक्त की शुद्धता, समान संस्कृति व व्यवसाय और समान आर्थिक सामाजिक हैसियत के आधार पर अंतः जातीय विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। व्यवसाय और जाति एक सिक्के के दो पहलू बन गए इसलिए इसका निर्धारण जन्म से होने लगा अर्थात जिस परिवार में बच्चे का जन्म होगा वही उसकी जाति होगी। जाति व्यवस्था समाज का पदसौपानिक क्रम में विभाजन करती है अर्थात निम्नता और उच्चता का निर्धारण जाति के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक व्यवसाय की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति भिन्न-भिन्न होती है इसलिए

पदसोपान क्रम में व्यवसाय महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ब्राह्मणों की स्थिति इसलिए उच्च मानी जाती है क्योंकि उन्हें प्रत्यक्ष भगवान का प्रतिनिधि माना जाता है। राजपूतों को इसलिए उच्च स्थिति प्राप्त है, क्योंकि वे शासक वर्ग से संबंधित है। वैश्य भी सम्मानजनक स्थिति में है क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है। सबसे निम्न स्थान पर वे जातियाँ हैं, जिनके व्यवसाय आर्थिक और सांस्कृतिक, धार्मिक रूप से निम्न हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी जाति के व्यवसाय की प्रकृति उसकी सामाजिक प्रास्थिति का निर्धारित करती है जैसे शूद्रों में भी त्यज्य और अन्त्यज्य जातियाँ पायी जाती हैं।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन और वर्तमान परिदृश्य : जाति व्यवस्था और इसमें हो रहे परिवर्तन निरंतर समाज वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय रहे हैं। एम.एन. श्रीनिवास, जी.एस. धुर्ये और श्यामाचरण दुबे जैसे भारतीय समाजवेत्ताओं के साथ-साथ जे.एच. हट्टन, एफ.जी. बेली जैसे विदेशी अध्ययनकर्ताओं ने भी भारतीय जाति व्यवस्था का क्षेत्र आधारित अध्ययन करके इसके संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह प्रस्तुत किए हैं। एम.एन. श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह प्रस्तुत किया है कि भारत में सभी जातियों की स्थिति सभी स्थानों पर एक समान नही है। कई स्थानों पर ब्राह्मणों की स्थिति कृषक जातियों से निम्न मानी जाती हैं।[३] दूसरे निम्न जातियों के द्वारा संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के द्वारा अपने आपको उच्च स्थिति प्रदान करने का दावा प्रस्तुत किया जा रहा है। लेकिन उच्च जातियाँ अपनी प्रस्थिति को कायम रखने के लिए उन्हें इस प्रक्रिया से रोकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के सभी नागारिकों को स्वतंत्रता और समानता जैसे मौलिक अधिकार प्राप्त हुए हैं इनमें अवसरों की समानता भी सम्मिलित है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का हो अपना व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्र है। हिन्दू विवाह अधिनियम १९५० के अनुसार एक वयस्क स्त्री और पुरूष आपस में विवाह कर सकते हैं चाहे उनके जाति और धर्म अलग-अलग क्यों न हो। सरकारी नौकरियां प्राप्त करने का भी सबको समान अवसर प्राप्त है। **आजादी के** साठ वर्षो में कुछ हद तक जातीय असमानताएं कम हुई हैं। आरक्षण की व्यवस्था ने निम्न जातियों को उच्च प्रतिष्ठित पदों पर आसीन होने का अवसर प्रदान किया है, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। जिन जातियों के अध्ययन और अध्यापन पर प्रतिबंध था वे अब अध्ययन और अध्यापन कर रहे हैं, जिससे विवाहों की संख्या में उस अनुपात में वृद्धि नही हुई है, जो जाति व्यवस्था को लचीला बनाने के आवश्यक है बल्कि जातिगत चेतना बढ़ने के कारण जातिवाद में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। यह वास्तव में सामाजिकता की मूल भावना के विरूद्ध है। जाति व्यवस्था में इतनी बुराई नहीं है, जितनी की जातिवाद में है। आज भी अनके पेशों पर परंपरागत रूप से चली आ रही जातियों को ही एकाधिकार प्राप्त है। पुरोहिताई का कार्य केवल ब्राह्मण ही करते हैं और सफाई जैसा घृणित समझा जाने वाला कार्य केवल कुछ शूद्र जातियों के हिस्से में ही आता है। अभी पिछले दिनों उ.प्र. में एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई है। प्रदेश के सभी गाँवों को स्वच्छ रखने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर सफाई कर्मचारियों की सरकारी भर्ती की गयी। बेरोजगारी की समस्या से ग्रसित अनेक युवाओं ने इसमें आवेदन किए जिसमें समाज की सभी जातियों के लोग थे। अनेक उच्च जातियों के युवा भी इसमें नियुक्ति पा गए। लेकिन सफाई का कार्य उनकी सामाजिक प्रस्थिति के अनुरूप नहीं था। एक ब्राह्मण का पुत्र सफाई का कर्म करे यह संभव ही नही है, इससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दाव पर लगती है, लेकिन दूसरी ओर रोजगार भी आवश्यक है इसलिए उन्होने इसके लिए एक आसान तरीका खोज लिया और वह था भ्रष्टाचार, जिसके द्वारा बिना सफाई का काम करे वेतन पाया जा सकता था। अब उन्होने ग्राम प्रधान और अधिकारियों से तालमेल करके किसी सफाई करने वाली जाति के व्यक्ति को थोड़े से पैसे देकर सफाई का काम कराना प्रारम्भ कर दिया शेष राशि आपस में बांट ली जाती है। इस प्रकार सफाई का काम आज भी परंपरागत जातियाँ ही कर रही हैं, लेकिन आज भी चाहे वह उच्च शिक्षित परिवार हो या अशिक्षित गरीब, विवाह के मामले मे सजातीय होना अपरिहार्य है। अन्तर्जातीय विवाह करने वालों की स्थिति आर्य पुरूष और दविड़ कन्या से उत्पन्न संतानों जैसी हो जाती है।[४] इसलिए अभी जाति व्यवस्था में परिवर्तन या समाप्ति की कोई संभावना नजर नही आती केवल इसमें सुधार किया जा सकता हैं, जातिवाद को रोका जा सकता है। एक प्रश्न और बहुत ही अहम है जिसमें एम.एन. श्रीनिवास कहते हैं कि जब जातियाँ लुप्त हो जायेगी तो हिन्दूवास का क्या होगा? इसका उत्तर आसान है लेकिन सब चुप हैं।

जातिगणना का औचित्य : समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य : प्रारम्भ में हम जनगणना के उद्देश्यों पर चर्चा करते हुए पाते हैं कि अंग्रेजी शासन की जनगणना और स्वतंत्र भारत की जनगणना के उद्देश्यों में मौलिक भिन्नता है। वर्तमान में जनगणना का उद्देश्य जनसंख्या की प्रकृति को जानकर उसका

सुनियोजित विकास करना है।

इस समय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सातवीं बार भारत में जनगणना की प्रक्रिया चल रही है, जिसमें भारत के नागरिकों से संबंधित अधिकतम जानिकारियाँ प्राप्त करने की योजना है जैसे-(१) मकान सूची-मकान की स्थिति, पानी के श्रोत, शौचालय, बिजली, रसोईघर, रेडियो, टी.वी. कम्प्यूटर, गाड़ी आदि। (२) परिवार अनुसूची-धर्म, जाति, सामान्य बीमारी और उनके उपचार को सुविधाएं आदि। (३) व्यक्ति की आदतें-तम्बाकू, गुटका, सिगरेट, शराब आदि का सेवन। लेकिन उपर्युक्त आधारों में से जातिगत जनगणना करने पर एक गतिरोध उत्पन्न हुआ। ०६ सितम्बर २०१० को प्रणव मुखर्जी की अध्यक्षता में मंत्रियों के एक समूह ने इसकी स्वीकृति प्रदान कर दी। यह कार्य जनगणना के बायोमीट्रिक चरण में होगा, जो कि दिसम्बर में संभावित है। अनेक सामाजिक संगठनों, विचारकों और राजनीतिज्ञों में इसके प्रति मतभेद है कि जाति आधारित जनगणना सामाजिक विकास में बाधा डाल सकती हैं। इसके विरोध में कुछ संगठन और विचारक यह तर्क दे रहे हैं कि इसमें समाज में असमानता बढ़ेगी जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा और समाज में वैमनस्य की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

जातिगत जनगणना के विरोध में विभिन्न चिंतकों और संगठनों के तर्कों का निम्न बिन्दुओं द्वारा संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है-

१) भारत एक जाति और धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है हमारा धर्म और जाति केवल भारतीय हैं, इसलिए जातिगत जनगणना करने का कोई औचित्य नही है।

२) यह एक प्रकार का राजनैतिक षडयंत्र है, जिसके द्वारा विभिन्न राजनैतिक दल अपना-अपना हित साधने के लिए भारत में पायी जाने वाली विभिन्न जातियों का संख्याबल जानना चाहती हैं जिससे जातिगत राजनीतिक समीकरण बनाए जा सकें। अतः यह कार्य भारत के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिए घातक है और लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है।

३) भारत की जातियों को पहले से ही सामान्य, पिछड़ी और अनुसूचित जातियाँ की श्रेणी में रखकर निम्न और पिछड़ी जातियों को आरक्षण देकर उनके विकास के लिए कार्य किए जा रहे हैं तो अब फिर जातियों को गणना की क्या आवश्यकता हैं?

४) भारतीय समाज विकास के पथ पर अग्रसर है, यहाँ से जातीय भेदभाव धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं ऐसी स्थिति में जातिगत जनगणना की जाती है तो इससे जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा जातीय वैमनस्य बढ़ जाएंगे और भारत का विकास रुक जायेगा।

अतः इनकी चिन्ता है कि जातिगत जनगणना से समाज में विघटनकारी तत्व सक्रिय हो जायेंगें, समाज में जतिगत संघर्ष बढ़ जायेगा और भारत की एकता और अखंण्डता को क्षति पहुँचेगी।

जातिगत जनगणना के पक्ष में जो तर्क दिए जा रहे हैं वे कुछ इस प्रकार हैं:

१) भारत एक जाति प्रधान देश है। यहाँ पर व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक स्तर जाति आधारित है। अतः जब तक यह पता नही चलेगा कि किस जाति के लोग निम्नतम और पिछड़ा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब तक उनके विकास की योजनाएं नही बनायी जा सकतीं। अतः जातिगत जनगणना आवश्यक हैं।

२) उच्च जातियों के व्यक्ति समाज में अपनी यथास्थिति बनाए रखने के लिए इसका विरोध कर रहे हैं, क्योंकि औपचारिक जनगणना के द्वारा वास्तविक स्थिति सभी के समाने आ जायेगी और निम्न जातियों के विकास से उनकी स्थिति में परिवर्तन हो जायेगा।

३) यदि किसी बीमारी और कमी को दूर करना हो तो उसकी वास्तविकता जाननी चाहिए तभी उसका इलाज किया जा सकता है।

४) जाति मतभेद और जातिवाद भारतीय समाज में पायी जाने वाली एक बुरी बीमारी हैं। अतः इसका विनाश करने के लिए इसकी जड़ों तक पहुँचना होगा, वास्तविकताओं का पता लगाना होगा, जो कि व्यवस्थित आंकड़ों के द्वारा ही पता चल सकता हैं। अतः जातिगत जनगणना आवश्यक है।

इस प्रकार ये विचारक भारत के सामाजिक अर्थिक विकास के लिए जातिगत जनगणना को आवश्यक और स्वागत के योग्य उठाया गया कदम मानते हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण : इस दृष्टिकोण से इसके सैद्धांतिक अथवा पद्धतिशास्त्रीय और व्यवहारिक दोनों प्रकार के दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से यह माना जा सकता है कि 'समाजशास्त्र, सामाजिक वास्तविकता' का अध्ययन करने वाला विज्ञान है और ये वास्तविकताएं वैज्ञानिक ढंग से खोजी गई हों, दार्शनिक ढंग से नहीं। आगस्ट काम्टे का प्रत्यक्षवाद' समाज का तथ्यों पर आधारित ज्ञान प्राप्त करने का समर्थन करता है।

तथ्यों की खोज समाज में जाकर तटस्थता के साथ सूचनाएं प्राप्त करने से होती है। जनगणना की प्रक्रिया में तटस्थ होकर ही सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। घर-घर जाकर सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं, जिनमें बड़े पैमाने पर कोई फेर-बदल नहीं किया जा सकता। अतः यदि समाज की वास्तविक तस्वीर देखनी है तो जाति तो क्या जितने प्रकार की विविधताएं भारतीय समाज में पायी जाती हैं उन सभी के आधार पर जनगणना की जानी चाहिए। भाषा, धर्म जाति, व्यवसाय, वार्षिक परिवारिक आय और यहाँ तक कि वे किस प्रकार भोजन करते हैं शाकाहारी हैं या मांसाहारी यह भी जनगणना के आधार होने चाहिए। बहुत से ऐसे भी लोग हो सकते हैं जो किसी भी धर्म को न मानते हों, नास्तिक हों या हिन्दू या मुसलमान होते हुए भी कभी मंदिर या मस्जिद में न जाते हो। इन सभी सूचनाओं का होना समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए अतिआवश्यक है। अतः सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भारत की जातिगत जनगणना कराने में कोई आपत्ति नहीं हैं।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से हमें यह जानने का प्रयास करना है कि १६३१ के ८० वर्ष बाद भी ऐसी कौन-सी दशाएं है?जाति व्यवस्था को बनाए रखने और जातिवाद को बढ़ावा देने वाले तत्व कौन से हैं? दूसरे भारत की कुल आबादी का कितना बड़ा हिस्सा यह जानता है कि उनकी जातिगत गणना की जा रही है और इसके क्या लाभ-हानि है? इसके बाद हमें तटस्थ होकर इसके लाभों और हानियों पर विचार करना होगा।

अब हम पहले प्रश्न के उत्तर पर आते हैं; भारतीय समाज में आज तक जाति व्यवस्था को बनाए रखने में एक मात्र कारण इसका अन्तःर्विवाही होना है। अन्तःर्विवाह होने का कारण विभिन्न जातियों के बीच उच्चता और निम्नता का होना जातिवाद को बढ़ावा देता है। उच्च जाति का व्यक्ति आज भी यही चाहता है कि निम्न जाति का व्यक्ति उसे झुककर सलाम करें, उसके समान या आगे बढ़ने का प्रयास न करे। यदि इसके विपरीत वह कुछ देखता है, निम्न जातियों में गतिशीलता होते हुए देखता है तो वह इसके विरूद्ध अनेक प्रकार की अतार्किक क्रियाएँ करने से नहीं चूकता। उच्च जातियों के इस व्यवहार से निम्न जातियों को चिढ़ होने लगी है जो कि स्वाभाविक भी है। इसलिए वे इनके विरूद्ध एकजुट होकर संघर्ष करने का प्रयास करती हैं। उच्चता और निम्नता का एक महत्त्वपूर्ण तत्व आर्थिक और व्यवसायिक भी है। निम्न जातियाँ आज भी निम्न स्तर के पेशों में लगी हैं, जिनसे बहुत ज्यादा आमदनी नही हो पाती, जिससे कि उनके जीवन स्तर में सुधार हो सके।[५] जब जीवन स्तर में सुधार होगा तभी तो सामाजिक स्थिति सुधर सकेगी। किस जाति के लोगों का जीवन स्तर किस प्रकार का है इसका पता संस्थागत ढंग से सूचना एकत्र करने पर ही लग सकता है, जो कि जनगणना द्वारा ही संभव है। जहाँ तक दूसरे प्रश्न की बात है तो हमारी आबादी का एक 'सूई की नोक' के बराबर हिस्सा यह जानता है कि और इसके क्या लाभ-हानि हो सकते हैं। एक बड़े हिस्से को इसकी खबर नहीं हैं उसकी जातिगत जनगणना की जा रही है और न ही कोई चिंता है, क्योंकि जिस स्थिति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं इससे ज्यादा उनका कुछ नहीं बिगड़ पायेगा। इनमें उच्च और निम्न सभी जाति के लोग हैं।

यदि हम तटस्थ होकर भारतीय समाज पर एक नजर डालते हैं तो देखने को मिलता है कि भारत की जाति व्यवस्था संरचनात्मक दृष्टिकोण से एक सुंदर व्यवस्था मानी जा सकती है। जातिविहीन अत्याधुनिक समाजों में यदि झांक कर देखा जाये तो हम पाते हैं कि उनके सामाजिक संबंधों में भावनाएं और सामाजिकता है ही नहीं। ४०वर्ष की आयु पार करतें-करतें एक व्यक्ति तीन-तीन वैवाहिक जीवनों का अनुभव प्राप्त कर लेता है। लगभग ४० प्रतिशत बच्चे अपने माता या पिता में से एक के पास रहते हैं। हद तो तब हो जाती है जब यह पता चलता है कि अनेक बच्चों को अपने माँ और बाप में से किसी का भी पता ही नही हैं। लेकिन भारतीय समाज में इसके बिलकुल विपरीत विवाह एक सामाजिक संस्कार है और यहाँ के मुसलमानों में भी भले ही चार विवाह की धार्मिक अनुमति हो लेकिन एक विवाह का ही प्रचलन पाया जाता है। ऐसा इसलिए है कि यहाँ विवाह एक सामाजिक, धार्मिक संस्कार माना जाता है। पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर का संबंध माना जाता है। प्रेम विवाह केवल क्षणिक यौनाकर्षण का परिणाम है जो थोड़े समय मे समाप्त होकर टूट जाता है। इसलिए इस प्रकार के विवाहों को घृणित व असामाजिक माना जाता है, अतः इनकी अनुमति भारतीय समाज में नहीं है। हिन्दू धर्म और जाति एक सिक्के के दो पहलू हैं, यदि जाति व्यवस्था को समाप्त करने की बात की जाती है तो हिन्दू धर्म का क्या होगा?जब भगवान के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मण के स्थान पर भंगी आ जायेगा तब हिन्दू धर्म का क्या होगा?जो लोग जाति व्यवस्था को समाप्त करने की बात करते हैं वे समाज के वास्तविक धरातल पर नहीं है। इस व्यवस्था का दूसरा पहलू आर्थिक है उसे सुधारा जा सकता है। आज भी निम्न जातियों के लोग गरीब है, दलितों के पास पक्के मकान नहीं हैं उनके बच्चे सरकारी स्कूल पढ़ने नहीं 'मिडडे-मील' खाने के लिए जाते हैं। इस स्थिति को सुधारा जा सकता हैं। इसलिए यह पता

लगाना आवश्यक है कि कौन बच्चा स्कूल नहीं जाता या किस स्तर पर पढ़ाई छोड़ देता है और क्यों? कौन-सी जातियाँ परंपरागत पेशों में लगी हुई हैं? और इनमें क्या आय होती है?आदि। अतः जातियों की सामाजिक आर्थिक जनगणना की जानी चाहिए केवल जाति का पता करने से काम नहीं चलेगा। इसमें एक तथ्य यहाँ और भी है कि क्षेत्रवार अनौपचारिक जातिगत सूचनाएं आम से खास व्यक्ति के पास मौजूद हैं। किस गाँव में कौन-कौन-सी जातियाँ की कितनी जनसंख्या है?इसको सभी क्षेत्रीय लोग जानते हैं। अतः यदि औपचारिक व वैधानिक ढंग से गणना कर ली जाये तो कोई नुकसान मालूम नहीं होता है और यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि चाहें राजनैतिक पार्टियां और राजनेताओं, तथाकथित बुद्धिजीवियों उच्च पदस्थ लोगो को कुछ हानि पहुँच जाये गरीब लोगों को कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि जिस स्थिति में वे आज है उनकी स्थिति उससे खराब नहीं हो सकती। जहाँ तक जातिवाद का प्रश्न है, इसे आर्थिक विकास और शिक्षा के प्रसार से कम किया जा सकता है।

संदर्भ

1. Hutton, J.H, 'Caste in India', Oxford University Press, Bombay 1977, pp. 205-206.
2. घुर्ये गोविन्द सदाशिव, 'जाति, वर्ग और व्यवसाय', राजपाल एण्ड सन्स-१९६१, पृ. १६६-१७०
3. श्रीनिवास एम.एन., 'आधुनिक भारत में जाति', राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-१९६०, पृ. ६३-६६
4. सिन्हा सच्चिदानन्द, 'जाति व्यवस्था मिथक, वास्तविकता और चुनौतियां', राजकमल प्रकाशन-२००६, पृ. ११७
5. Atal Yogesh, 'The Changing Frontiers of Caste', National Publishing House, Delhi, 1968, pp. 101-103.
6. रंगनायम्मा, 'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफी नहीं, अम्बेडकर भी काफी नहीं, मार्क्स जरूरी हैं, राहुल फाउण्डेशन- लखनऊ २००८
7. Bailey, F.G., 'Caste and Economic Frontier', University Press Manchester 1958, pp. 186.
8. Gould Harold, 'The Hindu Caste System', Chankya Publications, New Delhi, 1987
9. Kalonda Panline, 'Caste in Contemporary India', Rawat Publications, Jaipur,1997

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

अफगानी अफीम एवं आतंकवाद – भारत पर प्रभाव

❑ **डॉ० रन्जू राठौर**

पिछले कुछ दशकों में लगातार युद्धरत् अफगानिस्तान की भूमि पर जिन शक्तियों ने भी शांति स्थापित करने का प्रयास किया है, उन्होंने इस देश में एक ऐसे हथियार का सामना किया है जो हजारों एकड़ भूमि पर फैला हुआ है, यह है, अफीम। अफगानिस्तान अनेक वर्षों से गैरकानूनी अफीम और हेरोइन का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान अफगानिस्तान में अफीम की गैरकानूनी खेती एवं उससे सम्बन्धित गतिविधियों, अफगानी अफीम का आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देने में योगदान तथा इससे उत्पन्न अफगान-भारत संबंधों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

पिछले कुछ दशकों में लगातार युद्धरत् अफगानिस्तान की भूमि पर जिन शक्तियों ने भी शांति स्थापित करने का प्रयास किया है, उन्होंने इस देश में एक ऐसे हथियार का सामना किया है जो हजारों एकड़ भूमि पर फैला हुआ है, यह है, अफीम। अफगानिस्तान अनेक वर्षों से गैरकानूनी अफीम और हेरोइन का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक है। अफीम के उत्पादन एवं व्यापार से उत्पन्न होने वाले काले धन ने तालिबान, अलकायदा और इस्लामिक स्टेट जैसे आतंकवादी संगठनों के लिए संसाधन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[१] एक मजबूत केन्द्रीय सत्ता के अभाव में अफगानिस्तान के विभिन्न हिस्सों में जिसका भी आधिपत्य होता है वह अफीम से लाभान्वित होता है। इसलिए दशकों से अफीम की खेती, हेरोइन के उत्पादन एवं तस्करी के विरूद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं हुई है। अफगानी अफीम का बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के रास्ते भारत पहुंचकर यहां के युवाओं में न केवल नशाखोरी को बढ़ावा दे रहा है अपितु भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी अनेक प्रकार के खतरे उत्पन्न कर रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान अफगानिस्तान में अफीम की गैरकानूनी खेती एवं उससे सम्बन्धित गतिविधियों, अफगानी अफीम का आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देने में योगदान तथा इससे उत्पन्न अफगान-भारत संबंधों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत सूचना के स्रोत के रूप में द्वितीयक सामग्री का उपयोग किया गया है जिसमें इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ, अमेरिकी सरकार एवं उस क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत सामग्री आदि है।

अफगानिस्तान में होने वाली आतंकवादी गतिविधियों का वहां उत्पन्न होने वाली अफीम से गहरा सम्बन्ध है। आतंकवादी संगठनों की आय के प्रमुख स्रोत के अतिरिक्त अनेक बार इन संगठनों ने अफीम का उपयोग अपनी गतिविधियों में मुद्रा के रूप में भी किया है। मैड्रिड बम धमाकों में आतंकवादियों को भुगतान अफीम से ही किया गया था।[२] हांलाकि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद ने आतंकवाद एवं अन्य अपराधी क्रियाकलापों जैसे अफीम/कोकीन की तस्करी के संबंधों को सदैव स्वीकार किया है फिर भी इन संबंधों के वास्तविक स्वरूप एवं भूमिका के संबंध में कोई भी तथ्यात्मक शोध नहीं किया गया है। सटीक जानकारी के अभाव में आतंकवाद एवं अपराध की इस जुगलबंदी के विरूद्ध कार्यवाही बहुत मुश्किल हो गयी है। अमेरिकी सरकार ने अफगानिस्तान की तुलना सदैव कोलम्बिया से की है जहां अमेरिका द्वारा समर्थित सरकार के विरूद्ध लड़ने वाले समूहों ने कोकीन की तस्करी से प्राप्त धन का उपयोग अपने गुरिल्ला युद्ध के लिए किया था। ब्रितानी सरकार ने सदैव ही यह स्वीकार किया कि अफगानिस्तान में उनका शत्रु अफीम ही ब्रितानी सड़कों पर पायी जाने वाली हेरोइन का मुख्य स्रोत है।

अक्टूबर २००१ में संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं द्वारा अफगानिस्तान में प्रवेश करने से पूर्व दुनिया में उत्पन्न होने वाली अफीम का ७५ प्रतिशत हिस्सा अफगानिस्तान से प्राप्त होता था, किन्तु इस आक्रमण के उपरान्त यह हिस्सेदारी ९० प्रतिशत तक पहुंच गयी। एक समय था जब तालिबान की आय में अफीम का हिस्सा ६६ प्रतिशत तक था। संयुक्त राष्ट्र संघ की २००६ की ड्रग रिपोर्ट के अनुसार अफीम पूरे विश्व में आतंकवादी गतिविधियों हेतु धन उपलब्ध करवाती है। १.५ करोड़ से अधिक नशाखोरों तक हेरोइन पहुंचाती है और प्रतिवर्ष १० लाख से अधिक लोगों की मृत्यु का कारण बनती

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, बी.आर.ए.एल. राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

है।[३] २००६ में उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन ने अफगानिस्तान में कार्यरत अपने सदस्यों को अफीम की खेती एवं तस्करी के विरूद्ध कार्यवाही करने को कहा।[४]

विश्व के अन्य हिस्सों की तरह अफगानिस्तान के उन क्षेत्रों में जहां केन्द्रीय सरकार का प्रभाव कम है, अफीम की खेती एवं तस्करी की गतिविधियां ज्यादा हैं, विशेषकर अफगानिस्तान का दक्षिणी हिस्सा। संयुक्त राष्ट्र संघ की वर्ष २०१४ की विश्व ड्रग रिपोर्ट में कहा गया है कि अफीम एवं अफीम से उत्पन्न होने वाले पदार्थ नशे की समस्या उत्पन्न करने वाले पदार्थों में न केवल सबसे ऊपर है बल्कि बीमारी एवं नशाखोरी से होने वाली मृत्युओं का भी सबसे बड़ा कारण है। लगातार पिछले तीन वर्षों से अफगानिस्तान में अफीम की खेती के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी हुई है (२०१२ में १५४००० हेक्टेयर से २०१३ में २०६००० हेक्टेयर तथा २०१४ में २२४००० हेक्टेयर)।[५] पराम्परागत रूप से अफगानी अफीम एवं हेरोइन का अधिकांश हिस्सा बल्कान देशों के रास्ते पश्चिमी एवं मध्य यूरोप पहुंचता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इन देशों की प्रभावशाली कानून व्यवस्था एवं यूरोपीय देशों में अफीम एवं अफीम के उत्पादों की घटती मांग के कारण अफगानी अफीम अब दक्षिण के रास्ते मध्यपूर्व पाकिस्तान एवं भारत होते हुए अफ्रीका एवं अमेरिका पहुंचती है।

अफगानिस्तान के इतिहास में वैसे तो अफीम का जिक्र सबसे पहले ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में सिकन्दर महान के आक्रमण से किया जाता है किन्तु अफगानिस्तान में लगभग ३०० वर्ष पूर्व से अफीम की खेती बड़े पैमाने पर होने लगी थी। बदखसान एवं नंग्रहार सूबों की मिट्टी अफीम के लिए उपयुक्त है, खाद एवं पानी की कम जरूरत के साथ विशेष कुशलता की आवश्यकता न होना इसके उत्पादन को बढ़ावा देती है। पूरी अठ्ठारवीं एवं उन्नीसवी शताब्दी में कृषि प्रधान इस देश में एक महंगी उपज के रूप में अफीम का महत्व सदैव रहा है। लेकिन बीसवीं शताब्दी के मध्य के बाद ही अफगानिस्तान से अफीम का निर्यात प्रारम्भ हुआ।

संयुक्त राष्ट्र संघ, जिसमें अफगानिस्तान १६४६ में सम्मिलित हुआ, के आग्रह पर तत्कालीन अफगानी राजा मोहम्मद जहीर शाह ने अस्थायी रूप से अफीम की खेती पर प्रतिबन्ध लगा दिया। किन्तु कालान्तर में पूरी तरह से अफीम की खेती पर आश्रित किसानों के आग्रह पर राजा ने अपने निर्णय को बदल दिया। परम्परागत रूप से अफगानी किसान दुनिया भर में बादाम, पिस्ता, अनार, रूई एवं अंगूर की खेती के लिए प्रसिद्ध रहे हैं किन्तु दिसम्बर १६७६ में सोवियत आक्रमण के उपरान्त अफगानिस्तान के कृषि क्षेत्र में कई परिवर्तन हुए हैं। मेवों एवं फलों की खेती लगातार होने वाले राजनीतिक संघर्ष की भेंट चढ़ गयी। सड़क, नहरें एवं अन्य कृषि सहायक सुविधाएं अस्त व्यवस्त हो गयीं।[६] १६८६ में रूसी सेनाओं की वापसी एवं १६६४ में तालिबान के उद्भव तक अफगानिस्तान में बड़ी अफरा-तफरी रही। मजबूत केन्द्रीय राजनीतिक सत्ता के अभाव में किसानों की सुध लेने वाला कोई नहीं था। जीवित रहने के संघर्ष में बड़ी संख्या में किसान अफीम की खेती में लिप्त हो गये। नंग्राहर, बदखसान एवं हेलमण्ड के क्षेत्रों में पाकिस्तान की तरफ से अफीम की खेती को बढ़ावा देने वाले तस्करों एवं व्यापारियों की घुसपैठ होने लगी। उपर्युक्त कारणों से १६८६ में पूरे विश्व के अफीम उत्पादन के १६ प्रतिशत से वर्तमान में अफगानिस्तान में ६० प्रतिशत तक उत्पादन होने लगा। १६६६ के बाद अफीम की खेती के सबसे बड़े पोषक का स्थान तालिबान ने ले लिया। अफीम की खेती के प्रति नरम रूख अपनाकर तालिबान ने ग्राम एवं कबीलों के प्रमुखों को अपनी तरफ कर लिया। किसानों एवं तस्करों से मिलने वाला टैक्स तालिबान की आय का प्रमुख स्रोत बन गया। बाद के वर्षों में तालिबान के अतिरिक्त अलकायदा तथा अन्य आतंकवादी संगठनों ने भी अफीम से उत्पन्न धन का दुरूपयोग अपने आंकती क्रियाकलापों में किया।

अफगानिस्तान एवं उसके निकटवर्ती देशों की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में तालिबान अलकायदा एवं इस्लामिक स्टेट जैसे आतंकवादी संगठनों के भविष्य की योजनाओं में भारत का स्थान महत्वपूर्ण है। अफगानी अफीम का एक बड़ा हिस्सा न केवल भारत के रास्ते अन्य देशों को पहुंचाया जाता है अपितु भारत में भी प्रयोग में लाया जाता है। लम्बे समय से भारत अफगानी अफीम और आतंकवाद के दुष्परिणामों को झेलता रहा है। पंजाब प्रांत, जिसकी सीमा पाकिस्तान से मिलती है, अफीम तस्करी के लिए कुख्यात हो गया है। सिक्खों का पवित्र शहर अृतसर भारत की हेरोइन राजधानी के रूप में जाना जाने लगा है। कभी भारत की हरित क्रान्ति में अग्रणी भूमिका निभाने वाला पंजाब प्रान्त आज अपने युवाओं में ७० प्रतिशत तक नशाखोरी से अभिशप्त है। नई दिल्ली एवं मुम्बई के रास्ते अफगानी अफीम अफ्रीका एवं दूसरे देशों को भेजी जाती है। भारत के बड़े शहरों में हेरोइन की बड़ी मात्रा में उपलब्धता ने इन नगरों में इसकी खपत को भी बढ़ा दिया है। भारत के रास्ते अन्य देशों को जाने वाली अफीम की समस्या की भयावहता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अमेरिका ने नई दिल्ली में अपने ड्रग इन्फोर्समेंट एडमिनिस्ट्रेशन

के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति कर दी है। अब जबकि अमेरिका के नेतृत्व वाली संयुक्त राष्ट्र की शांति सेना अफगानिस्तान से वापसी कर रही है, आने वाले वर्षों में अफीम की खेती एवं तस्करी बढ़ने की उम्मीद है। भारत अफगानिस्तान की वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक एवं सुरक्षा अस्थिरता से भली भांति परिचित है और भविष्य में भारत-अफगान संबंधों को लेकर चिंतित भी है।

बहुसंख्यक कृषक समाज (लगभग ८५ प्रतिशत) वाले देश अफगानिस्तान की वर्तमान आर्थिक दशा आय के दो विरोधाभासी स्रोतों पर आश्रित है जिसमें एक है पश्चिमी सहायता और दूसरी अफीम की खेती है। पश्चिमी देश इस उम्मीद में आर्थिक सहायता देते हैं कि अफगानिस्तान का समाज तालिबान से दूरी बनाकर स्वयं को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करेगा। दूसरी तरफ तालिबान द्वारा पोषित अफीम की खेती तथा तस्करी से प्राप्त धन का उपयोग तालिबान पश्चिमी सेनाओं पर आक्रमण में कर रहा है। अफगानी सरकार अच्छी तरह से जानती है कि निर्बाद्ध विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए अफगानी अर्थव्यवस्था की अफीम पर आश्रितता कम करनी होगी। किन्तु न तो जैसे अफगानिस्तान एक दो वर्षों में दुनिया का सबसे बड़ा अफीम उत्पादक देश बना वैसे ही अफगानिस्तान की अफीम से मुक्ति का रास्ता भी संघर्षों से भरा होगा।

अफीम की इस गैरकानूनी खेती एवं तस्करी में लिप्त लोग, संगठन एवं रास्ते अदृश्य नहीं हैं। बड़ी आसानी से उन्हें चिन्हित कर समाप्त किया जा सकता है। विश्व स्तर पर ऐसे कानूनों एवं अन्य उपायों की कमी नहीं है जिससे इस संघर्ष में सहयोग प्राप्त किया जा सके। संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में संस्थागत कानूनी ढांचा उपलब्ध है जिससे विभिन्न आतंकवादियों एवं उनके संगठनों की आय के स्रोतों, मात्रा, हथियारों की खरीद फरोख्त पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। वर्तमान में काबुल में एक दोस्ताना सरकार तथा तालिबान के कम होते प्रभाव के कारण अफीम के विरूद्ध प्रयासों में सफलता मिलने की उम्मीद बढ़ गयी है। इन प्रयासों का केन्द्र बिन्दु अफगानी किसान होना चाहिए जिन्हें बेहतर सुविधाएं, सिचाई के साधन तथा कृषि उपज के विपणन की सुविधाएं दी जानी चाहिए। उन्हें अफीम के स्थान पर उनकी परम्परागत अन्य उपजों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अफगानिस्तान की इस समस्या के समाधान का रास्ता अफीम की खेती के विनाश एवं किसानों को दूसरी फसलों के लिए प्रोत्साहित करने से ही हो पायेगा। इसके साथ ही अफगानी सरकार को अपनी संस्थाओं, कानूनी प्रक्रियाओं एवं कानूनी अभिकरणों, न्याय व्यवस्था, जन शिक्षा आदि की ओर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। अफगानिस्तान में अफीम की खेती से मुक्ति भारत एवं दक्षिण एशिया के देशों में आतंकवाद से मुक्ति एवं शांति स्थापना के लिए अति आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. Tim Galden, 'Is war against terrorism in Afganistan a war against drugs', The New York Times, 25.11.2001.
2. Ibid.
3. World Drug Report 2009, United nations office on drugs & crime. (UNODC), p.1
4. S. Taylor Wickenden, Global Research, 01.07.2015, p. 2
5. World Drug Report-2014, United nations office on drugs & crime. (UNODC), p.1
6. Robert Draper, 'Opium wars', national geographic, feb. 2011.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

किन्नरों की जीवन पद्धति एवं धार्मिक विश्वास

❑ मिथिलेश कुमार
❖ प्रोफेसर निरंकार प्रसाद श्रीवास्तव

किसी समाज के सदस्यों के जीने के तरीके को उनकी जीवन शैली के रूप में जाना जाता है। समाज- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग आदि के आधार पर विभाजित रहता है। उसी तरह जीवनशैली में भी उक्त आधारों पर विभाजन देखा जाता है। प्रत्येक समाज अपनी परम्पराओं, प्रथाओं, मूल्यों, आदर्शो के अनुरूप निर्देशित होता है और यही उस समाज के लोगों की पहचान होती है। किन्नर समुदाय अपनी परम्पराओं और प्रथाओं से इतने जुड़े रहते हैं कि उनमें परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। समाज की जीवनपद्धति का किन्नर समुदाय की जीवनपद्धति से कोई ताल-मेल नहीं होता है। किन्नर समुदाय अपने नृत्य-गायन व तालियों से अपने समुदाय की अस्मिता को व्यक्त करते रहते हैं। किन्नर समुदाय वर्तमान में जीता है। अपने भविष्य में सुधारात्मक वृत्तियों को अपनाने को नहीं सोचता है। उनका पुरूष शरीर होते हुए भी वे स्त्री परिधानों का वरण करते हैं। नाच-गाने व तालियों के बीच अपनी शारीरिक अक्षमताओं को भुलाये रहते हैं। अपनों के घनिष्ठ सम्बन्ध और सम्पर्क ही उनके जीवन का संबल बनता है। हर सुबह उठकर अपने को नृत्य-गायन के लिए तैयार करना, दिन भर स्थान-स्थान टोलियों में भटकते रहना, और देर शाम को अपने गुरू निवास पर आकर भोजन आदि बनाना तथा रात्रि में सोते समय अपनी अक्षमताओं और वेदनाओं की टीस लिए हुए आपस में बात करते-करते सो जाना। उत्तर भारत और दक्षिण भारत के किन्नरों के रीति-रिवाजों में प्रायः अन्तर देखा जाता है। इसके बावजूद भी उनका प्रान्तीय और अखिल भारतीय संगठन सजीव बना रहता है।

> मानव के रूप में जन्म लेने एवं समाज के अंग होने के बावजूद किन्नरों को मुनष्य की भांति नहीं समझा जाता, बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता, कोई व्यवसायी उन्हें नौकरी नहीं देता, कोई उनसे मित्रता तो क्या बात करना भी पसंद नहीं करता, उन्हें हेय समझा जाता है, वे समाज की प्रताड़ना के शिकार हैं तथा अभिशप्त जीने को विवश हैं। उन्हीं किन्नरों की जीवन पद्धति पर प्रकाश डालता है प्रस्तुत लेख।

किन्नरों की बजती हुई तालियॉ विभिन्न प्रकार के सांकेतिक अर्थ को अपने आप में छिपाये रहती हैं। इनके तालियों के बजाने का ढंग, सामान्य लोगों से बिल्कुल अलग होता है। ये पूरी उँगलियाँ फैलाकर दोनों हथेलियों की गद्दियों से तीव्र आवाज निकालते हैं। तालियों की संख्याएं विभिन्न अर्थो का संकेत करती हैं, जिसका रहस्य उन्ही तक ही सीमित रहता है। उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के प्रदेशों के ताली संकेतों में भिन्नता देखी जाती है। **किन्नरों** के नृत्य और गायन अपने ही ढंग के होते हैं। किसी कार्यक्रम में सभी किन्नर एक साथ नही नाचते हैं बल्कि बारी-बारी से नाचते हैं। एक नाचेगा शेष तालियॉ बजायेगें और ढोलक पर थाप देगें। इनके ढ़ोलक से किसी लय व गीत की ध्वनि नही निकलती है अर्थात वह ढ़ोलक पीटते हैं कि उनके लिए संगीत मृत हो गयी है। अपने जीवन के प्रति किन्नरों के दृष्टिकोण वेदनापूर्ण, विवशतापूर्ण, उपेक्षित जीवन तथा अलगावपूर्ण होता है वे अपनी परम्परा के अनुसार अपना सारा आयोजन गोपनीय रखते हैं। उदाहरणार्थ- किन्नरों के शव व दाह संस्कार तथा उनके गद्दीनशीन के बारे में समाज के लोग नही जान पाते हैं।

किन्नरों का धार्मिक विश्वास किसी एक धर्म के प्रति समर्पित न होकर 'सर्वधर्मभाव' वाला होता है। वे हिन्दू और मुस्लिम धर्मो के त्योहारों और उनके आयोजनों में समान रूप से सम्मिलित होते हैं। इनकी एक मात्र अपनी अराध्य देवी 'बहुचरामाता' है, जिनका मन्दिर भारतवर्ष के गुजरात राज्य के अहमदाबाद नगर में स्थित है। प्रातः उठकर अपनी आराध्य देवी 'बहुचरामाता' को भजन के रूप में स्मरण करते हैं। किन्नरों के लिए यह जरूरी है कि अपनी दाहिनी भुजा या कमर में काला धागा बॉधें। इसका मूल उद्देश्य यह होता है कि कोई अदृश्य शक्ति उन्हें नुकसान न पहुँचा सके। किन्नरों को किसी बीमारी आदि से ग्रसित होने पर वे वैद्य या डाक्टरों के यहॉ अपनी चिकित्सा नही करवाते हैं। ये अपने बीमारियों की

❑ शोध अध्येता समाजशास्त्र, डी०ए०वी० (पी०जी०) कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)
❖ पूर्व-प्राचार्य, डी०ए०वी० (पी०जी०) कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

चिकित्सा झॉड़-फूँक तन्त्र-मत्र, टोना-टोटका पर विश्वास करके करते हैं। अपने गुरू से ही झाड़-फूँक करा लेते हैं और 'बहुचरामाता' को चढ़ाये हुए प्रसाद को दवा के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। सभ्य-समाज के धार्मिक विश्वास से विल्कुल अलग किन्नर समुदाय के धार्मिक विश्वास होते हैं। सभ्य-समाज में जिन क्रियाओं को अशुभ और अपशकुन माना जाता है वह सभी क्रियाएं किन्नर समुदाय में शुभ माना जाता है। उदाहरणार्थ- यात्रा के समय बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, छींक देना, छिपकली शरीर के अंगो पर गिर जाना, खाली बरतन रखा रह जाना, जहॉ सभ्य समाज के लिए अशुभ संकेत होते हैं वही किन्नरों के लिए शुभ माने जाते हैं। जिन स्थानों पर छिपकली दिखायी पड़ जाय उसको वे शुभ मानते हैं। उल्लू बोलने को किन्नर अच्छा मानते हैं। किन्नर समाज के इन सभी क्रियाकलापों से प्रतीत होता है कि वे आज भी आदिम प्रवृतियों से जुड़े हुए है। ऐसा माना जाता है कि किन्नरों के दुवाओं का असर अधिक होता है। ऐसा विश्वास पाया जाता है कि विशेषकर पूर्वी उ०प्र० के गॉवों में प्रातः उनका मुँह देखना शुभ माना जाता है। नवविवाहिता बधू पर यदि किन्नरों की छाया पड़ जाये तो शीघ्र ही गर्भ धारण कर लेती हैं।

शोध प्रारूप : किन्नरों से संबंधित प्रस्तुत अध्ययन उ.प्र. के आजमगढ़ तथा गोरखपुर मण्डल पर आधारित है। आजमगढ़ मण्डल के तीन तथा गोरखपुर मण्डल के चार जनपदों में उपलब्ध समस्त ३०० किन्नरों का चयन करके साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से आंकड़ों का संकलन किया गया।

उपलब्धियां : शोधकर्ता ने किन्नरों के प्रकारों के बारे में जानने का प्रयास किया, जिसका विवरण निम्नलिखित सारिणियों में दिया जा रहा है। सारिणी १ से ज्ञात होता है कि ७१.३३ प्रतिशत किन्नर जन्मजात पाये गये, जबकि २८.६७ प्रतिशत बन्ध्याकरण के द्वारा बनाये गये थे। बनाये गये किन्नरों के बारे में खैराती लाल भोला जो अखिल भारतीय किन्नर समुदाय के अध्यक्ष थे, ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉधी को एक पत्र लिखकर बताया था कि किन्नर गुरूओं द्वारा अपनी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए इच्छित नवयुवकों को अधिक संख्या में किन्नर बनाया जा रहा है।

सारिणी १

किन्नरों के प्रकार

प्रकार	संख्या	प्रतिशत
जन्मजात	२१४	७१.३३
बनाये गये (बन्ध्याकरण द्वारा)	०८६	२८.६७
योग	३००	१००

सारिणी २ से स्पष्ठ होता है कि किन्नर समुदाय में प्रवेश की क्या विधि है। इसमें दो विधियों का उल्लेख किया गया है। ८६. ६७ प्रतिशत किन्नर उत्तरदाताओं का यह कहना था कि अल्पायु में माता-पिता लोक-लाज के भय से स्वतः उन्हें किन्नर समुदाय को दे दिया था। केवल १०.३३ प्रतिशत किन्नर उत्तरदाताओं का कहना रहा कि लिंगविकृति बच्चों को उनके समुदाय के लोग उनके माता-पिता के घर से ही उठा ले गये।

सारिणी २

किन्नर समुदाय में प्रवेश विधि

विधि	संख्या	प्रतिशत
अल्पायु में माता-पिता द्वारा (स्वतः) दे देना	२६६	८६.६७
किन्नर समुदाय को ज्ञात होने पर घर से ही उठा ले जाना	३१	१०.३३
योग-	३००	१००

शोधकर्ता ने किन्नर उत्तरदाताओं से प्रथम बार किन्नर समुदाय में सम्मिलित होने पर उक्त समुदाय की क्या प्रतिक्रिया थी, का भी अध्ययन किया। सारिणी ३ से ज्ञात होता है कि ९८.६७ प्रतिशत किन्नर उत्तरदाताओं ने बताया कि नवआगन्तुक के रूप में उनका स्वागत किया गया। सबसे कम प्रतिशत १. ३३ का कहना है कि इस सम्बन्ध में उन्हें कुछ स्मरण नहीं है अर्थात ज्ञात नहीं है।

सारिणी ३

किन्नर समुदाय में सम्मिलित होने पर प्रतिक्रिया

प्रतिक्रिया	संख्या	प्रतिशत
स्वागत	२९६	९८.६७
तिरस्कार (ज्ञात नही)	०४	०१.३३
योग	३००	१००

सारिणी ४ गुरू-शिष्य सम्बन्ध एवं अधिकारों से जुड़ी हुई है। गुरू शिष्यों पर पुत्र-पुत्री के समान व्यवहार करते हैं। गुरू का शिष्यों पर पूर्ण अधिकार व नियन्त्रण होता है जबकि शिष्यों का केवल कर्तव्य। गुरू द्वारा अपने विशेषज्ञों से उन्हें महिलाओं के कपड़े पहनने, नाचने-गाने व ताली बजाने के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। उपर्युक्त तीन बिन्दुओं पर उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया सकारात्मक रही।

सारिणी ४
गुरू-शिष्य सम्बन्ध/अधिकार

सम्बन्ध/अधिकार	संख्या	प्रतिशत
पुत्र-पुत्री समान व्यवहार	३००	१००.००
गुरू का शिष्यों पर अधिकार	३००	१००.००
गुरू द्वारा अपने विशेषज्ञों से महिलाओं के कपड़े पहनने व नाचने-गाने का प्रशिक्षण प्रदान करना	३००	१००.००
योग	६००	१००

सारिणी ५ शिष्यों का गुरू के प्रति व्यवहार के स्वरूप को प्रगट करता है। ५२.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि अपने गुरू का वे लोग सम्मान करते हैं। ३३.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना था कि गुरू के कहने पर विश्वास करते हैं। १३.६६ प्रतिशत किन्नरों ने कहा कि वे गुरू के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं। किन्नर गुरू के अनुशासन सामान्य की अपेक्षा कठोर ६७.०० प्रतिशत पाया गया।

सारिणी ५
गुरू के प्रति व्यवहार के स्वरूप

व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
विश्वास	१०१	३३.६७
सम्मान	१५८	५२.६७
श्रद्धा	०४१	१३.६६
योग	३००	१००

सारिणी ६ किन्नर समुदाय में अनुशासनहीनता पर दंड के स्वरूप को स्पष्ट करता है। ८३.०० प्रतिशत किन्नर उत्तरदाताओं का कहना था कि अनुशासनहीनता पर गुरू द्वारा अर्थदण्ड दिया जाता है। ०७.३३ प्रतिशत किन्नरों का कहना था अनुशासनहीनता पर बाल काट दिये जाते हैं, जबकि ०६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि कड़े दण्ड के रूप में उन्हे किन्नर समूह से बहिष्कृत कर दिया जाता है। किन्नर समुदाय के लोग भाड़े के पक्के मकान में रहते हैं। इनका निवास नगर के सीमा पर हुआ करता है। मकान गुरू के नाम से ही होता है। वही (गुरू) मकान का किराया, बिजली का बिल, गैस के बिल आदि देता है।

सारिणी ६
अनुशासनहीनता पर दण्ड के स्वरूप

दण्ड स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
अर्थ दण्ड	२४६	८३.००
बाल काट देना	२२	०७.३३
बिरादरी बहिस्कार	२६	०६.६७
योग	३००	१००

६५.६७ प्रतिशत किन्नर समुदाय के लोगों ने बताया कि हम लोग शाकाहारी और मांसाहारी दोनो प्रकार के भोजन करते हैं। किन्नरों के अन्तःसमूह के आपसी सम्बन्ध ८७.३३ प्रतिशत सौहार्दपूर्ण पाया गया। इनके अन्तःसमूह के छोटे-छोटे विवाद समूह के गुरू, बड़े विवाद किन्नर पंचायतों के द्वारा सुलझाये जाते हैं। जहाँ ६४.३३ प्रतिशत ये पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास, ६७.०० प्रतिशत कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते देखे गये, वही 'बहुचरामाता' के अस्तित्व में शत्-प्रतिशत विश्वास इनमें पाया गया है।

किन्नरों की मृत्यु अन्त्येष्टि विधि आदि के बारे में सभ्य समाज को कोई जानकारी नही हो पाती है। किन्नर की मृत्यु होने पर रूदन और विलाप इनके समूह के द्वारा करते नहीं देखा गया लेकिन उनके मृत्यु के तीसवें या चालिसवें दिन लोगों का भण्डारा करते हैं। गुरू की मृत्यु पर ये विधवा के रूप में ४० दिन तक शोक मनाकर घर से बाहर नही जाते हैं।

सभ्य समाज से अलग किन्नरों की जीवन-शैली, जीवनपद्धति एवं धार्मिक विश्वास बहुत अलग है, दोनो में कोई मेल नही दिखायी देता है। किन्नरों के जीवनपद्धति बहुत से क्रिया-कलाप अब भी रहस्य के गर्त में है।

सन्दर्भ

१. शर्मा सतीश कुमार, 'यूनक्सः पास्ट एण्ड प्रजेन्ट', द इस्टर्न, एन्थ्रोपोलाजिस्ट वाल्यूम- ३७ ।
२. शर्मा सतीश कुमार, 'हिजड़ाज : द लेवेल्ड डिविएन्ट्स ज्ञान', पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली २०००।
३. सिंह गोविन्द, 'हिजड़ो का संसार', दिल्ली प्रकाशन।
४. नन्दा सेरिना, 'द हिजड़ाज आफ इण्डिया-कल्चरल एण्ड इण्डिविजुअल डाइमेन्शन्स आफ इन्स्टीचुअलाइज्ड थर्ड जेण्डर रोल', होमोसेक्सुयल्टी, वाल्यूम २ (३-४) पृ. ३५, १९८५
५. भारद्वाज प्रवेश, 'किन्नर-समुदाय प्रगति की ओर', भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी-२००२
६. माधव नीरजा, 'यमदीप' उपन्यास, प्रकाशन वर्ष २००२
७. भीष्म महेन्द्र, 'किन्नर कथा' उपन्यास, प्रकाशन वर्ष २०११
८. भुराड़िया निर्मला, 'गुलाम मंडी' उपन्यास प्रकाशन वर्ष २०१०
९. प्रसाद निरंकार, 'किन्नरों का रहस्यमयी संसार-एक, समाजवैज्ञानिक अध्ययन', शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद वर्ष २०१०

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

जनसंख्या के घनत्व प्रतिरूप – विकासखण्ड टुण्डला का भौगोलिक अध्ययन

❑ **डॉ० संजीव कुमार**

धरातल के सबसे महत्वपूर्ण दृश्य मानवीय संसाधन के विभिन्न पक्षों के प्रतिरूपों का सामयिक एवं स्थानिक परिवर्तन है। इस सन्दर्भ में अन्य महत्वपूर्ण पक्ष आकारिकीय, सामुदायिक, भू-आकृतिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से सम्बन्धित हैं जो जनसंख्या के सामयिक एवं स्थानिक ढांचे की परिवर्तनीयता के विषय हैं।[1]

इस प्रकार जनसंख्या के विभिन्न पक्ष किसी भी क्षेत्र, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को निर्धारित ही नहीं करते, बल्कि स्वयं प्रभावित भी होते हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की जनसंख्या किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या समूहों के बहुविधि तथा जटिल प्रतिरूपों का प्रतिनिधित्व करती है। जनसमूह कभी भी स्थिर नहीं, वरन् सदैव विकासमान रहा है। इस प्रकार जनसंख्या का विकास कुल संख्यात्मक परिवर्तन को ही नहीं बल्कि किसी भी क्षेत्र के ऐतिहासिक तथा सामाजिक विकास की स्थिति के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करता है।[2]

जनसंख्या के विभिन्न पक्ष किसी भी क्षेत्र, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को निर्धारित ही नहीं करते, बल्कि स्वयं प्रभावित भी होते हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की जनसंख्या किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या समूहों के बहुविधि तथा जटिल प्रतिरूपों का प्रतिनिधित्व करती है। जनसमूह कभी भी स्थिर नहीं, वरन् सदैव विकासमान रहा है। इस प्रकार जनसंख्या का विकास कुल संख्यात्मक परिवर्तन को ही नहीं बल्कि किसी भी क्षेत्र के ऐतिहासिक तथा सामाजिक विकास की स्थिति के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत उ.प्र. के फिरोजाबाद जनपद के टुण्डला विकासक्षेत्र में जनसंख्या घनत्व का विश्लेषण आंकिक, कृषि, ग्रामीण, नगरीय एवं पोषक घनत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र परिचय : टूण्डला विकास खण्ड (जनपद-फिरोजाबाद) भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित उत्तर प्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में २७°५' उत्तरी अक्षॉश से लेकर २७°१९' उत्तरी अक्षॉश तक तथा ७८°१५' पूर्वी देशान्तर से ७८°२१' पूर्वी देशान्तर तक २५६.६६ वर्ग किमी. क्षेत्र पर विस्तृत है। विकास खण्ड में ६ न्याय पंचायतें-टूण्डला खास, शेखूपुर राजमल, कोटकी, देवखेड़ा, जारखी, छिकाऊ, नगला बलिया, ग्बारई न० सिंगी, तथा चुल्हावली है, जिन्हें वर्तमान अध्ययन में आधारभूत इकाई के रूप में ग्रहण किया गया है। इस विकास खण्ड के कुल ७६ आबाद ग्राम अधिवास तथा ०३ गैर आबाद ग्रामों के अधिवासों में निवास करने वाली २०५७५६ जनसंख्या के द्वारा अधिवासित है जो वर्ष-२०११ की जनगणना के अनुसार अंकित किये गये हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध प्रपत्र में व्यवहारिक, क्रमवद्ध, प्रादेशिक एवं सैद्धान्तिक तथा गणितीय नियम अपनाये गये हैं। साथ ही जनसंख्या की संरचनात्मक विशेषताओं और विभिन्न पक्षों को अध्ययन के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। जनगणना वर्ष-२००१ व २०११ को आधार मानकर तार्किक विश्लेषण किया गया है।

शोध पत्र में सांख्यिकीय पत्रिका, भू-आकृतिक मानचित्र, सामाजिक-आर्थिक समीक्षा तथा विभिन्न सरकारी विभागों से व्यक्तिगत प्रश्नावली व निजी आंकलन से सूचनायें प्राप्त की गयी हैं। संकल्पनाओं तथा सांख्यिकीय गणितीय मानचित्रात्मक एवं रेखाचित्र विधियों का प्रयोग किया गया है जनसंख्या वृद्धि दर, साक्षरता, जातीय संरचना, धार्मिक संरचना तथा कार्यशील जनसंख्या के सामयिक प्रतिरूपों को कोटि गुणांक विधि, माध्य एवं विचलन विधि को अपनाया गया है तथा क्षेत्रीय प्रतिरूपों को दर्शाने के लिए मानचित्रों का प्रयोग किया गया है।

टूण्डला विकास खण्ड में जातिगत संरचना के अध्ययन के लिए सामाजिक रूप से दलित तथा आर्थिक रूप से निर्धन वर्ग के प्रतिशत को क्षेत्रीय विश्लेषण का उद्देश्यपरक आधार बनाया गया है, क्योंकि यह वर्ग की नियोजन की प्राथमिकता को इंगित करता है। वास्तव में जातिगत संरचना की दृष्टि से अनुसूचित जाति एवं जनजाति विभिन्न प्रदेशों में आर्थिक एवं सामाजिक वृद्धि से वंचित एवं शोषित रहे हैं। साक्षरता की विशेष रूप से इस वर्ग की स्त्रियों के मध्य शायद ही कोई प्रासंगिकता हो, उनके लिए जीवन की गुजर बसर करना ही सर्वोच्य प्राथमिकता है।[3]

इन जातियों में अनेकों जनाकिकीय विकास के अवरोधक

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए० के० (पी० जी०) कालेज, शिकोहाबाद (उ०प्र०)**

कारकों के रूप में सामाजिक-आर्थिक एवं अन्य मानवीय कारक प्रचलित हैं जैसे-परस्पर भाई चारा एवं सहिष्णुता का अभाव, शिक्षा का न्यून स्तर, वैचारिकता के विकास की कमी, पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास, स्त्री शिक्षा एवं मूल्यों का अभाव, भू-स्वामित्व तथा सामाजिक अस्तित्व प्रश्न गत, बाल विवाह, इसके दृष्टिगत इस वर्ग का क्षेत्रीय प्रतिरूप परम आवश्यक है जो टूण्डला विकास खण्ड के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सकता है।

जनसंख्या वितरण एवं घनत्व : जनसंख्या वितरण एवं जनसंख्या घनत्व दो परस्पर सम्बन्धित संकल्पनायें हैं लेकिन परस्पर सम्बन्धों के आधार पर दोनों का ही एक साथ अध्ययन, युक्तिसंगत समझा जाता रहा है, जिससे जनसंख्या के क्षेत्रीय परिवर्तन, विषमताओं तथा समंगताओं तीनों के परिप्रेक्ष्य में कारण एवं परिणाम के साथ अध्ययन किया जा सकता है।

जनसंख्या वितरण न ही सरल प्रतिरूप में मिलते हैं न ही इसके वितरण स्पष्टीकरण को ढूढ़ पाना इतना आसान कार्य रह गया है। अब जनसंख्या वितरण पहले से बहुत अधिक क्षेत्रीय विस्तार लिए हुए हैं और साथ ही राजनीतिक और प्रशासनिक इकाइयों की संख्या भी बढ़ गयी है। निश्चित ही जनसंख्या वितरण में अधिक बल स्थिगत प्रसार तथा समुदाय पद दिया जाता है तथा यह भी देखने का प्रयास किया जाता है कि जनसंख्या किस क्षेत्र विशेष में संकेन्द्रित हो रही है। इस दृष्टि से जनसंख्या वितरण को बिन्दु विधि के द्वारा दर्शाना सर्वोपयुक्त समझा जाता है।

टूण्डला विकास खण्ड में जनसंख्या का वितरण वर्ष-२०११ की जनसंख्या के आधार पर न्याय पंचायतवार प्रस्तुत किया गया है। जनसंख्या घनत्व किसी भी क्षेत्र या प्रदेश के जनसंख्या धरातल अनुपात को प्रस्तुत करने की महत्वपूर्ण विधि है और दूसरे शब्दों में जनसंख्या के आधिक्य की स्थिति को क्षेत्रफल अथवा अन्य जीवनोपयोगी आर्थिक संसाधनों के पारस्परिक अनुपात के रूप में जाना जा सकता है।

यह किसी भी क्षेत्र के वर्तमान तथा सम्भावित जनाधार, जनाधिक्य तथा न्यून जनसंख्या के निर्धारण तथा क्षेत्रीय तुलना के लिए मापदण्ड बन गया है। जनसंख्या घनत्व किसी भी क्षेत्र की सम्भावनाओं में तुलनात्मक विश्लेषण की दृष्टि से वृद्धि सापेक्ष होता है। ऐसी किसी भी संभावना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय इकाईयों में वृद्धि स्वरूप है तो उन इकाईयों के घनत्व में भी समानुपातिक रूप में वृद्धि होगी किन्तु जनसंख्या वृद्धि की असमानता विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न घनत्व प्रतिरूपों में परिवर्तन करती है, जो जनसंख्या के पुनः वितरण के रूप में प्रतिरूपों का सूचक है।[४]

जनसंख्या घनत्व को विभिन्न विद्वानों द्वारा जनसंख्या एवं भूमि अनुपात को प्रदर्शित करने के लिए सर्वाधिक प्रयोग किया गया है क्योंकि यह एक सरल और सुगम विधि है। जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेषण भौतिक और सांस्कृतिक तत्वों के रूप में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न भौतिक कारकों के जलवायु स्तर, स्वास्थ्य, मिट्टी, शक्ति संसाधन, खनिज सम्पदा, क्षेत्रीय गम्यता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटक आदि भी जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। जनसंख्या के किसी भी क्षेत्र में घनत्व तथा वितरण तथा युद्ध प्रजातियॉ संहार, जनसंख्या का बल पूर्वक स्थानान्तरित और पुनः स्थापन आदि सांस्कृतिक आपदाएँ हैं।[५]

टूण्डला विकास खण्ड में जनसंख्या घनत्व को निम्नवत् विभिन्न सूत्रों के माध्यम से आंकलित किया गया है जिसे महत्व की दृष्टि से आंकिक, ग्रामीण, नगरीय, कृषि घनत्व एवं पोषक घनत्वों के रूप में स्वीकार किया जाता है।

१. आंकिक या गणितीय घनत्व : किसी भी क्षेत्र की कुल जनसंख्या को उसके क्षेत्रफल से विभाजित करके प्रति इकाई घनत्व की गणना निम्नवत् की जाती है।

$$\text{आंकिक घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

इसके आधार पर विकास खण्ड टूण्डला के न्याय पंचायतवार प्रतिरूप तालिका-१ द्वारा प्रदर्शित है।

तालिका-१ :

टूण्डला विकास खण्ड में न्याय पंचायतवार आंकिक घनत्व (प्रतिशत में) वर्ष-२०११

घनत्व वर्ग	न्याय पंचायत संख्या	प्रतिशत
४५० से कम	३	३३.३३
४५०-५००	१	११.१२
५००-५५०	१	११.११
५५०-६००	१	११.११
६०० से अधिक	३	३३.३३
विकास खण्ड योग	६	१००.००

स्रोत- व्यक्तिगत आंकलन वर्ष-२०१०-११

२. कृषि घनत्व : इस घनत्व का उद्देश्य प्रति इकाई क्षेत्र पर निर्भर कृषिगत जनसंख्या का अनुपात प्रदर्शित करना है-

कृषि घनत्व (Da) = AP/AC

Ap = कृषिगत जनसंख्या

Ac = कृषि क्षेत्र

टूण्डला विकास खण्ड जैसे कृषि प्रधान क्षेत्र के लिए इस प्रकार के घनत्व का आंकलन महत्वपूर्ण है जो तालिका-२ से स्पष्ट है।

तालिका-२ : टूण्डला विकास खण्ड में न्याय पंचायतवार विभिन्न घनत्व प्रतिरूप-२०११

न्याय पंचायत का नाम	आंकिक घनत्व	कृषि घनत्व	ग्रामीण घनत्व	पोषक घनत्व
टूण्डला खास	३४१	१४६	३४१	१०२
शेखूपुर राजमल	४०४	१४६	४०३	१००
कोटकी	३८४	१४८	४०६	११३
देवखेड़ा	४०२	१४६	४१६	११०
जारखी	३६८	१४२	४२७	११६
छिकाऊ	४०६	१६१	४०८	६८
नगला बलिया	४१८	१६४	४८०	१३२
ग्बारई न० सिंगी	५१०	१७०	४७२	१३६
चुल्हावली	४०७	१५८	३६८	११६
योग	४१६	१४२	४१२	१०८

स्रोत- जनपद-फिरोजाबाद, जनगणना अभिलेख-२०११ जनपद सांख्यिकीय पत्रिका वर्ष-२०१०-२०११ एवं व्यक्तिगत आंकलन वर्ष-२०१०-११

३. ग्रामीण घनत्व : इस घनत्व का आंकलन ग्रामीण जनसंख्या के ग्रामीण क्षेत्रफल के अनुपात के रूप में किया जाता है-

ग्रामीण घनत्व (Dr) = Rp/Ra

Rp = ग्रामीण जनसंख्या

Ra = ग्रामीण क्षेत्रफल

विकास खण्ड के न्याय पंचायतवार प्रतिरूप तालिका-२ के द्वारा प्रदर्शित है।

४. नगरीय घनत्व : इसके द्वारा किसी भी क्षेत्र में नगरीय जनसंख्या के नगरीय क्षेत्र में जमाव को स्पष्ट किया जाता है।

नगरीय घनत्व (Du) = Up/Ua

Up = नगरीय जनसंख्या

Ua = नगरीय क्षेत्रफल

५. पोषक घनत्व : प्रति इकाई से कितनी जनसंख्या खाद्यान्न प्राप्त करती है यह पोषक घनत्व के द्वारा ज्ञात किया जाता है।

पोषक घनत्व (Dn.) = Pa/Afc

Pa = कृषि जनसंख्या

Afc = खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल

टूण्डला विकास खण्ड में विभिन्न सूचकांकों के आधार पर उपर्युक्त सूत्रों के माध्यम से जनसंख्या के आंकिक, ग्रामीण नगरीय, कृषि तथा पोषक घनत्वों का आंकलन एवं प्रदर्शन तालिका-२ के द्वारा किया गया है। इस विकास खण्ड में ८२४ व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० घनत्व २०११ की जनगणना के अनुसार आंकलित किया गया है, न्याय पंचायत स्तर पर टूण्डला खास न्याय पंचायत में सर्वाधिक ८२१ व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर और छिकाऊ न्याय पंचायत में न्यूनतम ५२० व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० जनसंख्या घनत्व अंकित किया गया है जिसकी विवेचना निम्न प्रकार की जा सकती है-

न्यून जनसंख्या घनत्व के क्षेत्र : इस श्रेणी के अन्तर्गत ६५० से कम व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० के क्षेत्र समाहित किये गये है जिसमें उत्तर में छिकाऊ तथा विकास खण्ड के दक्षिण में नगला बलिया व दक्षिण-पूर्व में ग्बारई न० सिंगी एवं विकास खण्ड के मध्य में चुल्हावली न्याय पंचायतों को सम्मिलित किया गया है जो मानचित्र-१ से स्पष्ट है।

टूण्डला विकासखण्ड : जनसंख्या के घनत्व का प्रतिरूप (२०१०-२०११)

मध्यम जनसंख्या घनत्व के क्षेत्र : मध्यम जनसंख्या घनत्व के क्षेत्रों के अन्तर्गत शेखूपुर राजमल, कोटकी, देवखेड़ा तथा जारखीं न्याय पंचायतों को सम्मिलित किया गया है। ये न्याय पंचायतें उत्तर से पूर्व की ओर व उत्तर-पश्चिम में स्थित है।

तालिका-३ : टूण्डला विकास खण्ड में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व प्रतिरूप-२०११

न्याय पंचायत का नाम	जनसंख्या	व्यक्ति/वर्ग किमी०
टूण्डला खास	३१७२५	८२१
शेखूपुर, राजमल	३००६०	७७८
कोटकी	२४४५५	६३८
देवखेड़ा	२५६६४	७१२
जारखी	१५३०४	६७२
छिकाऊ	१४८४१	५२०
नगला बलिया	२२२१५	५६४
ग्बारई न० सिंगी	२३४६०	६२८
चुल्हावली	१७७१५	६१०
विकास खण्ड योग	२०५७५६	८२४

स्रोत- जनपद-फिरोजाबाद जनगणना अभिलेख वर्ष-२०११, जनपद सांख्यिकीय पत्रिका वर्ष-२०१०-२०११ एवं व्यक्तिगत आंकलन वर्ष-२०१०-११

उच्च जनसंख्या घनत्व के क्षेत्र : इस श्रेणी के अन्तर्गत ८०० व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० से अधिक के क्षेत्रों को समाहित किया गया है इसके अन्तर्गत विकास खण्ड की न्याय पंचायत टूण्डला खास ही सम्मिलित है जो विकास खण्ड के पश्चिम भाग में स्थिति है। जनसंख्या को न्याय पंचायत वार तालिका-३ व मानचित्र-१ के द्वारा स्पष्ट दर्शाया गया है।

सन्दर्भ

१. Singh, R.B.- Geography of Rural Development : The Indian Micro Level Experience', Radha Publications, New Delhi, 1986, P-40.

२. Goel, N.P., 'Population Geography of Background region of Rohil Khand', Radha Publications, New Delhi,1989, P-54.

३. चाँदना आर०सी०, 'जनसंख्या भूगोल', कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६८७, पृ० ४६.

४. Premi M.K. & Tyagi R.P., 'Distribution and Growth of Population', Mishra R.P. (ed.) Population Geography, N.C. Millan Co., New Delhi, P.-13.

५.. Zelinsky, W.A. 'Prologue to Population Geography' Oxford, New York, 1970, P-46-47.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्तीकरण

❑ डॉ० प्रभा शर्मा

भारतीय राजनीति में महिला वर्ग के प्रवेश तथा उन्हें मताधिकार प्रदान किये जाने का एक तथ्यपूर्ण राजनीतिक इतिहास है। इसी तथ्यपूर्ण इतिहास का विश्लेषण तथा विविध लोक सभा-विधान सभा चुनावों में महिलाओं की जीत का प्रतिशत आदि विषयों पर प्रस्तुत शोधपत्र में विस्तार से चर्चा की गई है। द्वितीयक तथ्यों पर आधारित शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता के परिणामस्वरूप होने वाले सशक्तीकरण को ज्ञात करना है जिससे इस क्षेत्र में आम महिलाएं भी अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए आगे आयें।

राजनीति के क्षेत्र में लम्बे समय से पुरुषों का वर्चस्व कायम रहा है। महिलाओं की स्थिति की विवेचना करने के लिए १६७१ में एक समिति गठित की गई थी। 'टुवड्‌र्स इक्वलिटी' शीर्षक से १६७४ में प्रकाशित इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि संस्थागत तौर पर सबसे बड़ी अल्पसंख्यक होने के बावजूद राजनीति पर महिलाओं का असर नाममात्र है। इस सम्बन्ध में समिति ने सुझाव दिया था कि इसका उपाय यही है कि हर राजनीतिक दल महिला उम्मीदारों का कोटा निर्धारित करे।[1] देश के राजनीतिक परिदृश्य में प्रारम्भ से ही महिलाओं की सहभागिता भले ही कम रही है परन्तु आज का सच यह है कि भारतीय महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास हो रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त से ही भारतीय महिलायें अपने राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील हैं। तुलनात्मक रूप से पश्चिम में महिलाओं ने अपने मताधिकार की प्राप्ति के लिए कठोर संघर्ष किया और इसको प्राप्त करने के लिए उन्हें ५०-६० वर्ष तक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी।

विश्व की दृष्टि से न्यूजीलैंड सर्वप्रथम देश है, जिसने १८६३ ई० में महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया। इसी प्रकार इंग्लैड तथा रूस ने १६१८ ई० में एवं संयुक्त राज्य अमेरिका ने १६२० ई० में महिलाओं को पुरुषों के समान मताधिकार का अवसर प्रदान किया।[2] भारतीय राजनीति में महिलाओं को प्रवेश हेतु समाज-सुधारकों एवं महान राष्ट्रवादी नेताओं का सहयोग प्राप्त हुआ। १६३० ई० में गाँधी जी के द्वितीय सविनय अवज्ञा आन्दोलन में १७,००० महिलाएं गिरफ्तार हुईं थीं।[3] प्रमुख राजनीति शास्त्री अर्पण वसु[4] के अनुसार यद्यपि सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने नगरीय मध्यम वर्ग की महिलाओं को विशेष रूप से आकृष्ट किया, परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण इसमें औद्योगिक एवं कृषक समुदाय का भी प्रतिनिधित्व रहा। इस प्रकार महात्मा गाँधी जी के अपने व्यक्तित्व की विशिष्ट प्रकृति एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अपनाये गये तरीकों का मर्यादित स्वरूप, भारतीय महिलाओं को राजनीति में प्रवेश तथा संलग्नता हेतु निश्चित रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं। बरमानी[5] के अनुसार, प्रजातांत्रिक तरीका राजनीतिक निर्णयों तक पहुँचने का वह संख्यात्मक प्रबन्ध है जो लोगों को अपने प्रतिनिधि खुद चुनकर अपने सामान्य हित प्राप्त करने का अवसर देता है। इस सम्बन्ध में भारत का राजनीतिक परिदृश्य विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों से भिन्न नहीं है। भारत में राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की हिस्सेदारी बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होती है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही होने वाले स्वदेशी आन्दोलन (१६०५) में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और एक दशक बाद सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतर पड़ीं। १६१७ में एनीबेसेंट कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्ष बनीं। वे कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष थीं। श्रीमती बेसेंट की अध्यक्षता में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर मांग की कि महिलाओं को भी पुरुषों के समान मत देने का अधिकार दिया जाये। उनकी ही प्रेरणा से १६१७ में श्रीमती मार्गरेट कजिंस ने मद्रास में वूमेन्स इंडिया ऐसोसियेशन की स्थापना की।[6] १६१७ में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड संवैधानिक सुधार आयोग के समक्ष एक प्रतिनिधि मण्डल मार्गरेट कजिंस के नेतृत्व में उपस्थित हुआ, जिसमें श्रीमती एनीबेसेंट, सरोजनी नायडू, हरावस टाटा, डोरोथी जीना काजादास तथा श्रीमती जोशी आदि शामिल थीं।[7]

इस प्रतिनिधिमण्डल ने महिला मताधिकार की मांग की। मांटेग्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन में महिलाओं के विषय में कोई संस्तुति नहीं हो सकी। अतः महिलाओं की एक विशेष समिति गठित की गई जिसमें श्रीमती एनीबेसेंट, सरोजनी नायडू, हरावस टाटा व मिथन टाटा शामिल थीं, ब्रिटेन गयी और

❑ एसोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ.प्र.)

भारत सरकार की संयुक्त समिति से साक्षात्कार किया। फलस्वरूप मान्टफोर्ड सुधार योजना के अनुसार यद्यपि ब्रिटिश संसद ने उस समय महिलाओं को मत देने का अधिकार तो नहीं दिया, किन्तु उसने प्रान्तीय विधान सभाओं को यह अधिकार दे दिया कि वे इस मामले पर विचार कर सकती हैं। परिणाम स्वरूप महिलाओं को चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त हुआ और सीमित रूप में मत देने का भी। ब्रिटिश औपनिवेशक साम्राज्यवाद की समाप्ति, सत्ता हस्तान्तरण के उपरान्त भारतीय महिलाओं का लोकतांत्रिक-प्रक्रियाओं से सम्बद्ध होना तथा विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर उन्हें बिठाया जाना सार्थक सिद्ध हुआ। १६३५ में भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत ६ लाख महिलाओं को मताधिकार का अवसर उपलब्ध हुआ। जबकि १६३७ के निर्वाचन सम्बन्धी आकड़े स्पष्ट करते हैं कि आठ महिलाएं सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से चुनी गयीं एवं ४२ सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों से चुनी गयीं। बाद में प्रान्तीय सरकार के गठन में ६ महिलाओं को मंत्री पद प्राप्त हुए।[८] हमारे देश में महिलाओं ने भले ही राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, लोक सभा में विपक्ष की नेता और लोक सभा अध्यक्ष पद के साथ अनेक राजनीतिक महत्वपूर्ण पद प्राप्त किये हैं किन्तु राजनीति में सहभागिता की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि संसद में ३३ प्रतिशत आरक्षण दिलाने के लिए लाया गया महिला आरक्षण विधेयक कुछ राजनीतिक पार्टियों के विरोधी रवैये के कारण लम्बित पड़ा है। इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि इसके पास होने से शहरी तथा उच्च वर्गीय महिलाओं का राजनीति में दबदबा हो जायेगा और निम्न वर्ग की ग्रामीण महिलाएं लाभान्वित नहीं होंगी। जबकि विधेयक में ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व मिल सके। इस प्रकार की बहाने बाजियों से महिलाओं को राजनीति में पिछले पायदान पर ढकेल दिया जाता है। अफसोस इस बात का होता है कि कोई भी राष्ट्रीय पार्टी १०-१५ प्रतिशत से अधिक महिलाओं को लोक सभा चुनाव लड़ने के लिए टिकट नहीं देती है। मतदान भी महिलाएं स्वेच्छा से नहीं कर पातीं, पुरुषों की राय के अनुसार उन्हें मतदान करना पड़ता है। संसद में मात्र कुछ महिलाओं का होना चितांजनक है क्योंकि जब महिलाओं की संख्या संसद में कम होगी तो वे महिलाओं के विकास, उत्थान और सशक्तीकरण की बात कैसे कर पायेंगी। संसद में महिलाओं की भागीदारी ही नहीं वरन् पूरी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के मामले में हम दुनिया के छोटे-छोटे देशों से भी पीछे हैं।

महिलाओं को समता का अधिकार दिलाने और घर से बाहर की दुनिया अपने नजरिये से देखने के उद्देश्य से १६५६ में त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था लागू की गयी। इस दिशा में ७३ वां व ७४ वां संविधान संशोधन अधिनियम १६६२ महिलाओं को समान राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक अधिकार प्रदान करने के साथ ग्रामीण शक्ति संरचना में नीति-निर्माण, निर्णय-निर्माण प्रक्रिया व क्रियान्वयन में उनकी भागीदारी हेतु पारित किया गया। अनुच्छेद-२४३-घ(३) के अनुसार प्रत्येक पंचायत के प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के एक तिहाई से कम स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और यह स्थान किसी भी पंचायत में अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुसार बांटे जाते हैं। १६८८ में राष्ट्रीय साक्षरता दिवस, २००१ में महिला सशक्तीकरण दिवस हम मनाते हैं। आज लगभग १० लाख महिलाएं पंच सरपंच हैं और ग्रामीण राजनीति को नये आयाम दे रही हैं। आज देश में पंचायतीराज व्यवस्था में ३३ प्रतिशत आरक्षण के साथ बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश और केरल में ५० प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है। इसलिए यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि महिलाएं केवल आरक्षण के कारण ही चुनी जाती हैं। त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था में आज भले ही महिलाएं आगे हैं किन्तु उनके अधिकारों की डोर पुरुषों के हाथों में ही है क्योंकि सभी ने इन दृश्यों में इस बात को देखा है कि शपथ लेते वक्त घूंघट में ग्राम प्रधान है जिसे ग्राम पंचायत के लोग जानते तक नहीं। आरक्षित सीट होने के कारण पति की प्रतिष्ठा की खातिर उन्हें मैदान में उतारा और निर्वाचित घोषित करवाया जाता है। सशक्तीकरण के नाम पर उनके हाथ खाली ही रहते हैं।

राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्तीकरण से सम्बन्धित अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष्य में किये गये हैं। कुछ प्रमुख अध्ययनों को ही यहाँ उद्धृत किया जा सकता है। शिप्रासेन[९] के अनुसार महिला राजनीतिज्ञ पुरुषों की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं करती हैं किन्तु उन्हें राजनीतिक पद प्राप्त करने के लिए पुरुष राजनीतिज्ञों की उपेक्षाओं का शिकार होना पड़ता है।

अन्नपूर्णा देवी[१०] ने उड़ीसा की राजनीति में महिलाओं की सहभागिता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में माना कि आयु, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय तथा आर्थिक स्थिति महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। देसाई तथा कृष्णराज[११] के अनुसार जाति और वर्ग भी महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करते हैं। अभिजन तथा राजनीतिक परिवार महिलाओं को राजनीति में

आसानी से प्रवेश करने को प्रोत्साहित करते हैं। नेमीसराय[१२] ने पाया कि शिक्षित महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा मतदान में कम भाग लेती हैं इसके लिए अनेक सामाजिक दशायें महत्वपूर्ण हैं। महीपाल[१३] का मानना है कि पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण लोगों विशेषकर निम्न वर्ग एवं महिलाओं में आत्मविश्वास जगाया है। ये ही लोग समाज का वह हिस्सा हैं जिसमें आत्मविश्वास और सहानुभूति की जागृति ग्रामीण पुननिर्माण हेतु अत्यन्त आवश्यक है। सिन्हा[१४] के अनुसार पंचायतों में महिलाओं की सहभागिता से उनकी विकास प्रक्रिया में वृद्धि होती है, उन्हें अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है। राय[१५] के अनुसार स्थानीय स्वशासन में महिला प्रतिनिधियों की अर्द्धसक्रियता एवं निष्क्रियता के कई कारण हैं। अशिक्षा, भूमि का स्वामित्व न होना, समाज एवं सत्ता का अपराधीकरण, आर्थिक स्वावलम्बन इत्यादि का न होना महिलाओं की सक्रियता को स्थानीय स्वशासन में रोकते हैं। राकेश शर्मा[१६] का मानना है कि कई महिला प्रतिनिधियों को खासकर कमजोर वर्ग की महिलाओं को अपने कृषि कार्य, बड़े परिवार की देखभाल तथा महिला को दोयम दर्जा प्राप्त होने से उनके कार्यों को स्वीकृति नहीं मिलती तथा जातिवादी व्यवस्था में सवर्ण वर्ग के सदस्य उनके साथ भेदभाव करते हैं। सेतिया[१७] के अनुसार, मध्यावधि समीक्षा रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि महिला प्रतिनिधि पंचायतों का बजट तैयार करने की जिम्मेदारी सफलतापूर्वक निभा रही हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता से सशक्तीकरण हुआ है उनमें आत्मविश्वास एवं शक्ति का संचार होता है तथा वे यह भी अनुभव करती हैं कि वे अपने साथ-साथ अपने समाज तथा राष्ट्र के लिए ऐसे कार्य कर सकती हैं जिनको करने का मौका उन्हें नहीं मिला है। वर्तमान में पुरुष प्रधान समाज यह भी समझ रहा है कि विकास कार्यों में महिलाओं की सहभागिता के बिना बांछित लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव नहीं है चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कोई भी क्षेत्र हो। अनेक बाधाओं के बावजूद शिवहरे[१८] के अनुसार यदि ''महिलाओं का राजनीति में सकारात्मक मूल्यांकन करना हो तो छिंदबाड़ा जिले की तिनसई पंचायत की अमोसा बाई और कोठिया पंचायत की हड़सो बाई को पैमाना बनाया जा सकता है जिन्होंने स्वयं का तो सशक्तीकरण किया ही, गाँव की तस्वीर बदलने की कोशिश की तथा अनेक सामाजिक बुराइयों यथा-घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, नशाखोरी और राजनीतिक भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाई है।''

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत जैसे देशों में यदि महिलाओं की भागीदारी इसी तरह से कम रही तो लैंगिक असंतुलन को पाटने में ५० वर्ष से अधिक लगेंगे। हालांकि महिलाएं मताधिकार का अधिक उपयोग कर रही हैं। एक सुखद पहलू यह भी है कि जहाँ पहली लोकसभा में महज २४ महिलाएं चुनकर आयीं थीं, वहीं १६ वीं लोकसभा में सबसे अधिक ६६ महिलाएं सफलता का परचम लहरा रही हैं।[१९] विभिन्न लोकसभा चुनावों में महिला उम्मीदवारों की जीत का प्रतिशत निम्न तालिका में प्रस्तुत है-

लोकसभा	महिला उम्मीदवार	विजयी उम्मीदवार	प्रतिशत
दूसरी	४५	२७	६०
तीसरी	७०	३५	५०
चौथी	६७	३०	४४.८
पाँचवीं	८६	२१	२४.४
छठी	७०	१९	२७.१
सातवीं	१४२	२८	१९.७
आठवीं	१६४	४७	२५.६
नौवीं	१९८	२७	१३.६
दसवीं	३२५	३७	११.४
ग्यारहवीं	५९९	४०	६.७
बारहवीं	२७४	४३	१५.७
तेरहवीं	२९६	५२	१७.६
चौदहवीं	३५५	४५	१२.६८
पन्द्रहवीं	५५६	५९	१०.४
सोलहवीं	-	६६	-

तालिका के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति बहुत सुखद नहीं है। हालांकि इस समय पश्चिम बंगााल, गुजरात और राजस्थान में मुख्यमंत्री पद पर महिलाएं ही विराजमान हैं। वर्ष २०१४ में फोर्ब्स पत्रिका[२०] में दुनिया की सबसे ताकतवर १०० महिलाओं की सूची में चार भारतीय अथवा भारतीय मूल की महिलाएं हैं। इस वर्ष पहली बार किसी विदेशी राष्ट्राध्यक्ष को गार्ड ऑफ ऑनर महिला विंग कमांडर के नेतृत्व में दिया गया।

किन्तु अन्त में हमें कहना पड़ता है कि आज हमारे देश की महिलाओं को, देश की राजनीति में प्रतिनिधित्व करने का उचित अवसर नहीं मिल पा रहा है। लोकतंत्र के ६६ वर्षों में हमारे देश का इतिहास महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को लेकर संतोषप्रद नहीं है। जब तक सम्पूर्ण महिला जगत में पूर्ण जागरुकता/चेतना का संचार नहीं होगा वे राजनीति में

अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज नहीं करा पायेंगी। हमारी (महिलाओं की) संख्या लगातार बढ़ रही है, साक्षरता दर भी वृद्धिमान है तो फिर राजनीतिक सहभागिता क्यों नहीं बढ़ती? सरकार को महिलाओं के लिए नीति-निर्धारण में पर्याप्त सहभागिता प्रदान करने हेतु लम्बित महिला आरक्षण बिल को शीघ्र पारित करना होगा। महिलाओं के प्रति सोच में बदलाव लाकर आम आदमी के साथ-साथ आम महिला की भी बात करनी होगी, महिलाओं को शिक्षित और जागरुक तो करना ही होगा तभी सही मायनों में उनका सशक्तीकरण हो सकेगा, तभी वे अपने अधिकारों की सुरक्षा करने में सक्षम होंगी।

सन्दर्भ

१. सारस्वत ऋतु : ''राजनीति में महिला नेतृत्व सम्भावनाओं की तलाश'', योजना, जनवरी २००६, पृ. ४३ .
२. कुमार मनीष, महिला सशक्तीकरण : दशा और दिशा, राजनीतिक सशक्तीकरण, मधुर बुक्स, कृष्णा नगर दिल्ली
३. वोहरा आशा रानी, औरत आज और कल, '' भारतीय स्त्री का मुक्ति संघर्ष'', कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली २००६, पृ. २३ .
४. वसु अर्पण एवं रे भारती, 'विमेन्स स्ट्रगल, ए हिस्ट्री ऑफ दि ऑल इण्डिया विमेन्स कान्फ्रेन्स १६२७-१६८०' मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली १६६०.
५. बरमानी आर. सी. : 'समकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों का परिचय', गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, २००१, पृ. ३१६ .
६. वोहरा आशा रानी : भारतीय नारी दशा दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १६८२, पृ. १३ .
७. वही, पृ. १४ .
८. वही, पृ. ३३ .
६. सेन शिप्रा, पोलिटिकल विमेन इन इण्डिया - ''एन एसिसिमेन्ट ऑफ हर स्टेटस एण्ड रोल'', शोध प्रबन्ध जे.एन.यू. १६७७ .
१०. देवी अन्नपूर्णा, ''विमेन पार्टीसिपेशन इन द स्टेट पॉलिटिक्स ऑफ ओडिसा - ए सोशियोलोजिकल एनालाइसिस'' शोध प्रबन्ध जे.एन.यू. १६८१ .
११. देसाई नीरा तथा एम. कृष्णा राज (मके) ''एक्शन फार चेन्ज इन विमेन एण्ड सोसाइटी इन इण्डिया'', अजन्ता पब्लिकेशन, दिल्ली, १६८७ .
१२. नेमीसराय, मोहनदास, 'राजनीति तथा महिलाएं', दैनिक जागरण ०४ नवम्बर १६६१ .
१३. महीपाल ग्रामीण पुनर्निर्माण में पंचायत की भूमिका, योजना, नई दिल्ली, जनवरी २००२ .
१४. सिन्हा अर्चना, 'पंचायतों के जरिये ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, दिसम्बर २००२, पृ. ०७ .
१५. राय, रामाज्ञा, 'बिहार में पंचायती राज एवं महिला भागीदारी', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, दिसम्बर २००२, पृ. २५ .
१६. शर्मा राकेश : 'पंचायती संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भूमिका,' कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, अगस्त २००६, पृ. १६ .
१७. सेतिया सुभाष, 'पंचायती राज एवं महिला सशक्तीकरण', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, अगस्त २००७, पृ. १६ .
१८. शिवहरे रोली 'पंचायतों में महिलाओं की सकारात्मक हिस्सेदारी', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, अगस्त २००६, पृ. २२ .
१६. 'हिन्दुस्तान' दैनिक समाचार पत्र : 'चुनावी तरक्की' ०८ मार्च २०१४, पृ. ११ .
२०. 'हिन्दुस्तान' दैनिक समाचार पत्र : 'अब रुकेंगी नहीं औरतें' ०८ मार्च २०१५, पृ. १२ तथा देखें wwwforbes.com .

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

बाल श्रम एवं नीतियाँ : समस्या एवं समाधान

❑ डा० मनीषा राव

हमारे देश में बालश्रम एक चिंतनीय एवं सर्वविदित समस्या है। जनसंख्या विस्फोट के कारण, भारत जैसे विशाल देश में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों में सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं का सामना करने हेतु बालश्रम इन परिवारों में सामान्य नियति बन गया है। वैश्वीकरण एवं निजीकरण के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हमारे देश में होने के कारण बालश्रम को बढ़ावा मिला है, जिसमें १४ वर्ष से कम उम्र के बालक अकुशल कार्य, कम दैनिक वेतन के साथ परिवार द्वारा नियोक्ता द्वारा लिये गये कर्ज के बदले में बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य में व्यस्त रहते हैं। कैलाश सत्यार्थी (नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत) के अनुसार बच्चों से उनके सपनों को छीन लेना एक गम्भीर अपराध है जिनके कारण यह बालक अशिक्षित असभ्य एवं असामाजिक, अपराधबोध लिये हुए स्तर को बनाते हैं जो हमारे देश के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिये एक काला धब्बा है।[1]

> हमारे देश में बालश्रम एक चिंतनीय एवं सर्वविदित समस्या है। जनसंख्या विस्फोट के कारण, भारत जैसे विशाल देश में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों में सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं का सामना करने हेतु बालश्रम इन परिवारों में सामान्य नियति बन गया है। वैश्वीकरण एवं निजीकरण के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हमारे देश में होने के कारण बालश्रम को बढ़ावा मिला है। प्रस्तुत लेख बाल श्रम समस्या तथा इसके समाधान की नीतियों एवं कार्यक्रमों के विश्लेषण का एक प्रयास है।

समस्या के कारण – भारतीय संविधान १९५० के अनुच्छेद २४ के अनुसार १४ वर्ष से कम आयु के बच्चे से संगठित अथवा असंगठित क्षेत्र में मजदूरी कराना, बालश्रम है जो कि आपराधिक श्रेणी में आता है। बालश्रम की सामाजिक एवं आर्थिक समस्या निम्न कारणों से होती हैं।

१. गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले माता-पिता दैनिक आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चों को प्रताड़ित कर पारिवारिक कार्यों हेतु भेजते हैं।

२. असंगठित श्रेत्र के कार्यों में बालश्रम बड़ी आसानी से पल्लवित होता है जिसमें सरकारी आंकड़े भी प्राप्त नहीं होते।

३. बालश्रमिक, गरीबी के कारण शिक्षा ग्रहण नहीं करते और न ही इनके परिवार इनको शिक्षा के लिए प्रेरित करते हैं।

४. बेरोजगार, गरीब व प्रवासी ग्रामीण परिवार शहरी क्षेत्रों में आकर अकुशल रोजगार करते हुए, शहरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने बच्चों को बालश्रम हेतु प्रेरित करते हैं।

५.गरीबी के साथ परिवार के अनियोजन के कारण अधिक पारिवारिक सदस्यों की दैनिक मूलभूत पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण यह बालश्रमिक आपराधिक प्रवृत्ति जैसे नशाखोरी, भीख मांगना, वैश्यावृत्ति, चोरी, लड़ाई झगड़ों की सहजता से ग्रहण कर लेते हैं।

वर्तमान में बालश्रम की गणनात्मक स्थिति – भारत सरकार द्वारा बालश्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, १९८६ के अंतर्गत, विगत पाँच वर्षों में ३४०० दोष सिद्धियां प्राप्त कर दंडित किया गया। वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार बालश्रमिक (५-१४ वर्ष) संख्या १.२६ करोड़ थी जो कि २००४-०५ में एन.एस.एस.ओ. द्वारा कराये गये सर्वेक्षण से ९०.७५ लाख रही। इसी के साथ २००९-१० के सर्वेक्षण में कामकाजी बालश्रमिकों की सर्वेक्षित संख्या ८९.८४ लाख और २०१३-१४ में यह संख्या ७५.९५ लाख रही जो कमी का रूझान दर्शाता है। अंर्तराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा वर्ष २०१४ में बालश्रम पर प्रकाशित विश्वत रिपोर्ट के अनुसार लैटिन अमरीका के देशों में बालश्रमिक अधिकतम प्रतिशत ५.१% जबकि भारत वर्ष में यह दर ५% प्रतिशत है।[2]

बालश्रम उन्मूलन में भारतीय केन्द्र सरकार के प्रयास एवं नीतियाँ – बालश्रम उन्मूलन हेतु कानूनी उपबन्धों सहित भारत सरकार द्वारा १९८७ की राष्ट्रीय बालश्रम नीति के अन्तर्गत इसको "संज्ञेय अपराध" की श्रेणी में रखा गया। इस नीति के कारण बालश्रम के जटिल मुद्दे को व्यापक, समग्र और एकीकृत नीति का स्वरूप प्रदान हुआ, जिसमें मुख्य निम्न

❑ विभागाध्यक्ष गृहविज्ञान, वी०आर०ए०एल० राजकीय महिला, महाविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

कारक सन्निहित हैं।

विद्यार्थी कार्य योजना

बच्चों के परिवारों के लाभार्थ सामान्य विकास कार्यक्रमों को संचालित करना।

बालश्रम अधिकता से संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में परियोजना आधारित कार्यक्रम संचालित करना।[३]

बालश्रम उन्मूलन हेतु प्रभावकारी वर्तमान प्रयास - केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से राष्ट्रीय बालश्रम उन्मूलन परियोजना (एन सी एल पी) द्वारा वर्तमान प्रयासों से नयी चेतना दी गयी है।[४,५,६]

१- सम्बन्ध - बालश्रम के लिए गरीबी और अशिक्षा को मुख्य कारण मानते हुए, भारत सरकार के श्रम और रोजगार मंत्रालय, मानव संसाधन विकास, महिला एवं बाल विकास, शहरी आवास, ग्रामीण उपशमन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, पंचायती राज संस्थाओं को मिलाकर ''कोर-ग्रुप'' स्थापित कर, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को एकीकृत कार्यक्रम प्रतिपादित किये जा रहे हैं।

२- एन.सी.एल.पी. कार्यक्रम को शिक्षा का अधिकार अधिनियम, २००६ से पुर्नसम्बद्धता प्रदान की गयी है।

३- ट्रैकिंग और अनुवीक्षण कार्यक्रम को पूर्ण सक्रियता प्रदान करते हुए निम्न प्रयास किये जा रहे हैं।

   - प्रत्येक बच्चें को ''माडल बाल प्रोफाइल कार्ड'' प्रदान करना।

   - प्राथमिक शिक्षा द्वारा स्कूली स्तर पर शिक्षक एवं अनुदेशकों द्वारा ५-८ वर्ष के प्रत्येक बच्चे की ट्रैकिंग की जाये।

   - प्रत्येक बच्चे की ट्रैकिंग और नामांकन की व्यवस्था दो वर्ष तक चलना चाहिए। प्रत्येक तिमाही पर आंकड़ों को अद्यतन किया जाये जिसके लिए पंचायती राज संस्थाओं का मान्यीकरण हो जिससे आंकड़ों की विश्वसनीयता और परिशुद्धता बनी रहे।

४- श्रम हेतु १४ वर्ष के बच्चों को प्रवास एवं अवैध व्यापार को तत्काल समाप्त करने में राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों में समन्वयन स्थापित किया जाये जिससे कि प्रवासी और अवैध रूप से लाए गए बालश्रमिकों की रोकथाम, बचाव, प्रत्यावर्तन, पुर्नवास के साथ उनको पुनः संगठित करने के समन्वयित प्रयास किये जा सकें।[७]

बालश्रम उन्मूलन एवं माननीय उच्चतम न्यायालय - भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी बालश्रम उन्मूलन को संज्ञान में रखते हुए केन्द्र सरकार को समय-समसय पर विभिन्न पहलुओं पर निर्णय एवं दिशानिर्देश दिये हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा घोषित ६५ प्रतिवंधित व्यवसायों में लगे बालश्रमिकों का पूर्ण एवं अधिकारिक सर्वेक्षण करना।

अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करने वाले नियोजकों द्वारा दण्डस्वरूप २०,०००/- प्रति बालश्रमिक मुआवजे का तत्काल भुगतान कराना।

जोखिम के कार्य व्यवसायों से हटाये गये बालश्रमिकों के परिवार के एक सदस्य को वैकल्पित कार्य प्रदान कर बालश्रमिक को ५,०००/- की राशि का भुगतान किया जाये।

काम से निकाले गये बालश्रमिक के परिवार को समग्र निधि के २५०००/- रूपये नियोजक द्वारा तथा ५०००/- रूपये पर राशि प्रदान न होने तक ब्याज का भुगतान किया जाये।

कार्यमुक्त बालश्रमिक को शिक्षा दिलाने के लिये उपयुक्त संस्था में भेजने का प्रयास किया जाये।

बालश्रम पुर्नवास-सह-कलयाण निधि का गठन किया जाये।

अनुवीक्षण के प्रयोजनार्थ समुचित सरकार के श्रम विभाग में एक अलग कक्ष का गठन किया जाये।

निम्न संवैधानिक उपवंध की अवहेलना, केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को न करने, यदि की जाये तो वैधानिक व्यवस्था माननीय उच्चतम न्यायालय में की जाये।[८]

संवैधानिक उपवंध

अनुच्छेद २१(क)- शिक्षा का आधार

अनुच्छेद २४- कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिबंध

अनुच्छेद २६- राज्यों द्वारा कारगर महिलाओं, पुरूषों का स्वास्थ्य और शक्ति, बालकों की कोमल आयु का दुरूप्योग न हो जिससे वे अमेल व्यवसाय अपनाने को बाध्य हों।

बालश्रम उन्मूलन में यूनीसैफ द्वारा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा की जा रही परियोजनायें निश्चित रूप से प्रसंशनीस कार्य का रही हैं जिनको यूनीसैफ के साथ जर्मनी एवं भारतीय सरकार द्वारा सहयोग प्राप्त है।[९,१०]

१. **एक्शन एंड इंडिया :** भारत वर्ष के मुख्य १२ शहरों में यह संस्था प्राथमिक शिक्षा से विमिक्त अवरोधित ५-१० वर्ष के बालकों को शिक्षित कर रही है।

२. **वटरफ्लाइज :** कल श्रमिक एवं रेहड़ी पर कार्य करने वाले बालकों को नई दिल्ली में शिक्षा प्रदान करने का कार्य।

३. **केयर इण्डिया :** देश के ११ राज्यों में गरीब अशिक्षित बालिकाओं को शिक्षित करने का कार्य।

चाइल्ड रिलीफ यू (क्राई) : गरीब, जरूरतमंद अशिक्षित एवं अपोषित बाल श्रमिकों के पूर्ण विकास के कार्यक्रमों का संचालन।

४. **सिनी आशा :** शहरी क्षेत्रों के असमाजिक बालकों का समाजीकरण, कुरीतियों से अलग कर मुख्य धारा में जोड़ने का कार्य विशेष रूप से बाल वैश्यावृत्ति को दूर करने का प्रयास।

५. **क्रिज (सेन्टर फार रूरल एड्यूकेशन एण्ड डबलपमेंट एक्शन) :** बनारस में कालीन उद्योग में लगे बालश्रमिकों का पुर्नवासन, शिक्षा एवं कुरीतियों को दूर करने का प्रयास।

६. **ग्लोबल मार्च अगेंस्ट चाइल्ड लेवर :** विश्व के १५० देशों में बालश्रम उन्मूलन पर सहयोगी संस्था।

७. **प्रयास :** देहली, बिहार, गुजरात में बालश्रमिक परियोजनाओं पर कार्य।

८. **लाम बालक ट्रस्ट :** नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर भिखारी बालकों के पुर्नवासन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर सहयोग।

९. **सेव द चिल्ड्रन (यू०के०) इन इण्डिया :** राजस्थान, बंगाल जम्मू कश्मीर में बालश्रम उन्मूलन योजना में सक्रिय सहभागिता।

१०. **एम०वेंकेटरम्मैया ट्रस्ट :** आंध्र प्रदेश में बालश्रम उन्मूलन एवं एकीकृत शिक्षा में सहयोग।

११. **वर्ल्ड विजन इण्डिया :** देश में बालश्रम, बाल वैश्यावृत्ति, बंधुआ बाल मजदूरी, उन्मूलन सम्बन्धी कार्यक्रमों का संयोजन।

निष्कर्ष : भारत देश असीम सम्भावनाओं वाले चंद देशों में से एक है जिस पर प्रकृति की अपार कृपा है। रत्नगर्भा, शस्य श्यामला भूमि, बड़ा वन क्षेत्र, विशाल भौगोलिक स्थिति और यहाँ के शांतिप्रिय निवासी, यह विकास यात्रा राष्ट्र में कई मील पत्थर स्थापित करती हुई लक्ष्य तक तभी पहुँचेगी जब यह बच्चे आदर्श शिक्षा पाकर देश का भावी नागरिक बनकर बालश्रम जैसे कार्य से मुक्त होंगे। इसके लिए जन-जागरण अभियान चलाकर हमें जनता को सचेत करना होगा तभी इस समस्या का समाधान हो सकेगा। निष्कर्ष रूप में कह सकेंगे कि बालश्रम को समाप्त करने के लिए सरकार को सतत् जागरूक रहना होगा। माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देशों का ईमानदारी से क्रियान्वयन सुनिशिचित करना होगा।

इसी के साथ बालश्रम के उन्मूलन कार्यक्रमों को सम्पूर्णता प्रदान करते हुए मुक्त बालक को रोजगार परक शिक्षा प्रदान करके अच्छा हस्तशिल्पकार बनाने का प्रयास करना होगा। ताकि विश्व का प्रथम युवा देश बनकर अंर्तराष्ट्रीय पटल पर विकसित देशों की श्रेणी में अग्रज बना रहे।

सन्दर्भ

1. Satyarthi, Kailash; Zutshi, Bupinder. Globalisation, Development And Child Rights in loss. Shipra Publications, New Delhi, 2006
2. वार्षिक रिपोर्ट २०१२-१३, श्रम रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार। पेज ६१, ६७, १०१
3. वही
4. गुप्ता विनीता, 'शिक्षा के नवाचार एवं नये आयाम', नूतन राजपाल, २०१४, पृ. ११३-१२०
5. NSSO data on child labour, 2009-2010.
6. V.R.P. Rao, "Policies and Programmes for child Labour", Central Board for Workers Education, North Ambazari Road, Nagpur, pgs (57-62).
7. A.S. Kohli, "Creating A Human Right Culture for Rights of Children", Human Rights in India, Issues and Perspectives, Compiled and edited by Dr. S.Mehraj Begum, A.P.H. Publishing Corporation, Daryaganj, New Delhi, pgs-(275-282).
8. www.savethechildren.net/india
9. Working Children in India,Registrar General, Government of India 1991
10. Ministry of Labour and Employment. Working Group Report on Strategy for the 10th Plan.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

स्वयं सहायता समूह एवं महिला सशक्तीकरणः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ. सोनूपुरी

निर्धन, महिलाओं, ग्रामीण एवं समाज के अन्य अविकसित वर्गों को भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकारी बैंको से ऋण लेने और अपना रोजगार स्थापित करने में सदैव कठिनाई होती रही है। इन परेशानियों से सरकार भी भली भाँति अवगत रही है और समय समय पर इन वर्गों के विकास के लिए नई योजनायें संचालित की जा रही हैं, जिससे कि इन निम्न स्तरीय वर्गो के लोगों को संस्थागत वित्त और स्वरोजगार से जोड़ा जा सके। किन्तु कई वर्षो के प्रयासों एवं प्रयोग के बाद भी इस दिशा में कोई ठोस सफलता सरकार को नहीं मिल पाई। इन सब कठिनाइयों और विफलताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने पाया कि 'समूह' के माध्यम से विकास की योजनाओं एवं बैंक ऋण को इस वर्ग तक सफलतापूर्वक पहुँचाया जा सकता है। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग नाबार्ड द्वारा एक दशक पूर्व स्वयं सहायता समूह के माध्यम से किया गया। इस प्रयोग के सुपरिणामों से प्रोत्साहित हो सरकार एवं नाबार्ड ने समय-समय पर समूह कार्यविधि में यथावश्यक सुधार करते हुए देश भर में इसे लागू करने का निर्णय लिया। इसके कार्यान्वयन में न केवल सरकार बल्कि गैर सरकारी संगठन, स्वयं सेवी संस्थाएँ, सरकारी विभाग, राष्ट्रीयकृत बैंक व अन्य कई संस्थाएँ भी सम्मिलित की गईं। फलस्वरूप आज देश भर के कई प्रकार के स्वयं सहायता समूह गठित करने वाली संस्थाओं (Self-Help Promoting Institutions) के प्रतिरूप विकसित होकर सामने आये हैं।

> वास्तव में महिलाएँ बचपन से ही एक अच्छे प्रबंधक के रूप में कार्य करती हैं क्योंकि घर रूपी इकाई या संस्था का प्रबन्धन न केवल वे अपनी आर्थिक स्थिति, सामाजिक वातावरण, पारिवारिक परिस्थिति आदि के आधार पर करती हैं, बल्कि आपसी सामन्जस्य और तनावपूर्ण स्थिति को ध्यान में रखकर प्रबंधन के लिए काफी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तीकरण को प्रदर्शित करना है।

हमारे देश की महिलायें देश की जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा है। इसलिए राष्ट्रविकास के महान कार्य में महिलाओं की भूमिका और योगदान को पूरी तरह और सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्रनिर्माण के कार्य को समझा जा सकता है। प्रश्न उठता है कि महिला सशक्तीकरण का अर्थ क्या है? क्या यह मात्र अपने शाब्दिक अर्थ ''महिला की सबलता'' तक ही सीमित है अथवा इसके निहितार्थ कहीं अधिक गहरे हैं ? वस्तुतः इस प्रश्न की परख इस बात से की जानी चाहिए कि क्या नारी भयमुक्त होकर जिस लक्ष्य को पाना चाहती है उसके लिए प्रयास कर सकती है या नही। सही सबलता और सुयोग्यता महिला सशक्ति की असली पहचान है। व्यापक बदलाव के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में महिला सशक्तीकरण आन्दोलन बीसवीं शताब्दी के आखिरी दशक का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक आयाम कहा जा सकता है। वस्तुतः महिला सशक्तीकरण का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिससे महिलाओं की अपने आप को संगठित करने की क्षमता बढ़ती और सुदृढ होती है। वर्ष २०००-२००१ के वार्षिक बजट में वर्ष २००१ को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया था। महिला सशक्तीकरण के मुद्दे को देखते हुए बहुत बडी संख्या में महिलाओं के लिए विभिन्न योजनाएं चलायी गईं स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वशक्ति, स्वयं सिद्धा आदि। भारत सरकार द्वारा महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय महिला कोष योजना की भी शुरूआत की गई। इसके अतिरिक्त स्वयं सहायता समूहों द्वारा महिलाओं को बैंकों और बाजारों से भी जोड़ा गया। सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है जो व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह को इस योग्य बनाने का प्रयास करती है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र/कार्यो में पूर्ण अस्मिता तथा शक्तियों को प्राप्त कर सकें। यदि किसी भी समाज मे स्त्री-पुरूष असमानता के बीज विद्यमान हैं तो यह उस समाज के समग्र विकास के लिए कैसे यथोचित है?''[1]

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं संतुलित विकास के लिए महिला वर्ग का राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। देश की आधी आबादी की पूर्ण सक्रियता एवं सहभागिता ही संबंधित समाज के समूचे विकास की पूर्ण शर्त है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए अमेरिकी विद्वान टॉक विल का कथन है कि अमेरिकी महिलाओं की सर्वोपरिता ही अमेरिकी

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, कन्नौज (उ.प्र.)

लोकतंत्र की सुदृढ़ता एवं समृद्धि का प्रमुख आधार है।"[२]

ऐसा कहा जाता है कि भारत की आत्मा गाँवों मे बसती है तथा स्त्रियाँ उसकी धुरी हैं। भारतीय शासन तंत्र ने ग्राम विकास के साथ ही महिला सशक्तीकरण के लिए भी प्रयास किया है जिससे ग्रामीण महिलाओं को भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

सरकार द्वारा २० मार्च को महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति लागू की गई।[३] इस योजना का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं सशक्तीकरण को सुनिश्चित करना है और महिलाओं के साथ प्रत्येक तरह का भेदभाव समाप्त कर यह सुनिश्चित करना है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक गतिविधि में खुलकर भाग लें।

स्वयं सहायता समूह भारत की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सन् २००५ में सूर्यमूर्ति आर० ने केरल के अध्ययन में स्वयं सहायता समूहों का प्रभाव महिलाओं पर देखा और पाया कि स्वयं सहायता समूहों द्वारा उपार्जित ऋण एक दूसरे की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयोग किया गया एवं समस्याओं का निवारण किया गया।[४] इसके अतिरिक्त सन् २००६ में शर्मा अभिजीत ने मेघालय के खासी जिले के अध्ययन में गरीबी खत्म करने में सूक्ष्म वित्त योजनाओं एवं संस्थाओं की भूमिका का अध्ययन किया। इन्होंनें अपने अध्ययन में पाया कि स्वयं सहायता समूहों ने गरीबों के जीवन-स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[५] इसके उपरान्त सन् २००७ में सिंह एवं पाण्डेय ने उत्तर प्रदेश एवं उत्तरांचल के अपने अध्ययन में अनुसूचित जातियों की महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण में सूक्ष्मवित्त योजनाओं के प्रभावों का अध्ययन किया और पाया कि सूक्ष्मवित्त योजनाओं पर आधारित स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण गरीब महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[६]

१. स्वयं सहायता समूहः- आज देश में अनेक शासकीय गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ही चलाये जा रहे हैं तथा केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार और कई मंत्रालय अपनी योजनाओं का कार्यान्वयन स्वयं सहायता समूह के माध्यम से कर रहे हैं। भविष्य में स्वयं सहायता समूहों का योगदान शासकीय योजनाओं में एक अहम् भमिका निभायेगा। भारत में स्वयं सहायता समूहों को कई नाम से जाना जाता है, जैसे निधि, चिंती, कुरी, नरूक्कू, कमैटी, समूह, समुख, कालिंजयन, मित्रासमूह, समानरूपी समूह, Water user group joint liability group इत्यादि। स्वयं सहायता समूह ऐसे निर्धन ग्रामीणों का एक समूह है जिनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति लगभग एक जैसी है। ये लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से १०-२० रूपये या उससे ज्यादा की बचत करके जरूरतमंद सदस्यों के साथ ऋण का लेन-देन (बीमारी के इलाज, कृषि कार्य, शादी-विवाह इत्यादि के लिए) करते हैं। हर सप्ताह या पन्द्रह दिन या हर माह बैंठक में बचत की राशि सदस्यों द्वारा जमा की जाती है तथा ऋण का लेन-देन किया जाता है।

राकेश मल्होत्रा के अनुसार, "स्वयं सहायता समूह एक ऐसा गठबन्धन है जिसमें १० से २० सदस्य स्वेच्छा से एक दूसरे की मदद करने के उद्देश्य से संगठित होते हैं। सामान्यता स्वयं सहायता समूह के सदस्य एक दूसरे से भली-भाँति परिचित होते हैं, एक ही गाँव, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों और व्यवसाय के होते है, अर्थात वह समरूप होते हैं।"[७] यूनिसेफ के अनुसार "स्वयं सहायता समूह अपनी आवश्यकता पूर्ति तथा समस्या समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करने का एक साधन है।"[८]

अध्ययन की प्रासंगिकताः- सरकार द्वारा समय-समय पर महिलाओं के उत्थान के लिए नई-नई योजनायें संचालित की जा रही हैं। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग नाबार्ड द्वारा लगभग एक दशक पूर्व स्वयं सहायता समूह के द्वारा किया गया। स्वयं सहायता समूहों के क्रियान्वयन के उपरान्त ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन कर पता लगाना आवश्यक है कि स्वयं सहायता समूहों के प्रारंभ होने के बाद क्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का निराकरण हो रहा है ? महिलाओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, रहन-सहन एवं आजीविका का स्तर, निर्णय लेने की क्षमता, राजनीतिक सहभागिता का स्तर, कार्यों की दक्षता का स्तर, तथा स्वास्थ्य के स्तर में आये परिवर्तनों से संबंधित दशाओं पर इस अध्ययन के माध्यम से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्यः- इस शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं:-

(१) स्वयं सहायता समूहों द्वारा ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण ज्ञात करना।

(२) स्वयं सहायता समूहों द्वारा ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण ज्ञात करना।

(३) स्वयं सहायता समूहों द्वारा ग्रामीण महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण ज्ञात करना।

अध्ययन क्षेत्र एवं विधिः-प्रस्तुत अध्ययन हेतु मेरठ जनपद

के मेरठ खण्ड के तीन गाँवों चन्दसारा, फफूण्डा तथा गंगोल का चयन किया गया है। जिसमें प्रत्येक गाँव में से एक-एक स्वयं सहायता समूह द्वारा कुल ५४ उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपरक निदर्शन विधि द्वारा किया गया है। प्राथमिक तथ्यों का संकलन प्रत्यक्ष साक्षात्कार, अवलोकन एवं अनुसूची पद्धति का प्रयोग कर किया गया है। इसी तारतम्य में द्वितीयक तथ्यों के संकलन के लिए पुस्तक, सरकारी प्रतिवेदन, पूर्वानुसंधान प्रतिवेदन, समाचार पत्र, पत्रिका, सर्वेक्षण प्रतिवेदन आदि का अध्ययन कर विश्लेषण किया गया है। उद्देश्यों के अनुरूप संकलित तथ्यों को सरल सारिणियों के द्वारा प्रस्तुत कर किया गया है एवं तदानुकूल विश्लेषित किया गया है।

उपलब्धियाँ: स्वयं सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण महिलाओं के सशक्तरकरण को अग्रवर्णित सारणियों द्वारा प्रदर्शित किया गया है -

सारणी क्रमाँक - ०१

परिवार में महिलाओं की आर्थिक सहभागिता

आर्थिक सहभागिता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	५१	९४.४४
नहीं	०३	५.५६
योग	५४	१००.००

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह के द्वारा अधिकांश महिलायें (९४.४४ प्रतिशत) परिवार के आर्थिक कार्यों मे कुशलतापूर्वक सहभाग कर रही हैं और उनका आर्थिक स्तर सुदृढ़ हुआ है। वे पारिवारिक व्यय में प्रत्यक्ष रूप से योगदान देती हैं।

सारणी क्रमाँक - ०२

ग्रामीण महिलाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि

कार्यकुशलता में वृद्धि	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४९	९०.६५
नहीं	०५	९.२५
योग	५४	१००.००

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह में दिये जाने वाले प्रशिक्षण के द्वारा अधिकांश महिलायें (९४.७५ प्रतिशत) कार्य करने में निपुण हुई है, जिससे उनकी कार्यक्षमता मे वृद्धि हुई है।

सारणी क्रमाँक - ०३

स्वयं सहायता समूह बैंकिंग प्रणाली संबंधी ज्ञानवर्द्धन

ज्ञानवर्द्धन	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४८	८८.८९
नहीं	०६	११.११
योग	५४	१००.००

स्वयं सहायता समूह महिला सशक्तीकरण का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा जैसा कि उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है अधिकांश महिलाओं (८८.८९ प्रतिशत) में बैंकिंग प्रणाली के द्वारा ब्याज दर एवं ऋण सम्बन्धी ज्ञान में भी वृद्धि हुई है।

सारणी क्रमाँक - ०४

बच्चों एवं स्वयं के जीवन स्तर में सुधार

जीवन स्तर में सुधार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	५१	९४.४४
नहीं	०३	५.५६
योग	५४	१००.००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह द्वारा उपलब्ध ऋण के माध्यम से अधिकांश महिलायें (९४.४४ प्रतिशत) में अपने एवं अपने बच्चों के लिए उचित सुविधायें प्रदान करने में सक्षम हुई हैं, जिससे उनके जीवन-स्तर में सुधार हुआ है।

सारणी क्रमाँक - ०५

उत्तम नेतृत्व क्षमता एवं संचार योग्यता का विकास

नेतृत्व क्षमता व संचार योग्यता	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४७	८७.०३
नहीं	०७	१२.९७
योग	५४	१००.००

उपर्युक्त सारणी के अनुसार अधिकांश ग्रामीण महिलाओं (८७.०३ प्रतिशत) में राजनीतिक सशक्तीकरण के अन्तर्गत समूह में योग्य नेतृत्व क्षमता एवं अभिमत क्षमता को बढ़ावा मिला है, जिससे वे सामुदायिक, ग्रामीण एवं पारिवारिक गतिविधियों में खुलकर सहभाग करती हैं।

सारणी क्रमाँक - ०६

स्वास्थ्य जागरूकता के प्रति जागरूकता में वृद्धि

जागरूकता में वृद्धि	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४९	९०.७५
नहीं	०५	९.२५
योग	५४	१००.००

प्रस्तुत सारणी में अधिकांश ग्रामीण महिलाओं (९०.७५ प्रतिशत) में स्वयं सहायता समूह की बैठकों के माध्यम से स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है जैसे- पोलियो, एच०आई०वी० एड्स तथा परिवार नियोजन कार्यक्रम आदि।

सारणी क्रमाँक - ०७

निर्णय लेने की क्षमता का विकास

निर्णय लेने की क्षमता	संख्या	प्रतिशत
हॉं	५०	९२.६०
नहीं	०४	७.४०
योग	५४	१००.००

सारणी द्वारा स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह के द्वारा अधिकांश महिलाओं (९२.६० प्रतिशत) में परिवार एवं समुदाय में निर्णय लेने की क्षमता को बढावा मिला है, जिससे उनमें आत्म-निर्भरता बढ़ी है।

निष्कर्षः- उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान में स्वयं सहायता समूहों ने गरीबी समाप्त करने और ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परिवार में महिलाओं की आर्थिक सहभागिता बढ़ी है। महिलायें अब स्वयं सहायता समूह द्वारा जमा किये गये वित्त से अपने एवं अपने बच्चों को उचित शिक्षा एवं अच्छी सुविधायें प्रदान करने में सक्षम हुई हैं जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार हुआ है। स्वयं सहायता समूहों ने परिवार में महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं में बैकिंग प्रणाली के माध्यम से ब्याज दर, बैंक में खाता खोलना, ऋण संबंधी किश्तों आदि के ज्ञान में वृद्धि हुई है। महिलाओं में स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं कार्यकुशलता को भी बढ़ावा मिला है। महिलायें समूह एवं समूह से बाहर भी अपने विचारों को खुलकर प्रकट कर सकती है तथा अब वे व्यक्तिगत रूप से समूहों के द्वारा उन्नति करने में सक्षम हुई है।

नीतिगत सुझाव :

(१) महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों की जानकारी प्रदान करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक बैठकों का आयोजन एवं प्रचार-प्रसार कराया जाए।

(२) स्वयं सहायता समूहों की अत्यधिक सफलता के लिए महिलाओं को सरकारी एवं निजी बैंकों द्वारा कम ब्याज पर उचित ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाए।

(३) स्वयं सहायता समूहों के सुचारू क्रियान्वयन के लिए स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा महिलाओं को सरकारी एवं गैर सरकारी वित्तीय एवं तकनीकी योजनाओं के बारे में और अधिक जागरूक किया जाए।

(४) स्वयं सहायता समूह के माध्यम से एकत्रित धनराशि की नियमित जाँच एवं निगरानी की आवश्यकता है।

(५) समूहों के समुचित रूप से संचालन हेतु माह में आयोजित की गई प्रत्येक बैठक में समूह के सदस्यों की पंजिका में उपस्थिति दर्ज की जानी अत्यधिक अनिवार्य है।

(६) बाहरी एवं आन्तरिक एजेन्सियों द्वारा सत्यापन का कार्य और अधिक सफलतापूर्वक किया जाना चाहिए, जिससे स्वयं सहायता समूह में महिलायें निःसंकोच एवं सत्यनिष्ठा से कार्य कर सकें।

सन्दर्भ

१ कुमार नरेन्द्र सिंधी (लेख), 'नारीवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में महिला विमुक्ति एवं सशक्तीकरण के व्यापक एवं भारतीय संदर्भ में विशिष्ट आयाम,' उद्धृत आशा कौशिक', महिला सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स,जयपुर २००४ पृ.३

२ विलियम मैथ्यू, 'ग्रांड वूमेन एण्ड माइलेटीः इ डेमोक्रेटिक फेमिली इन टाक विल', द रिव्यू ऑफ पोलिटीकल साइंस विटर', द यूनिवर्सिटी ऑफ नोट्रडेम, इण्डियाना, १९९५

३ Women and child development Department MP; MP Co-operative Office Bhopal.

४ सूर्यमूर्ति आर, 'माइक्रो फाइनेन्स एण्ड कास्ट वीमेन सेल्फ हेल्प ग्रुप्स इन केरलः लोन फॉर मेम्बर्स ऑर अदर्स,' जनवरी-मार्च २००५, अंकः ५५, सोशल ऐक्शन,५पृ. ५५-७१

५ शर्मा अभिजीत, 'माइक्रोफाइनेन्सः हॉप फॅार दि पूअर,' योजना दिसम्बर २००६ पृ. ३१-३६

६ सिंह ए०के० एण्ड पाण्डेय एस०पी०, 'एमपॉवरमेन्ट ऑफ सेड्यूल्ड कास्ट वीमेन थ्रू सेल्फ हेल्प ग्रुप्स,' सीरियल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-२००७ पृ. ३८-४०

७ मल्होत्रा राकेश, 'विभिन्न योजनाओं में स्वयं सहायता समूह,' एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा०) लि०, नई दिल्ली- २००७, पृ. ४

८ वही, पृ. ४

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

डॉ- लोहिया की दृष्टि में भारतीय नारी

❑ डॉ० अतुल कुमार यादव

महान स्वतंत्रता सेनानी प्रखर समाजशास्त्री और सम्मानित राजनेता डॉ. राम मनोहर लोहिया को भारतीय संस्कृति से अगाध् प्रेम था। वह महात्मा गांधी से अतिशय प्रेरित एवं प्रभावित थे तथा जीवन पर्यन्त उनके आदर्शों के समर्थक रहे। वह व्यक्ति-व्यक्ति के बीच किसी भी प्रकार के भेद अथवा दुराव नहीं चाहते थे इसलिए वह जात-पात, अमीरी-गरीबी तथा स्त्री-पुरूष के बीच असमानताओं को दूर करने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। प्रस्तुत लेख भारतीय नारी के संबंध में डॉ. लोहिया के विचारों को प्रस्तुत करने का एक प्रयास रहा है।

राम मनोहर लोहिया ने नारी को भी एक जाति माना है। इतिहास इसका प्रमाण है कि पूरे विश्व में सदियों से नारियों के प्रति जो एक उदासीन दृष्टिकोण रखा गया; उसके कारण आज मानव जाति की निस्सहाय व दयनीय स्थिति दृष्टिगत है।[१] नारी के प्रति दुर्व्यवहार, अशिक्षा तथा अधिकारों से वंचित रखने की सदियों से पूर्व चली आ रही कहानी ने न केवल नारियों की दयनीय स्थिति को सृजित किया है वरन् मानव सभ्यता को कलंक के धब्बे से आच्छादित कर दिया है। स्त्री जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के कारण साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी अब परतंत्र, पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी।[२] नारियों की विवशता और उन पर हो रहे सदियों से अत्याचारों ने लोहिया को इस दिशा में सोचने एवं 'नारी मुक्ति आन्दोलन' को तेज करने को बाध्य किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक नारियों को पुरूषों के समान दर्जा नहीं मिलेगा तब तक मानव समाज का उत्थान एवं विकास असम्भव है। आपने अपनी विचार परिधि में विभिन्न सामाजिक पक्षों यथाः नर-नारी समता, विवाह, दहेज, परिवार नियोजन, नारियों की शारीरिक संरचना एवं प्रकृति के अनुकूल उन्हें विशेष अवसर सुलभ कराना, नारी-स्वतंत्रता आदि को अपने दृष्टिपथ में रखा।

लोहिया ने अपने समकालीन भारतीय समाज की नारियों की स्थिति को निकट से देखा और समझा। नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए आपने लिखा है कि- "नारी की रसोई की गुलामी, वीभत्स है; और चूल्हों का धुंआ तो और भी भयंकर है।"[३] भारतीय नारी के परम्परागत संस्कार ऐसे हैं कि भूख और अभाव की चोट सबसे पहले और सबसे ज्यादा उसी पर पड़ती है। वह सारे घर को खिलाने के बाद खाती है; और इसलिए अक्सर भूखी या अधपेट ही सोती है।[४] पुरूषों की अपेक्षा औरतों की बेजान स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुये लोहिया लिखते हैं; औरत, हिन्दुस्तान की औरत ! दुनियां के दुखी लोगों में सबसे ज्यादा दुखी, भूखी, मुर्झाई और बीमार है। हिन्दुस्तान का मर्द भी दुखी है- पर हिन्दुस्तानी औरत, मर्द के मुकाबले कई गुना ज्यादा भूखी और बीमार है।[५]

भारतीय संस्कृति में नर-नारी जन्म में भी असमानता है। नर का जन्म सुखद और नारी का दुःखद माना जाता है। इसका मुख्य कारण भारत में व्याप्त दहेज प्रथा है। वधू की योग्यता, शिक्षा, सुन्दरता आदि तो गौण हैं, वर-पक्ष दहेज की अधिक मात्रा से प्रभावित होता है। जिस प्रकार कि गाय दूध की मात्रा से नहीं; उसके बछड़ा नीचे होने से क्रेता के लिए मूल्यवान होती है, उसी प्रकार वधू योग्यता से नहीं, दहेज से ही अच्छे घर में विवाहित होती है। लोहिया के शब्दों में "बिना दहेज की लड़की किसी मसरफ की नहीं होती, जैसे बिना बछड़े वाली गाय।"[६] इसके अलावा विवाह के निमंत्रण की सुन्दरता, दी जाने वाली दक्षिणा का मूल्य, कण्ठियों की कीमत तथा अन्य तड़क-भड़क वर-वधू के आत्म मिलन से अपेक्षाकृत अधिक महत्व की समझी जाती हैं। लोहिया ठीक ही लिखते हैं कि "उनकी शादियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है, जिसे प्राप्त करने का नव दम्पत्ति प्रयत्न करते हैं, बल्कि २० लाख की कण्ठियों और पचास हजार से भी अधिक कीमती साड़ियों में है।"[७] दहेज की इस घृणित कुप्रथा की भर्त्सना के लिए शक्तिशाली लोकमत तैयार किया जाना चाहिए; और जो युवक इस क्षुद्र तरीके से दहेज लेते हैं; उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाना चाहिए।

राम मनोहर लोहिया बहुपत्नी प्रथा के घोर विरोधी थे। उनका मत था कि यदि पत्नी एक पति रख सकती है तो पति को भी एक ही पत्नी रखने का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने मुस्लिम धर्म की इस स्वतंत्रता की कटु आलोचना की है। वे नर-नारी के बीच इस सम्बन्ध में समता चाहते थे। एक पत्नी एक पति का

❑ असिस्टेण्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, आदर्श कृष्ण महाविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)

सिद्धान्त ही उनके लिए आदर्श था। घर के कार्यों के सम्बन्ध में भी वे समता का प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना था कि अगर औरत की जगह; रसोई घर में हो तो आदमी की जगह पालने के पास होनी चाहिए।[८]

'नारी-स्वतंत्रता' का प्रतिपादन करते हुए डॉ- राम मनोहर लोहिया ने कहा कि आधुनिक पुरूष अपनी स्त्री को एक ओर सजीव, क्रान्तिपूर्ण एवं ज्ञानी चाहता है, दूसरी ओर अधीनस्थ भी। पुरूष की सह परस्पर विरोधी भावनाएं बहुत ही काल्पनिक, अवास्तविक एवं यथार्थता से परे हैं, क्योंकि परतंत्रता की स्थिति में ज्ञान, सजीवता एवं तेज का प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है? डॉ- लोहिया ने नर के इस प्रकार के भरे हुए मस्तिष्क को जगाया और कहा- ''या तो औरत बनाओ परतंत्र, तब मोह छोड़ दो औरत को बढ़िया बनाने का। या फिर बनाओ उसको स्वतंत्र, तब वह बढ़िया होगी; जिस तरह से मर्द होगा।''[९] लोहिया के इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि नर-नारी समता के प्रतिपादन में उनका प्रमुख उद्देश्य था- नारी को बुद्धिमान, विवेकी, क्रान्तिपूर्ण और ज्ञानी बनाना।

लोहिया नारी को आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र करना चाहते थे। वे नारी को समान कार्य के लिए समान वेतन ही नहीं, अवसर और विधि की समानता ही नहीं; अपितु नारी की प्राकृतिक कमजोरी की क्षतिपूर्ति के लिए विशेष अवसर के पक्षपाती थे। ''प्रथम योग्यता फिर अवसर'' उनका सिद्धान्त नहीं था, बल्कि प्रथम अवसर और फिर योग्यता को ही वे उचित समझते थे। इस सन्दर्भ में आपका तर्क था कि ''शरीर संगठन के मामले में मर्द के मुकाबले में औरत कमजोर है; और मालूम होता है कि कुदरती तौर पर कमजोर है। इसलिए उसे कुछ स्वाभाविक तौर पर ज्यादा स्थान देना ही पड़ेगा।''[१०]

राम मनोहर लोहिया के अनुसार नारी के सक्रिय सहयोग के बिना राजनीति अपूर्ण है। अतः राजनीति में नारी को नर के समान हिस्सा बंटाना चाहिए। वे तलाक के सिद्धान्त को विवाह के क्षेत्र में स्वीकार करते हैं; राजनीति के क्षेत्र में नहीं अर्थात् राजनीति में नारी को नर के समान सक्रिय हो भाग लेना चाहिए; उसे राजनीति से तलाक नहीं लेना चाहिए। लोहिया नारियों को केवल गुड़िया या उपभोग की निर्जीव वस्तु नहीं मानते। वे कहा करते थे कि- ''नारी को गठरी के समान नहीं बनाना है, नारी इतनी शक्तिशाली होनी चाहिए कि वक्त पर पुरूष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चलें।''[११] इस प्रकार उन्होंने स्त्री-पुरूष की समानता पर जोर दिया है।

लोहिया ने ''भारतीय नारी'' की स्थिति के सम्बन्ध में जो अनुभव किया उसके कारणों को उनके अनुसार निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है-

(१) नारी पर दोहरा अत्याचार होता है; प्रथम समाज की रचना एवं नारी विरोधी संस्कृति ने नारी को इस भयावह अवस्था तक पहुंचाया है।

(२) परिवार में पति एवं परिवार के अंकुश व दुर्व्यवहार ने उसे पशुवत बना दिया है।

(३) नारियों को घर की चार दीवारियों के भीतर रखने एवं कार्य करने की प्रथा एवं आदत को बढ़ावा दिए जाने के कारण उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गयी है; और इस प्रकार वह गुलामी की जंजीर में जकड़ गयी है।

(४) उपर्युक्त कुप्रथाओं ने एक ऐसे विषैले वातावरण का निर्माण किया, जो निरन्तर नारियों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को विनाश की ओर ले जा रहा है।

अति संक्षेप में, लोहिया ने नर-नारी के मध्य व्याप्त बहुरूपी असमानताओं को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकित किया, उन पर गम्भीरता से विचार (चिन्तन) किया और भविष्य के लिए पथ निश्चित किया। अन्त में उनका कहना है कि यदि वास्तव में समाजवाद की स्थापना करनी है तो हिन्दू नर के पक्षपाती ''दिमाग'' को ठोकर मार-मार करके बदलना होगा और अन्तिम लक्ष्य नर-नारी के बीच में बराबरी कायम करना है।''[१२]

सन्दर्भ

१. अलटेकर ए.एस., 'दि पोजिशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलीजेशन', मोतीलाल बनारसीदास, पटना, प्रथम संस्करण, १९६०, पृ. २२-२३

२. जैन मन्जू, 'कार्यशील महिलाएं एवं सामाजिक परिवर्तन', प्रिंटवैल प्रकाशन, जयपुर, पृ. ६-१०

३. जन, नई दिल्ली, सितम्बर १९६६ पृ. ६१

४. लोहिया राम मनोहर; जाति प्रथा, नव हिन्द प्रकाशन हैदराबाद, १९६४ पृ. ४

५. वर्मा रजनीकान्त; 'लोहिया और औरत' लोहियावादी साहित्य विभाग, विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद, १९६६, पृ. २७

६. लोहिया राम मनोहर; जाति प्रथा, रंजना प्रकाशन इलाहाबाद, १९७०, पृ. १७४

७. वही, पृष्ठ ७

८. लोहिया राम मनोहर, पूर्वोक्त, पृ. १३७

९. लोहिया; भाषण, समाजवादी युवजन समाज शिक्षण शिविर, २२ जून १९६२, उद्घृतः समाजवादी एकता, समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद, १९६६ पृ. ११

१०. लोहिया राम मनोहर, 'सात क्रांतियाँ', नव हिन्द प्रकाशन हैदराबाद, १९६६ पृ. १६

११. लोहिया; जाति प्रथा, पूर्वोक्त- पृ. १४१

१२. वही, पृ. १६५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

घटता लिंगानुपात : एक चिंतनीय विषय

❑ डॉ. विजय कुमार गंभीर
❖ निशा बरैया

सृष्टि की पालनहार, पुरुष की सहयोगी एवं समाजीकरण की प्रमुख आधार 'महिला' की स्थिति कमोवेश सभी समाजों व सभी कालों में दोयम दर्जे की रही है। जन्म से पूर्व माँ की कोख से ही लिंग के आधार पर उसके विरूद्ध शोषण प्रारम्भ हो जाता है। परिणति स्वरुप या तो उसे जन्म लेने से ही वंचित कर दिया जाता है अथवा जीवन पर्यन्त प्रत्यक्ष या परोक्ष शोषण को स्वीकारना उसकी नियति बन जाता है। वर्तमान २१वीं सदी के तथाकथित सभ्य व आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी घटते लिंगानुपात की समस्या समाज वैज्ञानिकों के लिए चिंता व चिंतन का विषय है। प्रस्तुत शोध पत्र समस्या को उसकी स्थिति, कारण व परिणाम के सन्दर्भ में विश्लेषित करते हुए समाधान सम्बन्धी सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास हैं।

मानव की सृजनात्मक प्रवृत्ति सृष्टिकर्ता की सम्भवतः सर्वोत्तम देन है तथा सृजनात्मक और रचनात्मक क्षमता की सबसे उत्कृष्ट अभिव्यक्ति समाज है। यह समाज व्यक्तियों का जमघट मात्र नहीं है, अपितु यह अनेक मनुष्यों के मध्य पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्धों और अन्तःक्रियाओं की एक व्यवस्थागत अभिव्यक्ति भी है, जो अनेक सामाजिक घटनाओं को जन्म देती है व उन्हीं से अनेक सामाजिक समस्याओं का उद्‌भव भी होता हैं।

वर्तमान भारतीय समाज अपने संक्रमण काल से गुजर रहा है। जिस कारण समाज के सम्मुख बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन्हीं समस्याओं के तारतम्य में बालिकाओं का घटता हुआ अनुपात एवं कन्या भ्रूण हत्या एक गम्भीर सामाजिक समस्या के रूप में उजागर हुई है, जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव सामाजिक संरचना पर पड़ रहा है। सिद्धान्ततः समाज में स्त्री-पुरुष दोनों महत्वपूर्ण इकाईयाँ हैं, परन्तु कमोवेश वैदिक काल से ही पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के अन्तर्गत धार्मिक मान्यताओं में स्त्री का पुत्रवती होना सबसे बड़ा आशीर्वाद माना जाता रहा है और मोक्ष प्राप्ति एवं पितृऋण से मुक्ति के लिए पुत्रोत्पत्ति आवश्यक होने के कारण स्त्री का अनेक प्रकार से उत्पीड़न होता रहा है। व्यवहारिक रूप से भारतीय समाज में आज भी महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की ही है। सामन्ती युग में परिवार और समाज में लड़कियों को घरेलू कार्यों के साथ-साथ आज्ञाकारी, सहनशील और लज्जाशील बनने के गुण सिखाये जाते थे, ताकि उनके विवाह में कोई दिक्कत न आये और वे अपनी गृहस्थी को अच्छी तरह चला सकें। आज भी एक अच्छी, सुन्दर और सुशील लड़की बनने के पैमाने कुछ खास नहीं बदले हैं, फर्क सिर्फ इतना है, कि अब शिक्षा भी इन गुणों में सम्मिलित हो गई है। यद्यपि वर्तमान में स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है, परन्तु नगरीय समाज को छोड़कर ग्रामीण समाज में आज भी स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता है, जिस कारण उनकी समानता व जागरुकता प्रभावित होती हैं।

पुनर्जागरण काल के दौरान एवं स्वाधीनता के पश्चात् स्त्री-पुरुष विभेद समाप्त करने के लिए तथा महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक प्रयासों के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक अधिनियमों को लागू किया गया। निःसन्देह इन सामाजिक अधिनियमों, सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयत्नों तथा संवैधानिक उपायों के द्वारा स्त्री-पुरुष विभेद में कमी आयी। वर्तमान समय में नारी राजनीतिक, विज्ञान, कला और अर्थव्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में अपना परचम लहरा रही है, परन्तु वास्तविकता यह है, कि इनका प्रतिशत अत्यधिक न्यून है। इस पितृसत्तात्मक एवं पुरुष-प्रधान समाज में धर्म एवं परम्परा की आड़ में आज भी स्त्रियाँ हाशिये की नोक पर हैं।

वर्तमान समय में दहेज, लैंगिक उत्पीडन, घरेलू हिंसा, कन्या भ्रूण हत्या, वैश्यावृत्ति, महिला तस्करी आदि-आदि महिलाओं से संबंधित समस्याएँ दिन- प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। पुरुष की पालनहार एवं आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिला जाति के अन्तर्गत कन्या भ्रूण हत्या निश्चित रूप से न केवल सभ्य व उन्नत समाज के लिए चिंतनीय है अपितु सामाजिक व्यवस्था के सुदृढ़ व संस्कारित होने के समक्ष एक

❑ प्राध्यापक, समाजशास्त्र, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)
❖ एम.फिल, समाजशास्त्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

प्रश्न चिन्ह प्रस्तुत करती है।

कन्या शिशु के जन्म लेने के पश्चात् इसकी हत्या करना कन्या शिशु हत्या कहलाता है व अजन्में बच्चे का लिंग परीक्षण के उपरांत कन्या भ्रूण होने पर उसकी हत्या करवाना कन्या भ्रूण हत्या कहलाती है। कन्या शिशु हत्या या कन्या भ्रूण हत्या दोनों ही वर्तमान समय में सम्पूर्ण भारत एवं अन्य देशों के लिए एक गंभीर समस्या का विषय बन गये हैं। तेजी से हो रही कन्या भ्रूण हत्या से लैंगिक असंतुलन की समस्या जन्म ले रही है। संयुक्त राष्ट्र के विश्व जनसंख्या कोष की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व के सर्वाधिक लैंगिक असंतुलन वाले देशों में भारत भी सम्मिलित है। भारत की जनगणना रिपोर्ट[1] के अनुसार विभिन्न वर्षो के शिशु लिंगानुपात (०-६ वर्षीय) की स्थिति के आंकड़े निम्न तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं :-

भारत में शिशु लिंगानुपात (०-६ वर्षीय)

वर्ष	लिंगानुपात*
१९५१	९८३
१९६१	९७६
१९७१	९६४
१९८१	९६२
१९९१	९४५
२००१	९२७
२०११	९१४

*प्रति १००० बालक शिशुओं के अनुपात में बालिका शिशुओं की संख्या

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पश्चात पिछले छह दशकों में बालिका शिशुओं की संख्या में उत्तरोत्तर कमी होती जा रही है जहाँ १९५१ में यह संख्या ९८३ थी वहीं साक्षरता दर में वृद्धि, जागरुकता संबंधी प्रचार-प्रसार, नारीवाद, उदारवाद तथा इक्कीसवीं सदी के तथाकथित आधुनिक समाज में यह संख्या घटकर ९१४ रह गयी है।

भारत की विभिन्न राज्यों की जनगणनाओं की रिपोर्ट[2] से यह भी स्पष्ट होता है कि भारत के कुछ राज्यों में शिशु लिंगानुपात राष्ट्रीय स्तर से भी काफी कम है -

भारत के विभिन्न राज्यों में शिशु लिंगानुपात (०-६ वर्षीय)

राज्य	वर्ष			
	१९८१	१९९१	२००१	२०११
मध्यप्रदेश	९७७	९४१	९३२	९१२
हिमाचल प्रदेश	९७१	९५१	८९६	९०६
उत्तरप्रदेश	९३५	९२७	९१६	८९०
गुजरात	९४७	९२८	८८३	८८६
महाराष्ट्र	९५६	९४६	९१३	८८३
राजस्थान	९५४	९१६	९०९	८८३
पंजाब	९०८	८७५	७९८	८४६
हरियाणा	९०२	८७९	८१९	८३०
दिल्ली	९२६	९१५	८६८	८६७
राष्ट्रीय औसत	९६२	९४५	९२७	९१४

उपर्युक्त आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि भारत के उच्च साक्षरता वाले बड़े व उन्नत राज्यों की स्थिति लिंगानुपात की दृष्टि से अत्यधिक चिंतनीय है। विशिष्ट रूप से म.प्र. की दृष्टि से वर्ष २०११ में लिंगानुपात (०-६ वर्षीय) संबंधी आंकड़े[3] निम्नानुसार है -

वर्ष २०११ में म.प्र. के जिलो में शिशु लिंगानुपात (०-६ वर्षीय)

जिला	लिंगानुपात
मुरैना	८२९
ग्वालियर	८४०
भिण्ड	८४३
दतिया	८५६
रीवा	८८५

उपर्युक्त के अतिरिक्त वर्ष २०१४-१५ के वार्षिक हेल्थ सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष २०१३-१४ में ग्वालियर में सबसे कम प्रति १००० पर ८०७ बेटियाँ थीं। २०१४-१५ में यह घटकर ८०४ रह गईं। जबकि दतिया व मुरैना में ये अनुपात क्रमशः ८४१ व ८५५ पाया गया है। इससे स्पष्ट है कि अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों एवं म.प्र. सरकार के बेटी बचाओ अभियान तथा अल्ट्रासाउंड मशीनों पर भ्रूण लिंग परीक्षण रोकने हेतु लगाये गये ट्रेकर सिस्टम आदि का भी कोई असर नहीं हो रहा हैं।

कारण : उपर्युक्त स्थिति निश्चित रूप से इस चिंतन हेतु विवश करती है कि इस ज्वलंत समस्या के पीछे क्या कारण है? क्यों लोग घर के आंगन में एक बेटी के आगमन को पसंद नहीं करते हैं? कारणों की समीक्षा करने पर हमारे समाज में प्रचलित सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियाँ व मान्यतायें इसके लिए दोषी नजर आती हैं। भारत के प्रत्येक धर्म में विशेषतः हिन्दुओं में पुत्र पाने की लालसा अधिक रहती है। पुत्र वंश परम्परा को आगे बढ़ाता है व माता पिता को मुखाग्नि देने, उनका पिण्डदान करने एवं इससे संबंधित अन्य कर्मकण्डों को करने का अधिकार दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसी के फलस्वरूप पूर्वजों को जीवन चक्र से मुक्ति मिलती है। पुत्र

विहीन माता-पिता निःसंतान कहलाते हैं उन्हें तमाम सामाजिक अपशब्द व तिरस्कारों को सहन करना पड़ता है। इसके अलावा कन्याओं को पराया धन माना जाता है जो विवाह के पश्चात ससुराल चली जाती हैं। ऐसी स्थिति में माता पिता को यह लगने लगता है कि पुत्र ही उनके बुढ़ापे की लाठी बन सकता है न कि पुत्री। इन्हीं कारणों से प्रत्येक परिवार पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखता है।

दहेज प्रथा भी कन्या भ्रूण हत्या का एक प्रमुख उत्तरदायी कारण है। वर्तमान में बाजारवादी एवं भौतिकवादी संस्कृति ने दहेज को और अधिक भयावह बना दिया है, और यह कुप्रथा समाज को चुनौती दे रही हैं। घनश्याम[४] के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ''इसी दहेज रूपी राक्षस के कारण कन्याओं का जन्म परिवार के लिए बोझ बन गया है। बेटी के पैदा होने के कारण परिवार गमगीन हो जाता है। यहाँ तक कि बेटी के जन्म होने पर माँ को ही दोषी समझा जाता है और न चाहते हुए भी एक माँ को बेटी के जन्म लेने से पूर्व गर्भपात कराने के लिए मजबूर किया जाता हैं।''

पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत महिलाओं की निम्न स्थिति एवं कमजोर शारीरिक प्रकृति संबंधी विद्वानों की सोच ने भी महिलाओं के प्रति भेदभाव को जन्म दिया हैं। जोया जैंदी[५] ने अपने लेख में लिखा है कि ''पुरुष महिलाओं को हमेशा यह अहसास कराने में कामयाब रहे कि वे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्तर पर पुरुषों की अपेक्षा कमजोर हैं। इस प्रकार इन कमजोर और द्वितीयक श्रेणी की नागरिक रूपी नारी को तमाम अधिकारों से वंचित किया गया वे समाज पर एक बोझ के रूप में समझी गयीं जिसके कारण कन्या भ्रूण हत्याएँ हुई।''

कन्या भ्रूण हत्याओं की वृद्धि में आधुनिक मेडिकल सुविधाओं की भी बहुत बड़ी भूमिका रही है। अल्ट्रसोनोग्राफी, फीटोस्कोपी एवं एमनियोसेन्टोसिस की सहायता से लिंग परीक्षण कराना आज अत्याधिक आसान हो गया है। २०वीं शताब्दी के पूर्व कन्या भ्रूण हत्या के मामले बहुत कम प्रकाश में आते थे क्योंकि तकनीकी के अभाव में लिंग परीक्षण करवाना बहुत कठिन था। पुत्र की लालसा में एक घर में कई लड़कियाँ भी हो जाती थीं। लेकिन आधुनिक तकनीकी ने इसे सरल बना दिया, जिसके कारण कन्या भ्रूण हत्या अधिक होने लगीं। गर्भवती महिलाओं को लिंग परीक्षण के लिये प्रेरित करने के लिए एक समय पोस्टरों में लिखा पाया गया कि बाद में ५०००० रूपये (दहेज के रूप में) देने से अच्छा अभी ५०० रूपये खर्च करना है। शासन स्तर पर कन्या भ्रूण हत्या पर प्रतिबंध लगाने के लिए पी.सी.पी.एन.डी.टी. एक्ट अधिनियम १९९४ बनाया गया परन्तु ये भी उतना प्रभाव पूर्ण नहीं हुआ जितनी इससे अपेक्षायें की जा रही थीं। आज भी तीव्र गति से चोरी छुपे कन्या भ्रूण हत्यायें हो रही हैं। वर्ष २०१४-१५ के वार्षिक हैल्थ सर्वे[६] के दौरान खुलासा किया गया कि ग्वालियर (म.प्र.) में बेटा-बेटियों के अनुपात में सुधार नहीं आया है। अनुपात बढ़ने के बजाय घटता जा रहा है, वर्ष २०१४-१५ में १००० पुरुषों पर ८०४ बेटियाँ रह गई हैं।

परिणाम :- वर्तमान समय में अनेक कारणों से स्त्री पुरुष के मध्य लिंगभेद का वीभत्स रूप सामने आ रहा है जो कि पुरुष सत्तात्मक समाज में कन्या भ्रूण हत्या का पर्याय बनकर लिंग असमानता को बढ़ा रहा है। ये असमानता घटते लिंगानुपात के रूप में चिंतनीय है। इस लिंग असमानता व घटते लिंगानुपात के अनेक सामाजिक दुष्परिणाम परिलक्षित होते रहे हैं। चीन ने 'एक बच्चा' की नीति को अपनाया जिससे वहाँ गर्भपात तेजी से प्रचलित हुआ। वहाँ भी पुत्र इच्छा की मनोवृत्ति है जिससे कन्या भ्रूण हत्यायें बढ़ी है। भारत में राजस्थान के कई गाँवों में कई दशकों से बारात नहीं आयी है।[७] घटते लिंगानुपात से बहुपति विवाह को भी बढ़ावा मिलता है। लड़कियों की कमी ने 'बाल विवाह' को भी बढ़ावा दिया है। एक माँ के लिए बार-बार गर्भपात भावनात्मक एवं शारीरिक व मानसिक आघात पहुंचाता है जिससे उसकी कार्यक्षमता प्रभावित होती है। घटता लिंगानुपात महिलाओं के विरूद्ध अपराधों हेतु भी उत्तरदायी है। यह उनके मौलिक मानवाधिकारों का भी हनन है। कन्या भ्रूण हत्या से लिंगानुपात दिन प्रतिदिन असंतुलित होता जा रहा है जिसके कारण आज हमारी नातेदारी व्यवस्था भी प्रभावित हो रही है। घटते लिंगानुपात के इन प्रत्यक्ष दुष्परिणामों के अतिरिक्त अनेक दुष्परिणाम भविष्य की गर्त में छिपे हैं जिनकी हमें समय रहते चिंता करनी ही होगी।

सुझाव :- स्त्री-पुरुष एक गाड़ी के दो पहिये हैं। इनके परस्पर सहयोग विश्वास व सम्मान से ही संतुलित जीवन एवं स्वस्थ व समृद्ध समाज निर्मित होगा। ''स्थितियाँ आज बदली हैं, नारी अबला नहीं रही। वह इन तमाम कार्यो को कर रही है जिसे पुरुष करते रहे हैं। यही नहीं वह कई क्षेत्रों में तो पुरुषों से आगे निकल चुकी है परन्तु आज भी इस पुरुष प्रधान समाज में पुरुष मानसिकता यह मानने को तैयार नहीं है कि नारी भी ऊर्जावान, उत्पादक और उनकी सहयोगी एवं सहगामिनी है।''[८] सर्वाधिक आवश्यकता इस मानसिकता को बदलने की है जब तक नारी के प्रति सहयोगी व समानता का भाव विकसित नहीं होगा तब तक समस्या का वस्तुपरक हल संभव नहीं है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर व प्रत्येक एजेंसी द्वारा न केवल बालक को बल्कि बालिका को भी एक दूसरे के सम्मान, सहयोग, समानता व स्वाभिमान संबंधी संस्कार देने होंगे तभी समस्या से निजात संभव हो सकेगा।

बेटियों को बचाने के लिये जिलों में नये सिरे से पहल करनी होगी। अवैधानिक गर्भपात पर पाबंदी व भ्रूण लिंग परीक्षण पर अंकुश लगाने के लिए कानूनी प्रावधानों को और अधिक सख्ती से लागू करना होगा। आवश्यकता है कि मेडिकल स्टोर्स पर मिलने वाली गर्भपात की दवाओं के स्टॉक का पूरा हिसाब किताब दवा विक्रेताओं को रखने का सख्त आदेश दिया जाए। गर्भपात से संबंधित दवा खरीदने वाले व्यक्ति का नाम पता रिकार्ड में रखा जाए।

पुरुषों को महिलाओं के प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना को समाप्त कर सहयोगी का भाव विकसित करना होगा। महिलाओं एवं बालिकाओं के हितों में संचालित योजनाओं का समय-समय पर निरीक्षण एवं उनकी सार्थकता की निगरानी करनी होगी ताकि उनका वास्तविक लाभ उन तक पहुंच सके। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्रदान किए जाने की महती आवश्यकता है। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर इन्हें आत्मविश्वासी बनाए जाने की महती आवश्यकता है ताकि वे स्वयं भी अपनी सोच में परिवर्तन कर स्वयं की जाति के साथ अन्याय न करें व न ही होने दे।

संदर्भ

१. पाण्डेय आनन्द एवं पाण्डेय अर्चना, 'सामान्य अध्ययन', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, २०१३, पृ. ३७५ से उद्धत।

२. तदैव, पृ. ३७६

३. मीणा पी.एस., 'मध्यप्रदेश सामान्य ज्ञान', पुणेकर पब्लिकेशन्स, इन्दौर, २०१४ पृ. ८१ से उद्धत।

४. घनश्याम डी.एम., 'फीमेल फीटिसाइड एण्ड डाउरी सिस्टम इन इण्डिया', इन्टरनेशनल वूमन्स कान्फ्रेंस, २००२, जेम्स कुक यूनिवर्सिटी ऑस्ट्रेलिया, उद्धत समाज विज्ञान शोध संस्थान, वर्ष १२ अंक १, पृ. ५८

५. जैदी जोया, फीमेल फीटिसाइड इन इण्डिया ह्यूमनिस्ट आउटलुक, अंक ११ (११) २००८, पृ. ७१

६. दैनिक 'पत्रिका', ३ जुलाई २०१५, ग्वालियर पृ. १

७. द्विवेदी प्रीति, 'कन्या भ्रूण हत्या-मानव अस्तित्व पर प्रहार', म.प्र. सामाजिक अनुसंधान जर्नल अंक १-२, २०१४ पृ. ६१

८. तदैव, पृ. ५५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा   वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955   ISSN 0974-0074

सामाजिक मीडिया का युवाओं पर प्रभाव – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. संजय खरे

मीडिया शब्द का तात्पर्य जनसंचार माध्यमों जैसे- समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, विज्ञापन, कम्प्यूटर इंटरनेट इत्यादि से है। विकास में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। ''मीडिया का प्रभाव समाज में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में दिखाई देता है। मीडिया पर प्रसारित कार्यक्रमों के द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं''।[१] मीडिया संचार का सबसे सशक्त माध्यम है जो व्यक्ति को सही समय पर सही निर्णय लेने हेतु मदद करता है। आज संपूर्ण विश्व में व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, समस्या विशेष पर मीडिया की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। मीडिया ही हमें यह ज्ञान देता है कि हम अपने विचारों को कैसे दूसरों के सामने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करें ताकि हमारे व्यक्तित्व का विकास हो सके।

सोशल मीडिया आज हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी गतिविधियों को प्रभावित कर रहा है एवं इनसे सबसे ज्यादा यदि कोई प्रभावित हुआ है तो युवा वर्ग है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह देखना है कि युवाओं पर मीडिया एवं सामाजिक मीडिया का क्या प्रभाव पड़ रहा है एवं इससे प्रभावित होकर वह स्वयं को समाज के समक्ष किस रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

वर्तमान युवा पीढ़ी जो एक समय तकनीकी प्रेमी थी आज सामाजिक मीडिया प्रेमी हो गई है। भारत की लगभग दो तिहाई आबादी आज अपना समय विभिन्न ऑन-लाईन सामाजिक नेटवर्किंग साईट्स जैसे फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब, व्हाट्स एप पर व्यतीत कर रही है। कुछ समय पहले तक जो लोग ई-मेल का उपयोग करते थे वह भी इन सोशल साईट्स के कारण कम होता जा रहा है। यह एक सोचनीय पहलू है कि हमारे देश में मीडिया इतनी लोकप्रियता क्यो हासिल कर रहा है ? लाईव चैट, अपड्रेटस, वीडियो लोकप्रियता क्यों हासिल कर रहा है ? लाईव चैट, अपडेट्स, वीडियो शेयरिंग सामाजिक मीडिया की लोकप्रियता में अपनी भूमिका निभाते है।

सोशल मीडिया आज हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी गतिविधियों को प्रभावित कर रहा है एवं इनसे सबसे ज्यादा यदि कोई प्रभावित हुआ है तो युवा वर्ग है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह देखना है कि युवाओं पर मीडिया एवं सामाजिक मीडिया का क्या प्रभाव पड़ रहा है एवं इससे प्रभावित होकर वह स्वयं को समाज के समक्ष किस रूप में प्रस्तुत कर रहा है क्योंकि यह माना जाता है कि किशोरावस्था आयु का वह स्तर है जिसमें व्यक्ति नवाचार हेतु काफी आतुर रहता है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा एवं सरकार की सूचना तकनीकी विकास के कारण इन साइट्स की पहुँच प्रत्येक युवा वर्ग तक हो गई है एवं युवा वर्ग अपने मनोरंजन एवं समय व्यतीत करने हेतु इन साइट्स को सबसे सहज उपलब्ध साधन मानता है। इन पर प्रसारित दृश्य, खबरों का युवाओं के मन मस्तिस्क पर गहरा प्रभाव पडता है। आर.के. शर्मा के अनुसार मीडिया युवाओं की भावनाओं, विचारों को अधिक प्रभावित करता है वह पुराने मूल्यों एवं मनोवृति के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृति को स्थापित करता है।[२]

उद्देश्य

१. युवाओं का सामाजिक मीडिया से प्रभावित होने के कारणों की जानकारी प्राप्त करना।
२. सामाजिक मीडिया के प्रयोग से क्या युवाओं का सामाजिक संपर्क प्रभावित हो रहा है।
३. सामाजिक मीडिया के बढ़ते प्रयोग से युवाओं के हिंसात्मक एवं समाज विरोधी कार्यो की संलग्नता का अध्ययन करना।
४. सामाजिक मीडिया पर दिखाये कार्यक्रमों से युवाओं को होने वाले लाभ की जानकारी प्राप्त करना।
५. समाज में नैतिकता एवं सांस्कृतिक मूल्यों के पतन में मीडिया की भूमिका को समझना।
६. युवाओं के व्यक्तित्व विकास में मीडिया की भूमिका को समझना ।

शोध प्रारूप : यह शोध पत्र मध्यप्रदेश राज्य के सागर जिले की राहतगढ़ तहसील के युवाओं पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु इंटर कॉलेज एवं डिग्री कॉलेज में अध्यनरत

❑ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय स्वशासी कन्या उत्कृष्टता स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

छात्र/छात्राओं से प्रतिनिधित्व पूर्ण एवं पर्याप्त निदर्श का चुनाव करने हेतु दैव निदर्शन पद्धति से १०० युवाओं को अध्ययन की दृष्टि से सम्मिलित किया गया है। आंकड़ो को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है जिसमें युवाओं से मीडिया एवं उसके प्रयोग संबंधित प्रश्नों को समाहित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्यतः प्राथमिक स्त्रोतों के माध यम से जानकारी प्राप्त की गई है। आवश्यकतानुसार द्वितीयक समंकों का भी प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँः वर्तमान समय में सामाजिक मीडिया के विभिन्न साधनों ने युवा वर्ग को काफी प्रभावित किया है। आज का युवा वर्ग अपना अधिकांश समय इन साधनों में व्यतीत कर रहा है।

तालिका संख्या - ०१

सामाजिक मीडिया से प्रभावित होने के कारण

प्रभावित होने के कारण	संख्या	प्रतिशत
आकर्षित प्रसारित सामग्री एवं खबरों का प्रसारण	३५	३५
युवाओं के पास मनोरंजन के अन्य साधन न होना	०६	०६
दूर संचार साधनों की उपलब्धता	३१	३१
उपर्युक्त सभी	२५	२५
कुल	१००	१००

आज का युवा वर्ग सामाजिक मीडिया द्वारा प्रसारित खबरों से ज्यादा प्रभावित होता है तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक ३५ प्रतिशत निदर्श सामाजिक मीडिया में प्रसारित खबरों की रोचकता, आकर्षित प्रसारित सामग्री एवं नयी-नयी जानकारी प्राप्त करने हेतु सामाजिक मीडिया की विभिन्न साईट्स का प्रयोग करते हैं। ०६ प्रतिशत युवा वर्ग इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि उनके पास मनोरंजन के ज्यादा साधन न होने के कारण व इसके प्रयोग में आर्थिक भार कम होने के कारण प्रभावित हैं। वही ३१ प्रतिशत युवाओं के अनुसार दूरसंचार साधनों की सहज उपलब्धता भी इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है। २५ प्रतिशत युवा वर्ग उपर्युक्त सभी कारणों से सामाजिक मीडिया से प्रभावित होते है।

तालिका संख्या - ०२

मीडिया के प्रयोग से सामाजिक सर्म्पक प्रभावित होना

विचार	संख्या	प्रतिशत
सामाजिक सम्पर्क प्रभावित हुआ	६६	६६
सामाजिक सम्पर्क प्रभावित नहीं हुआ	२२	२२
बहुत कम	०६	०६
कुल	१००	१००

प्रस्तुत अध्ययन में युवाओं से जानने का प्रयास किया गया कि क्या मीडिया के प्रयोग से उनका सामाजिक संपर्क प्रभावित हुआ है जिसके उत्तर में अधिकांश ६६ प्रतिशत युवाओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनका सामाजिक संपर्क प्रभावित हुआ है। २२ प्रतिशत उत्तरदाता मानते है कि सामाजिक मीडिया के प्रयोग से सामाजिक सम्पर्क प्रभावित नहीं हो रहा है। जबकि ०६ प्रतिशत युवाओं का मानना है कि सामाजिक सम्पर्क तो प्रभावित हो रहा है किन्तु इसका असर बहुत कम हुआ है ।

तालिका संख्या - ०३

युवाओं की हिंसात्मक एवं समाज विरोधी कार्यो में संलग्नता के कारण

संलग्नता का कारण	संख्या	प्रतिशत
मीडिया / सामाजिक मीडिया द्वारा प्रसारित सामग्री	२६	२६
पारिवारिक माहौल	२१	२१
भौतिक वादी संस्कृति का अनुसरण	३५	३५
उपरोक्त सभी	१५	१५
कुल	१००	१००

वर्तमान समय में मीडिया के ऊपर यह आरोप लग रहे हैं कि समाज में युवाओं के हिंसात्मक एवं समाज विरोधी कार्यो में संलग्नता का मुख्य कारण मीडिया एवं इसके द्वारा प्रसारित सामग्री है। प्रस्तुत तालिका में विश्लेषण से स्पष्ट है कि २६ प्रतिशत यह स्वीकार करते हैं कि उनके हिंसात्मक व्यवहार हेतु सामाजिक मीडिया का निरन्तर बढ़ता प्रयोग एवं दिखाई गई खबरे एवं दृश्य जिम्मेदार हैं। २१ प्रतिशत के अनुसार कुछ परिवारों का माहौल भी युवाओं को हिंसात्मक एवं समाजविरोधी कार्य करने हेतु बढ़ावा देता है। अध्ययन में ३५ प्रतिशत युवाओं ने अपने व्यवहारों में बदलाव एवं समाज विरोधी कार्यो में संलग्नता हेतु भौतिकवादी संस्कृति एवं इसके तत्वों को प्रमुख कारण माना है एवं इस भौतिकवादी संस्कृति को प्रस्तुत करने में मीडिया जिम्मेदार है जबकि १५ प्रतिशत युवा उपरोक्त सभी कारणों को हिंसात्मक एवं समाज विरोधी कार्यो हेतु संलग्न कारण मानते है।

तालिका संख्या - ०४

युवाओं को मीडिया से हो रहे लाभ

संलग्नता का कारण	संख्या	प्रतिशत
स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता	-	-
शैक्षणिक ज्ञान में वृद्धि	-	-
राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम	-	-

की जानकारी		
उपरोक्त सभी	१००	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सभी उत्तरदाता इस बात को स्पष्टतः स्वीकार करते है कि सामाजिक मीडिया या दूरसंचार के वर्तमान में जो भी साधन प्रचलित हैं वे युवाओं को स्वास्थ के प्रति जागरूक कर रहे हैं। उनका शैक्षणिक ज्ञान का स्तर बढ़ रहा है जो उन्हें विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में सहायक सिद्ध हो रहा है। वर्तमान समय में देश विदेश के कोने-कोने की जानकारी पलक झपकते ही मिल जाती है। अतः सभी १०० प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक मीडिया को इसका मुख्य कारण मानते हैं।

तालिका संख्या - ०५

नैतिकता एवं संस्कृति के ह्रास में मीडिया की भूमिका

मीडिया की भूमिका है	संख्या	प्रतिशत
सहमत	२७	२७
असहमत	७३	७३
कुल	१००	१००

वर्तमान समय में मीडिया के ऊपर यह आरोप लगाये जा रहे हैं कि मीडिया ने समाज में नैतिकता एवं संस्कृति का पतन किया है। इस विषय पर जव युवाओं के विचारों को जाना गया तो मात्र २७ प्रतिशत उत्तरदाता नैतिक पतन हेतु मीडिया को उत्तरदायी मानते है जबकि ७३ प्रतिशत उत्तरदाताओं की राय में समाज के नैतिक मूल्यों एवं संस्कृति पतन हेतु मीडिया ही एक मात्र कारण नहीं है अन्य कारण भी उत्तरदायी हैं जो समाज में विघटन की प्रक्रिया चला रहे हैं।

तालिका संख्या - ०६

युवाओं के व्यक्तित्व विकास में मीडिया की भूमिका

युवाओं के विचार	संख्या	प्रतिशत
सकारात्मक भूमिका है	८१	८१
नकारात्मक भूमिका है	१६	१६
कुल	१००	१००

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ८१ प्रतिशत युवाजन समाज में मीडिया की भूमिका को अपने व्यक्तित्व विकास हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं क्योकि विभिन्न जन संचार माध्यमों के द्वारा युवाओं की सोच, आदतों एवं मनोवृतियों में परिवर्तन हुआ है। अध्ययन में मात्र १६ प्रतिशत युवा मीडिया की भूमिका को नकारात्मक मानते हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध में यह तथ्य मुख्य रूप से सामने आया है कि वर्तमान में युवा वर्ग सामाजिक मीडिया के किसी न किसी माध्यम से जुड़ा हुआ है एवं उसकी शीघ्र उपलब्धता के कारण उससे न केवल प्रभावित है अपितु अपने व्यक्तित्व विकास हेतु मुख्य साधन मानता है इसमें प्रसारित जानकारियों को अपने ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ जागरूकता एवं स्व प्रेरक के रूप में देखता है। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि समाज में अश्लीलता, नैतिक पतन हेतु मीडिया को एक कारक के रूप में देखा जा रहा है। किन्तु इस सत्य को अधिकांश युवा वर्ग स्वीकार करते हैं कि मीडिया के नकारात्मक प्रभाव की अपेक्षा उन पर मीडिया का सकारात्मक प्रभाव ज्यादा पड़ा है एवं इस पर प्रसारित जानकारियों से प्रभावित होकर आज का युवा वर्ग सफलता की उचाईयों को छू रहा है ।

सन्दर्भ

1. Joshi, S.R. 'Social and Cultural Impact of cable and satellite' : TV development and education communication unit ISRO, Ahamdabad, 1993
2. Shrma. R. K. "The role of media in society" Aman Publication, Sagar, 2003, p. 93

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

अनुसूचित जाति उत्पीड़न : कारण तथा प्रभाव

❑ सुनिल धावने
❖ श्रीमति रेखा धावने

अनुसूचित जाति उत्पीड़न से आशय सभी प्रकार के अन्याय, शोषण, पीड़ा व त्रास से है, जो समाज के उच्चवर्गीय, साधन सम्पन्न व राजनीतिक व्यक्तियों के इशारों पर निम्न व कमजोर वर्गों, जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं, पर किये जाते हैं। निन्दा, गाली, धमकी, सामाजिक बहिष्कार से लेकर बेगार करना, सम्पत्ति से बेदखल करना, शासन द्वारा आवंटित भूमि पर कब्जा न देना तथा शारीरिक क्षति पहुँचाना जिसमें मारना, पीटना, हत्या, बलात्कार, अस्पृश्यता, आगजनी एवं सम्पत्ति नष्ट करना आदि शामिल है।

वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में करीब २२ करोड़ अनुसूचित जाति की जनसंख्या है परन्तु सैकड़ों कानूनों, आर्थिक विकास योजनाओं के चलते यह समाज बदहाली से अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। अनुसूचित जाति वर्ग प्रत्येक क्षेत्र में उपेक्षित रहा है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और औद्योगिक क्षेत्र में अपेक्षा के अनुरूप इनको न्याय नहीं मिल पाया है। प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के इन्दौर जनपद के अंतर्गत अनुसूचित जातियों के उत्पीड़न के कारणों, प्रभावों तथा समाधान हेतु सुझावों को प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

वर्ष २००१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में करीब २२ करोड़ अनुसूचित जाति की जनसंख्या है। परन्तु सैकड़ों कानूनों, आर्थिक विकास योजनाओं के चलते यह समाज बदहाली से अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। अनुसूचित जाति वर्ग प्रत्येक क्षेत्र में उपेक्षित रहा है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और औद्योगिक क्षेत्र में अपेक्षा के अनुरूप इनको न्याय नहीं मिल पाया है।

भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक धर्म, सम्प्रदाय, प्रजाति के लोग निवास करते हैं। सन् २०११ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या १२१०१९३ हजार जिसमें स्त्रियों की जनसंख्या ५८६४६९ हजार एवं पुरूषों की जनसंख्या ६२३७२४ हजार है। भारत की कुल जनंसख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या का प्रतिशत १६.२५ है। भारत के मध्य में स्थित मध्यप्रदेश जिसकी सन् २०११ की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या ७२६२७ हजार, जिसमें पुरूषों की जनसंख्या ३७६१२ हजार एवं महिलाओं की जनसंख्या ३५०१५ हजार है। मध्य प्रदेश की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या का प्रतिशत १५.१७ है। मध्य प्रदेश के मालवा में स्थित इन्दौर जिला जिसकी कुल जनसंख्या वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार २१,७०,२९५ है जिसमें पुरूषों की जनसंख्या १,१२७,९१० एवं महिलाओं की जनसंख्या १,०४२,३८५ है।[१]

भारत सरकार गृह मंत्रालय ने सन् १९७४ से ऐसे अपराधों के आँकड़ें एकत्र करना आरंभ किया और बताया कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति पर हो रहे अत्याचारों को चार श्रेणी में बाँटा गया है - हत्या, गंभीर चोट, आगजनी और बलात्कार। इसके बाद इन आँकड़ों के संकलन में भारतीय दण्ड संहिता के ऐसे सभी अपराध सम्मिलित हुए जिनमें अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के व्यक्ति पीड़ित हुए।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश के जनपद इन्दौर पर आधारित है। अध्ययन में मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले की तहसीले इन्दौर, महू, सॉवेर और देपालपुर के अनुसूचित जाति वर्ग के पुरूष-महिलाओं पर २००१ से २००५ तक दर्ज उत्पीड़न के कुल ७४२ प्रकरणों में से २०० उत्पीडित प्रकरणों में जानकारी एकत्रित कर यह पता लगाने का प्रयास किया गया है कि अनुसूचित जाति वर्ग पर उत्पीड़न /अत्याचार हुए इसके क्या कारण है।[२] उत्पीड़न अत्याचार के प्रकरणों में पुलिस, प्रशासन एवं न्यायालय द्वारा क्या कार्यवाही की गई है। उत्पीड़ितों को किस समस्या का सामना प्रकार करना पड़ा तथा प्रशासन की कल्याणकारी एवं पुनर्वास योजनाओं का उन्हें कितना लाभ मिला, लाभ प्राप्त करने में क्या कठिनाई हुई।

अध्ययन के उद्देश्य : अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों में उत्पीड़ित

❑ शोध विभाग, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी ऑफ सोशल साइंसेज, महु, इन्दौर (म.प्र.)
❖ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र

व्यक्ति की सामाजिक,आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण। अत्याचारों के प्रकार एवं प्रकृति का अध्ययन, अत्याचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, एवं पूर्व तथा पश्चात की स्थिति का आकलन, उत्पीड़ितों के साथ प्रशासन, कानून की भूमिका एवं अन्य कार्य प्रणालीयों, उत्पीड़ितों के पुनर्वास एवं राहत कार्यो की विवेचना करना आदि रहे हैं।

उत्पीड़न के कारण :- विश्व में होने वाली प्रत्येक क्रिया एवं प्रतिक्रिया चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भौतिक, मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक, जीव वैज्ञानिक अथवा सांस्कृतिक हो, प्रत्येक के होने अथवा नहीं होने के लिए कोई न कोई कारण, अवश्य होता है बिना कारण कोई भी क्रिया, प्रतिक्रिया, कार्य, परिवर्तन नहीं होता है।

अपराध का जन्म प्राचीन ऐतिहासिक समय से एक दूसरे के विरूद्ध कब्जे के कारण हुआ है, उस समय जब मानव गुफाओं में निवास करते थे तब शक्तिशाली मानव दूसरे मानवों से खाद्य पदार्थ, निवास, गुफा तथा उसकी पत्नी को बलपूर्वक छीन लेता था। मानव के सामाजिक विकास के उद्भव में विरूद्ध कब्जे के लिए आचरण का निर्माण प्रथम बार किया गया, वह मानव की पहली आचरण संहिता मानव के द्वारा बनाई गई प्रथम विधी थी।

मानव समाज के विकास एवं मानव व्यवहार के कारण विरूद्ध कब्जे की प्रथम विधी से आज तक कई विधियों का निर्माण हुआ है। विधी निर्माण का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के आचरणों को नियंत्रित करना है, ताकि अन्य मनुष्यों के अधिकार सुरक्षित रह सकें। मानवों की तीन प्रमुख आवश्यकता क्रमशः भूख, यौन एवं घर है। मनुष्य की सभ्यता एवं मानव समाज के विकास के उपरोक्त तीनों आवश्यकतायें भी परिवर्तित हो गई है। परिवर्तन के इस सोपान में आज २१ वीं सदीं में भूख का स्वरूप, पेट की भूख के अतिरिक्त विलासिता, ऐश्वर्य, प्रस्थिति एवं स्वयं के श्रेष्ठ अस्तित्व की भूख में बदल गये हैं। मानव भूख की संतुष्टि की तलाश में अपने प्राकृतिक स्वभाव को भूलकर कृत्रिम स्वभाव, आचार एवं विचार में लीन हो गया है। यौन का उद्देश्य सन्तान उत्पत्ति से हटकर केवल यौन सन्तुष्टि में परिवर्तित हो गया है। मनुष्य का घर गुफा में से परिवर्तित होकर विशाल संगमरमर से निर्मित भवनों, अट्टालिकाओं के रूप में आ गया है जहाँ हर क्षण की आवश्यकताओं से सामंजस्य किया जा सके। जिसके कारण मनुष्यों का एवं समाज के अन्य घटकों का सुखी जीवन दुःखी हो गया। मानव अपने जीवन के तनावों एवं परेशानियों के कारण मानवता को भूल गये हैं तथा व्यक्ति स्वयं की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज के द्वारा निर्मित विधियों का उल्लंघन करने लगे एवं अपने साथ रहने वाले अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध हिंसा से संबंधित अपराध कारित करने लगे। उत्तरदाता उत्पीड़ितो के साथ उत्पीड़न के कई कारण है।

उत्पीड़न के कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत
जमीन संबंधी	३४	१७.००
गरीबी / अशिक्षा / ऋणग्रस्तता	१६	६.५
मजदूरी	०६	४.५
बन्धुआ मजदूरी	०५	२.५
अस्पृश्यता/जातिवाद/छुआछूत	६६	४८
राजनैतिक	०७	३.५
धार्मिक स्थल/सामुदायिक उत्सव/सार्वजनिक त्यौहार	०७	४.५
गुटबाजी	१२	६.०
संयोगवश	०६	४.५
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि १७ प्रतिशत उत्पीड़ित उत्तरदाताओं के साथ जमीन संबंधी विवाद, ६.५ प्रतिशत गरीबी/अशिक्षा/ ऋणग्रस्तता, ४.५ प्रतिशत मजदूरी, २.५ प्रतिशत बन्धुआ मजदूरी, ४८ प्रतिशत अस्पृश्यता/जातिवाद/छुआछूत, ३.५ राजनैतिक, ४.५ प्रतिशत धार्मिक स्थल/सामुदायिक उत्सव/सामुदायिक त्यौहार, ६ प्रतिशत गुटबाजी एवं ४.५ प्रतिशत संयोगवश कारणों से हुआ। अधिकांश अत्याचार/उत्पीड़न, अस्पृश्यता/जातिवाद/ छुआछूत के कारण हुआ। कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता/जातिवाद/छुआछूत अत्याचार उत्पीड़न का प्रमुख कारण है।

उत्पीड़न के प्रभाव :- मानव शरीर से कोमल होता है, उतना ही मन एवं भावना से भी कोमल होता है। भारतीय समाज में मानव का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है, उसकी योग्यता, आचरण, स्वभाव, रहन सहन पर दबाव पड़ता है, तो वह विचलित हो जाता है और विषम परिस्थितियों में अपने आपको लाचार सा महसूस करने लगता है। कोई भी घटना अपना प्रभाव परिणाम कहीं न कहीं तथा किसी न किसी रूप में अवश्य दर्शाती है। एक मनुष्य के आचरण एवं व्यवहार के कारण समाज में रहने वाले अन्य लोगों के सम्पूर्ण जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है। पुरूष एवं महिलाओं पर होने वाले उत्पीड़न/अत्याचार से संबंधित अपराधों का उनके शरीर, मन, सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है।

ऐसी स्थिति में कई बार इनकी जीवन दिशा परिवर्तित हो जाती है। इन्दौर जिले के अनुसूचित जाति वर्ग पर हत्या, हत्या का प्रयास, मारपीट, आगजनी, फसल को नुकसान पहुँचाना, अपहरण, बलात्कार, मानसिक प्रताड़ना, छेड़छाड़ एवं जमीन पर कब्जा करना आदि अत्याचार/उत्पीड़नों के कारण उन्हें एवं उनके परिवार को गम्भीर परिणाम भोगने पड़ते हैं।

उत्पीड़ितों की मानसिक क्षति :- मनुष्य की प्रसन्नता एवं दुःख का स्थान मनुष्य का मन होता है। उसके विरूद्ध उत्पीड़न/अत्याचार (अपराध) कार्यरत होने पर सबसे ज्यादा प्रभाव उसकी मानसिक दशा पर पड़ता है। जिसके कारण उसके विचार, आचरण एवं स्वयं के प्रति विचारों में परिवर्तन आता है। उत्पीड़ितों को स्वयं के साथ हुऐ अत्याचार/उत्पीड़न से गहरा आघात पहुँचाता है, वह स्वयं को घृणित समझने लगता है तथा घर से बाहर निकलने पर उन्हें व्यक्तियों से भय लगता है, जिसके कारण मानसिक अवसाद से पीड़ित हो जाते हैं।

शारीरिक क्षति एवं शारीरिक विकास पर प्रभाव :- मनुष्य मन एवं शरीर से एक दूसरे के स्वास्थ्य के लिए सहसम्बंध है, यदि मन प्रसन्न नही है, तब उसका प्रभाव शरीर की जीव रासायनिक प्रतिक्रियाओं पर पड़ता है, जिसके कारण शरीर में विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उत्पीड़न से संबंधित अपराधों के शारीरिक कष्ट तथा कान एवं आँखों पर प्रहार करने के परिणाम स्वरूप देखने व सुनने की क्षमता में कमी हो जाती है, व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है। शारीरिक उत्पीड़न के कारण वह अपना सामान्य दैनिक कार्य भी नही कर पाते हैं, जिसके कारण उन्हें शारीरिक एवं मानसिक कष्ट होता है, उनके शारीरिक क्षमता एवं जीवन की प्रत्याशाओं में कमी आती है। शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है।

सामाजिक प्रतिष्ठा पर प्रभाव :- विश्व का प्रत्येक मानव अपने समाज में स्वयं को श्रेष्ठ साबित करना चाहता है। समाज में श्रेष्ठता, आचरण, धन, यश, ज्ञान, प्रसिद्धी के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। मानव की सामाजिक प्रतिष्ठा भारतीय सामाजिक परिवेश में उसके चारित्रिक आचरण के मापदण्ड के अनुसार सुनिश्चित होती है। भारतीय समाज पुरूष प्रधान है तथा पुरूषों के लिए आचरण पर चरित्रता के मापदण्ड निर्धारित नहीं किये गये है। उत्पीड़न/अत्याचार के कारण मानव स्वयं ऐसा समझता है कि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी आई है। वही भारतीय पुरूषों की मानसिकता महिलाओं के सम्बंध में संकीर्ण है। कौमार्यभंग महिला चरित्रहीन समझती जाती है, इस कारण उसके सम्मान में कमी आती है। विवाहित महिलाओं पर उत्पीड़न से संबंधित अपराधों के कारण समाज के अन्य लोगो में पीड़िता अपना सम्मान खो देती है, जिसके कारण महिलाओं को मानसिक कष्ट झेलना पड़ते हैं।

पारिवारिक स्थिति पर प्रभाव :- परिवार मनुष्यों का वह निकटतम समूह है, जिसमें वे एक दूसरे के साथ सह जीवन एकल रूप से जीते है। परिवार समाज की इकाई है, परिवार में पति-पत्नी, बच्चे, माता-पिता साथ रहते हैं। उत्पीड़न के पश्चात पारिवारिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उत्पीड़न के पश्चात पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं पर अधिक प्रभाव पड़ता है। परिवार मे अपना सम्मान खो देती है। अविवाहित महिला उत्पीड़न का शिकार होने से परिवार के सदस्यों को समाज के समक्ष उपस्थित होने पर अपराध बोध होता है और माता-पिता उसकी स्वतंत्रता समाप्त कर देते हैं। वहीं पुरूषों पर ऐसा कोई बंधन नही होता है। उत्पीड़न के पश्चात पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति दयनीय हो जाती है और कई बार पारिवारिक जीवन नष्ट होने की कगार पर पहुँच जाता है या नष्ट हो जाता है।

आर्थिक प्रभाव :- मानव जीवन का शायद ही ऐसा कोई समय हो जबकि वह धन की प्राप्ति नहीं चाहता हो यद्यपि धन मनुष्य को भौतिक एवं मानसिक सुख प्रदान करता है। उत्पीड़ितों के प्रति हिंसा से संबंधित आर्थिक कारण की महत्वपूर्ण हैं। उत्पीड़ितों को आर्थिक रूप से प्रताड़ित करना मजदूरी करने वाली महिलाओं को शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना, फसल को नष्ट कर देना, घरों में तोड़-फोड़ करना आदि द्वारा उत्पीड़ितों को आर्थिक नुकसान पहुँचाया जाता है।

उत्पीड़न के कारण क्षति

कारण	संख्या	प्रतिशत
परिवार के सदस्य / मुखिया की हत्या	०७	३.५
शारीरिक क्षति	११८	५६.०
आर्थिक क्षति	०७	३.५
सामाजिक क्षति	१५	७.५
अचल सम्पत्ति की क्षति	३४	१७
मानसिक प्रताड़ना	१६	६.५
योग	२००	१००

तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है, कि ३.५ प्रतिशत परिवार के मुखिया /सदस्यों की हत्या, ५६ प्रतिशत उत्पीड़ितों को शारीरिक क्षति, ३.५ प्रतिशत को आर्थिक क्षति, ७.५ प्रतिशत को सामाजिक क्षति, १७ प्रतिशत को अचल सम्पत्ति की क्षति, ६.५ प्रतिशत को मानसिक प्रताड़ना की हानि/क्षति

हुई। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्पीड़ित उत्तरदाताओं को शारीरिक क्षति/ हानि हुई है।

निष्कर्ष एवं सुझाव : अनुसूचित जाति वर्ग के प्रति होनेवाले अत्याचार /अत्याचार का क्षेत्र बहुत व्यापक व विस्तृत है। इसमें ऐसे सभी प्रकार दबावों को शामिल किया जा सकता है, जो उन्हें सामान्य अधिकारों से वंचित करते हैं। अर्थात् कोई भी ऐसा कार्य उत्पीड़न/अत्याचार है जो जानबूझकर, धमकाकर या बलपूर्वक किया गया है। या इस प्रकृति का है, जिससे किसी अन्य व्यक्ति को किसी कार्य को करने से जिसे वह न करना चाहता हो विवश किया जाए, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक या सम्पतिक अथवा दोनो प्रकार की हानि हो अथवा अपमानित करने से व्यक्ति को आघात पहुँचा हो या उनका विनाश हुआ हो या उसके सम्मान को ठेस लगी हो।

यहाँ पर उत्पीड़न/अत्याचार से आशय अनुसूचित जाति वर्ग के पुरूष महिला पर उन सभी अपराधों (शारीरिक या सम्पतिक अथवा दोनों प्रकार की हानि पहुँचाने, अपमानित करने, मानसिक पीड़ा पहुँचाने) से है। जो जिला अनुसूचित जाति एवं जनजाति (थाना) प्रकोष्ठ में दर्ज किये हैं।

१. उत्पीड़न के प्रकरणों में ३.५ प्रतिशत की हत्याएँ हुई है।
२. उत्पीड़न के प्रकरणों में २१.५ प्रतिशत की हत्या के प्रयास हुए।
३. उत्पीड़न के प्रकरणों में ३३.५ प्रतिशत की सामान्य चोटें आई।
४. चयनित प्रकरणों में १.५ प्रतिशत की यहाँ आगजनी की घटना हुई।
५. उत्पीड़न के प्रकरणों में २.० प्रतिशत की फसल नष्ट/नुकसान पहुँचाने की घटना हुई।
६. उत्पीड़न के प्रकरणों में २.० प्रतिशत की अपहरण की घटना है।
७. उत्पीड़न के प्रकरणों में ४.५ प्रतिशत महिलाओं के साथ बलात्कार की घटना हुई।
८. उत्पीड़न के प्रकरणों में ६.५ प्रतिशत को मानसिक त्रास उठाना पड़ा।
६. उत्पीड़न के प्रकरणों में ५.५ प्रतिशत महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की घटना हुई।
१०. उत्पीड़न के प्रकरणों में १७ प्रतिशत की जमीन पर कब्जा करने की घटना हुई।

सुझाव

१. अधिनियमों के प्रावधानों और नीति के प्रभावी कार्यान्वियन सुनिश्चित करने के लिए तथा उत्पीड़ितों और लक्षित समूहों को न्याय एवं सेवा प्रदान करने के लिए राज्य व केन्द्र सरकार प्रभावी कदम उठाये।
२. पुलिस और प्रशासन तत्परता से कार्यवाही करें ताकि एक निर्धारित समय सीमा में माननीय न्यायालय द्वारा अपराधियों को दण्ड तथा उत्पीड़ितों को शीघ्र न्याय मिल सके।
३. कानूनों को और अधिक कठोर एवं दण्ड के प्रावधानों में और अधिक कठोरता करना आवश्यक है।
४. उत्पीड़ितों को उनके अधिकार एवं अत्याचार/ उत्पीड़न/ शोषण के विरूद्ध जागरूकता का विकास किया जाये।
५. न्यायालयीन कर्मचारीगण को व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षण देना चाहिए कि वे उत्पीड़ितों की समस्या का निदान करने में सहायता प्रदान करें एवं सदैव तत्पर रहे।
६. जटिल न्यायालयीन प्रणाली को सूक्ष्म व सुगम एवं कम खर्च वाली प्रणाली बनाया जाना चाहिए।
७. बलात्कार व छेड़छाड़ के प्रकरणों की सुनवाई हेतु महिला न्यायाधीश, महिला अधिवक्ता, एवं महिला कर्मचारियों एवं अधिकारियों के समक्ष बंद कमरे मे कार्यवाही हो, जिससे उत्पीड़ित महिला निडर होकर अपना पक्ष रख सके और आरोपियों को उचित दण्ड मिल सके।
८. बलात्कार के प्रकरणों में आरोपियों के मृत्युदण्ड दिये जाने का प्रावधान पारित किया जाये।
६. अनुसूचित जाति वर्ग में नही बल्कि समाज के सवर्ण उच्च वर्गीय वर्ग में भी विद्यमान कुप्रथाएं और कुसंस्कार समाप्त करने के लिए, जहाँ एक ओर सामाजिक आंदोलन की आवश्यकता है वही दूसरी ओर उत्पीड़ितों के लिए आर्थिक विकास करने का दायित्व शासन, राज्य व केन्द्र सरकार को करना चाहिए।
१०. राज्य व केन्द्र सरकार अनुसूचित जाति वर्ग के लिए पुनर्वास के लिए भूमि उपलब्ध कराये जिससे उनको अत्याचार मुख्य कारण ''खेती मजदूरी'' से छूटकारा मिल सके और स्वयं आत्मनिर्भर बन सकें।

संदर्भ

१. जनगणना रिपोर्ट २०११
२. जनपद इंदौर (म.प्र.) पुलिस रिकार्ड से प्राप्त आंकड़े

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण क्षेत्र में छात्र-छात्राओं द्वारा अधूरी शिक्षा छोड़ना एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डा० सीताराम

ग्रामीण समाज में निवास करने वाले व्यक्ति कृषि एवं श्रमिक कार्य करके अपना जीवन-यापन करते हैं उनकी आय सीमित होती है तथा मौसमी रोजगार के अनुसार आय होती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में छिपी बेरोजगारी भी पायी जाती है। गॉव में निवास करने वाले व्यक्तियों के पास पर्याप्त निवास की सुविधाओं का अभाव भी पाया जाता है। वहॉ के लोगों का जीवन सरल एवं सादा होता है वहॉ पर जीवन में कृत्रिमता नही होती है तथा अधिकतर पुरूष एवं महिलाये अशिक्षित तथा आधुनिक फैशन से दूर रहती हैं वे एक सुनिश्चित रोजगार कृषि एवं श्रमिक कार्य में सहयोंग करती हैं इसलिए वह बच्चों की शिक्षा के महत्व को गम्भीरता से नही समझ पाती हैं तथा आर्थिक समस्या, पारिवारिक समस्या, सामाजिक समस्या के कारण अपने बच्चों को स्कूल भेजना अच्छा नही समझते है।[1] इसमें अन्धविश्वास, परम्परायें, रीति -रिवाज तथा परिवारों में बुजुर्गों को इच्छायें इत्यादि प्रमुख बाधाएं हैं।

> "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों के सर्वांगीण विकास से है" महात्मा गांधी के इस कथन से मानव जीवन में शिक्षा की अद्वितीय भूमिका स्पष्टतः उजागर होती है। किन्तु ग्रामीण समाज में सीमित आय, बेरोजगारी, निर्धनता तथा शिक्षा के प्रति जागरूकता के अभाव आदि कारणों से लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते और जो बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ भी करते हैं वे शिक्षा अधूरी छोड़ देते हैं। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण क्षेत्र में छात्र-छात्राओं द्वारा अधूरी शिक्षा छोड़ने के कारण एंव समाधान खोजने की दिशा में एक प्रयास है।

शिक्षा पूरा न करने का कारण

१. परिवार की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना।
२. माता-पिता का अशिक्षित होना।
३. शिक्षा के प्रति जागरूकता का न होना।
४. परिवार का सौहार्दपूर्ण वातावरण का न होना।
५. माता-पिता एवं बच्चों में महत्वाकांक्षाओं का न होना।
६. मनोरंजन के साधनों का अभाव।

भारत में शिक्षा पूरी न कर पाना छात्र-छात्राओं के लिये गम्भीर समस्या है[2] उन्हें बाल श्रमिकों के कार्य में लगना पडता है और जीवन में अनेक रोजगार सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पडता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई०एल०ओ०) के अनुसार, वह कार्य जो बच्चों को उनके बचपन, उनकी क्षमता व गरिमा से दूर करता है जिसमें वह कार्य जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक व नैतिक रूप से बच्चों के लिये हानिकारक हो या वह कार्य जो उनके शैक्षिक कार्य में बाधा उत्पन्न करता हो तथा किसी भी प्रकार से उनके स्वस्थ बचपन के अनुभव को प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न करे।[3]

शिक्षा से व्यक्ति का मानसिक गुणों का विकास तो होता ही है वह अग्रेंजी भाषा एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर एक अच्छा रोजगार प्राप्त कर सकता है तथा अपनी प्रतिष्ठा के साथ-साथ आर्थिक स्थिति बेहतर बना सकता है। अपनी आने वाली पीढी को जीवन में अच्छा मार्गदर्शन दे सकता है।[4]

शोध प्रचना : प्रस्तुत अध्ययन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जनपद सहारनपुर के देवबन्द विकास खण्ड पर आधारित है जिसकी ६३ ग्राम पंचायतों में से १० का चयन क्रमांक सूची विधि से किया गया। जिसमें १८ से ६० वर्ष के आयु के कुल १००० हजार सूचनादाताओं में से दैव निर्दशन विधि के लाटरी पद्धति से कुल २०० सूचनादाताओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया। अध्ययन के अर्न्तगत प्राथमिक तथ्यों का संकलन, साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन के माध्यम से किया गया द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु, शोध ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाए, रिसर्च जर्नल, प्रशासनिक ऑकडों आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्यः-

१. ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र-छात्रायें शिक्षा बीच में क्यों छोड़ते है?
२. ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र-छात्राओं के माता-पिता के सामने शिक्षा बीच में छोडने की कौन-कौन सी समस्याये है?
३. ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र-छात्राओं के शिक्षा बीच में छोडने पर उनके माता-पिता सरकारी सहायता एवं समाज-सुधारकों से कितने सन्तुष्ट है?

इस प्रकार हम देखते है कि शोध के उदेदश्यों में उन कारणों

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, ठा० कृपाल सिंह मैमोरियल पी०जी० कॉलेज, देवबन्द, सहारनपुर (उ.प्र.)

एवं समस्याओं को ज्ञात करना है जो छात्र-छात्राओं को अपनी शिक्षा को बीच में छोडकर अन्य श्रमिक कार्यो में लगना पडता है। यहाँ शोध में यह भी फोकस रहेगा कि माता-पिता के सामने कौन सी समस्या अपने बच्चों को शिक्षा जैसे मौलिक अधिकार से क्यों वंचित कर रही है?

सारणी संख्या-१

सूचनादाताओं की शैक्षिक योग्यता

सूचनादाताओं की शैक्षिक योग्यता	आवृति	प्रतिशत
अशिक्षित	१०	५
प्राइमरी	१२०	६०
जू. हाई-स्कूल	४०	२०
हाईस्कूल	२०	१०
इण्टरमीडिएट	१०	५
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ६०.०० प्रतिशत सूचनादाताओं की शिक्षा प्राइमरी स्कूल तक ही सम्पन्न हुयी है दूसरे २० प्रतिशत सूचनादाताओं की शिक्षा जूनियर हाईस्कूल तक हुई है इसके बाद १० प्रतिशत सूचनादाताओं की शिक्षा हाईस्कूल तक की गयी है तथा केवल ०५ प्रतिशत सूचनादाता इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं और ०५ प्रतिशत सूचनादाताओं ने कोई शिक्षा प्राप्त नही की है वे अशिक्षित है । इस सारणी से यह निष्कर्ष सामने आया है कि सबसे अधिक सूचनादाता प्राइमरी तक की शिक्षा प्राप्त कर सके हैं।

सारणी संख्या-२

छात्र-छात्राओं की शिक्षा से सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि

सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होना	आवृति	प्रतिशत
हाँ	१३८	६९.००
नही	३८	१९.००
कोई उत्तर नही	२४	१२.००
योग	२००	१००.००

सारणी संख्या-२ के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अधिकांश ६९ प्रतिशत सूचनादाताओं ने शिक्षा से सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होना बताया है जबकि १९ प्रतिशत सूचनादाताओं ने शिक्षा से सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि के विरोध में अपने विचार स्पष्ट किये है तथा १२ प्रतिशत सूचनादाताओं ने कोई भी उत्तर नही दिया है। उनके विचारों में सामाजिक प्रतिष्ठा का शिक्षा से किसी भी प्रकार का हॉ या नही में होना नही दर्शाया है वह स्थिति स्पष्ट नही कर सके है इसलिए शिक्षा प्राप्त करने का सम्बन्ध सबसे अधिक सूचनादाताओं ने सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्धित बताया है।

सारणी संख्या-३

छात्र एवं छात्राओं में शिक्षा बीच में छोड़ने का विवरण

शिक्षा बीच में छोडने वाले छात्र एवं छात्रायें	छात्र एवं छात्राओं की आयु (वर्ष में)	आवृति	प्रतिशत
छात्र	०५-२०	७८	३९.००
छात्रायें	०५-१८	१२२	६१.००
योग		**२००**	**१००.००**

सारणी संख्या-३ का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ६१.०० प्रतिशत छात्राओं की आयु ०५ वर्ष से लेकर १८ वर्ष थी जिन्होने अपनी शिक्षा बीच में छोडी है तथा ३९ प्रतिशत छात्रों की आयु ०५ से २० वर्ष थी जिस समय उन्होंने अपनी शिक्षा बीच में छोडी है। इससे स्पष्ट है कि छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की संख्या शिक्षा बीच में छोडने वालों में अधिक है।

सारणी संख्या-०४

शिक्षा पर ग्रामीण क्षेत्र के वातावरण का प्रभाव

विवरण	आवृति	प्रतिशत
कृषि कार्य	१०७	५३.५०
श्रमिक कार्य	९३	४६.५०
योग	२००	१००.००

सारणी संख्या-४ के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ५३.५० प्रतिशत सूचनादाताओं ने ग्रामीण क्षेत्र का वातावरण कृषि कार्य शिक्षा को प्रभावित करता है तथा ४६.५० प्रतिशत सूचनादाताओं ने स्पष्ट किया कि श्रमिक कार्य भी छात्र-छात्राओं को शिक्षा प्राप्त करने में एक बाधा है अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज में प्रकृति की निकटता उन्हें शिक्षा से दूर करती हैं।

सारणी संख्या-०५

छात्र-छात्राओं द्वारा शिक्षा बीच में छोड़ने के कारण

कारण	आवृति	प्रतिशत
परिवार की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना	११४	६७.००
माता-पिता का अशिक्षित होना	२६	१३.००

परिवार का सौहार्दपूर्ण वातावरण का न होना	२२	११.००
माता-पिता का शिक्षा के प्रति जागरूक न होना	२०	१०.००
माता-पिता एवं बच्चों में महत्वाकांक्षा का न होना	१८	०६.००
योग	२००	१००

सारणी संख्या-६ से स्पष्ट है कि ६७.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने बच्चों के शिक्षा बीच में छोडने का कारण परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होना बताया और १३.०० प्रतिशत ने माता-पिता का अशिक्षित होना स्वीकार किया जबकि ११.०० प्रतिशत ने परिवार का सौहार्दपूर्ण वातावरण का न होना बताया। और १०.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने माता-पिता का शिक्षा के प्रति जागरूक न होना बताया है जबकि ०६.०० प्रतिशत ने माता-पिता एवं बच्चों में महत्वाकांक्षा का न होना बताया है। उपरोक्त सारणी से यह निष्कर्ष निकलता है कि परिवार की आर्थिक स्थिति शिक्षा बीच में छोडने के लिये जिम्मेदार है।

सारणी संख्या-०६

शिक्षा बीच में न छोड़ने हेतु सुझाव

सुझाव	आवृति	प्रतिशत
परिवार के वरिष्ठ सदस्य का स्थायी रोजगार होना चाहिए	१०२	५१.००
छात्र-छात्राओं की पढाई का पूरा खर्च सरकार को उठाना चाहिये	६०	३०.००
परिवार को सरकार आर्थिक सहायता उपलब्ध कराये	२०	१०.००
आवास के निकट विद्यालय हों	१८	०६.००
योग	२००	१००.००

उपर्युक्त सारणी संख्या-०७ के अवलोकन से स्पष्ट है कि ५१.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने परिवार के वरिष्ठ सदस्य का स्थायी रोजगार होना चाहिये तथा ३०.०० प्रतिशत सूचनादाताओं ने शिक्षा का सम्पूर्ण खर्च सरकार को उठाना चाहिये और १०.०० प्रतिशत ने परिवार को सरकार आर्थिक सहायता उपलब्ध कराये एवं ०६.००प्रतिशत ने कहा है कि आवास के निकट विद्यालय का निर्माण होना चाहिये।

निष्कर्ष :- भारत सरकार ने शिक्षा का मूल अधिकार अधिनियम बनाकर शिक्षा को व्यक्ति के मूल अधिकारों में सम्मिलित कर दिया है। परन्तु ग्रामीण समाज में छात्र-छात्राओं का बडी संख्या में हाईस्कूल से पूर्व शिक्षा छोड़ देना देश के लिये एक चिन्ता का विषय है। शोध में देखा गया कि ग्रामीण समाज में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राओं के माता-पिता का स्थायी रोजगार न होना मुख्य समस्याओं में हमारे सामने आया है। दूसरा कारण छात्र के माता-पिता का अशिक्षित होना, जागरूकता का अभाव, परिवार का सौहार्दपूर्ण वातावरण का न होना तथा माता-पिता एवं बच्चों में शिक्षा के प्रति महत्वाकांक्षाओं का अभाव पाया जाना।

ग्रामीण समाज में अधिकतर छात्र-छात्राओं के माता-पिता का व्यवसाय श्रमिक कार्य है जिससे उन्हें पर्याप्त आय न होने के कारण परिवार की सभी आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव नही है इसलिए छात्रों की शिक्षा बीच में ही समाप्त कर उन्हें अपने साथ व्यवसाय में लगा लेते हैं, जिससे उनकी पारिवारिक आय में वृद्धि हो सके।[५] क्योंकि परिवार में बच्चों की अधिक संख्या भी इसका कारण है जिससे परिवार के सभी सदस्यों की तरफ पर्याप्त ध्यान नही दिया जाता है और बच्चे शिक्षा से विमुख हो जाते हैं जिससे उनका मन पढाई में नही लगता है इससे बाल-श्रम को बढावा मिलता है।[६]

ग्रामीण समाज में स्थायी रोजगार की व्यवस्था सरकार को करना चाहिए लोगों को अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिये जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिये।

सन्दर्भ

१. प्रसाद, विष्णुदेव,'बाल श्रमिकों की जीवन पद्धति एवं कार्य की दशा', भारतीय सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी अन्वेषिका, अंक १, २०१२ पृ० २१-२६

२. श्रीवास्तव, भारत भूषण, 'सरकार डाल रही मजदूरों के हक पर डाका', सरस सलिल पत्रिका अक्टूबर द्वितीय, २०१५ पृ०-१२,१३

३. बहुगुणा, उमा, 'बाल श्रमः सामाजार्थिक एवं शैक्षणिक विवेचना', राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा रिसर्च जर्नल अंक-जुलाई-दिसम्बर २०१३, पृ. -५६-५७।

४. आहूजा, राम, 'सामाजिक समस्याये', रावत पब्लिकेशन, २०००, पृ. ८४-८५।

५. गिरी, पी.वी., 'लेबर प्राब्लम इन इण्डियन इण्डस्ट्री', एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, १६६० पृ.३६१

६. लाल, आर.बी., 'भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्यायें', रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ २००३, पृ. ५-६

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

पश्चिमी संस्कृति का युवाओं पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ० अरूण कान्त पाण्डेय**

पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय जीवन एवं समाज के प्रत्येक पक्ष को अतिशय प्रभावित किया है। इसके प्रभाव से न केवल कुछ पुराने विचारों व संस्थाओं में परिवर्तन हुआ है अपितु अनेक नवीन संस्थाओं का प्रारंभ भी हुआ है। पश्चिमी संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव पश्चिमी शिक्षा के माध्यम से हुआ है इससे लोगों में न केवल समतावादी लौकिक एवं तार्किक दृष्टिकोण का विकास हुआ अपितु नैतिकता के नवीन मूल्य भी विकसित हुए। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत युवा पीढ़ी पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को जानने का प्रयास किया गया है।

विश्व के किसी भी समाज के उत्थान व पतन में उसकी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा का विशेष महत्व रहता है और इन सभी को गति प्रदान करने का दायित्व युवा पीढ़ी पर होता है। भारतीय युवाओं के ज्ञान का लोहा पूरा विश्व मानता है। भारतीय समाज के युवाओं की संस्कृति व शिक्षा पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभावों को जानने से पूर्व भारतीय संस्कृति व शिक्षा से जुड़े कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला जाए तभी हमें दोनो के बीच का भेद समझ आ पायेगा। भारत विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारत में अनेक विदेशी आक्रमण हुए और विदेशी शासकों ने अनेक वर्षों तक इस देश पर शासन किया फिर भी इस देश की मूल सभ्यता एवं संस्कृति पर आंच नही आई। भारतीय संस्कृति अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने के पथ पर निरन्तर अग्रसर है। मानव समाज की सामूहिक उपलब्धियों का कोष ही उसकी संस्कृति है। जीवन के विभिन्न क्षेत्र में जब किसी देश के लोग कुछ ऐसा विशिष्ट अर्जित करते हैं जिसका भावी पीढ़ियों के लिये महत्व होता है तब वह उनकी संस्कृति कहलाती है। सामाजिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में संस्कृति को समझाते हुये बोगार्डस लिखते हैं कि ''किसी समूह के कार्य एवं विचार करने के सभी तरीकों का नाम ही संस्कृति है।''[1] वहीं हर्षकोविट्स के शब्दों में ''संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है''[2] और रूथ बैनेडिस्ट ने संस्कृति को एक प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया है कि व्यक्ति की भांति संस्कृति भी विचार और क्रिया का एक बहुत कुछ सुस्थिर प्रतिमान है।''[3] अधिकांश विद्वानों का मत है कि संस्कृति को सामाजिक प्रगति व सामााजिक परिवर्तन से कभी भी पृथक नही किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार भारत के मनीषियों ने अध्यात्म को स्वीकार किया है। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ गुणों को शताब्दियों से आदर्श माना गया है। इसमें धृति, क्षमा, संयम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य, आक्रोश, विद्या और विज्ञान ऐसे आदर्श हैं जो मनुष्य को देवत्व की ओर प्रेरित करते हैं। भौतिकवादी संस्कृति में ऐसे गुणों को स्थान नही मिलता। मनुष्य के कुछ अनिवार्य दायित्व भी भारतीय संस्कृति में बताये गये हैं। दूसरों को हानि पहुँचाने वाले कर्म न करने का परामर्श दिया गया है।''[4] भारतीय समाज में विभिन्न संस्थाएँ युवाओं का समाजीकरण करने का कार्य कर रही हैं, शिक्षा व संस्कृति को आत्मसात कराने में संस्थाओं की भूमिका अहम रहती है। वर्तमान परिस्थिति में ये संस्थाएँ भी पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित हुई हैं जिसे हम समझने का प्रयास करेगें। पश्चिम के देशों ने निःसंदेह विज्ञान, तकनीकी, स्वास्थ्य आदि अनेक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी आविष्कार कर मानव को भौतिक सुख सुविधायें प्रदान करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। भौतिकवादी समाजीकरण से ही आज की युवा पीढ़ी में घृणा, ईर्ष्या, हिंसा, स्वार्थ अति महत्वाकांक्षा आदि तत्वों का प्रसार हुआ है।

पश्चिमी शिक्षा से पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शिक्षा का आशय स्पष्ट कर लिया जाये। सामान्य अर्थ में शिक्षा के द्वारा मानव ने अपनी मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगति की है, जिसका मौलिक उद्देश्य ज्ञानरूपी प्रकाश को प्रदान कर अज्ञानरूपी अंधेरी रात्रि के अंधकार को दूर करना है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा, प्रतिष्ठा तथा सामाजिक प्रस्थिति का प्रतीक बनकर रह गई है। आज की शिक्षा नितांत भौतिकवादी है जो केवल आर्थिक उद्देश्यों तक ही सिमट कर सीमित हो गई है, जबकि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण उत्पन्न करे। विख्यात दार्शनिक जे०कृष्णामूर्ति का मानना है कि तथ्यों, आंकड़ों को मस्तिष्क में एकत्रित कर लेना वास्तविक ज्ञान नही

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, आर्य महिला पी०जी० कालेज, शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

है। ये तो केवल सूचनायें हैं और सूचनाओं को ज्ञान नही कहा जा सकता। ऐसी शिक्षा जो मनुष्य में सद्गुणों की खान उत्पन्न कर सके वही सच्ची शिक्षा है। भारतीय समाज में प्रतियोगात्मक एवं विषम परिस्थितियों में भी यह धारा सूखने नही पाई है। पश्चिमी शिक्षा ने चारित्रिक संकट को ही जन्म नही दिया अपितु हमें अनैतिक, अनुशासनहीन तथा दिशाहीन बना दिया है। ''अंग्रेजी'' को शिक्षा का माध्यम बनाते समय विधाताओं का यह अनुमान था कि इससे सारे हिन्दू समाज को ईसाई बनाने में आसानी होगी। उनका यह भी ख्याल था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग तन से चाहे भारतीय रहें, परन्तु मन से अंग्रेज अवश्य बन जायेगें। उनकी यह आशा पूरी नही हुई। हजारों लाखों हिन्दू ईसाई अवश्य हुए। उनका रहन-सहन और आचार व्यवहार भी यूरोपियन ढ़ंग का बन गया। अंग्रेज लोगों ने उनको अपना समकक्ष नही माना, परन्तु लोग अपने को साहब मानने लग गये और अपने भाईयों को हीनदृष्टि से देखने लगे। कुछ ही वर्ष के बाद अंग्रेजी शिक्षा से और अंग्रेजों के सम्पर्क से भारत में अद्भुत जागृति हुई और इसकी ऐसी प्रबल लहर उठी कि हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज दोनों सबल और सशक्त हो गये।''[५]

युवाओं में प्रचीन समाज की तरह आज प्रथाओं तथा रूढ़ियों के आधार पर व्यवहार करने के तरीकों में परिवर्तन आया है। वर्तमान स्थिति में युवाओं ने तार्किक क्षमता पर बल दिया है। उन्होने कहा कि आज वैज्ञानिक युग है। इस युग में रूढ़ियों के लिये कोई स्थान नही है, आज शिक्षित, प्रशिक्षित युवा अपने विवेक के आधार पर अपने जीवन जीने का निर्णय लेने लगा है। पश्चिमी शिक्षा ने इस विवेक के द्वारा रूढ़िवादी कृत्यों को दूर करके आधुनिक समाज का निर्माण किया है। नैतिकता में उचित और अनुचित की भावना निहित है। इसमें व्यक्ति आन्तरिक रूप से दायित्व की दृढ़ भावना से प्रेरित होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के आचरण में चारित्रिक दृढ़ता पायी जाती है। हॉबहाउस ने इस बात का दावा किया है कि ''नैतिक विचारों का विकास एक तार्किक नैतिकता के आदर्श की दिशा में हुआ है, उसने नैतिकता के विकास और सामान्य सामाजिक विकास में सामंजस्य स्थापित किया है।''[६] वेस्टरमार्क ने ''विभिन्न समाजों के नैतिक नियमों में पायी जाने वाली समानता का उल्लेख किया किया है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट किया है कि नैतिक विचारों के विकास के फलस्वरूप अब उनमें सहिष्णुता आई है और ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में नैतिकता के ऊपर तर्क का प्रभाव निरन्तर बढ़ता ही जायेगा।''[७] नैतिक नियमों की उत्पत्ति का स्रोत आध्यात्मिक है, आध्यात्मिक शक्तियां इन नियमों का पोषण करती हैं। नैतिकता के विकास और मानव इतिहास की नैतिक सम्बन्धी विचारों में काफी सामंजस्य है। भारतीय समाज की युवा पीढ़ी परम्परागत समाज व आधुनिक समाज जो कि पश्चिमी संस्कृति से काफी हद तक प्रभावित हुआ के मध्य सामंजस्य स्थापित करने में अपने को असहज अनुभव करने लगी है, आज की परिस्थिति में युवाओं में अपने को स्थापित करने के लिये जिन संसाधनों की आवश्यकता है उनमें परम्परागत समाज उन्हे उनसे प्रतिस्पर्धा करने की चुनौती देते दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय युवा पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति को अपनाने में कोई परहेज नहीं करती, युवाओं को अपना लक्ष्य दिखाई पड़ता है न कि नैतिकता और भारतीय समाज के अध्यात्म में बताये गये सद्गुण। हालांकि सद्गुणों के अभाव में युवा पीढ़ी मूल्य विहीन होती जा रही है लेकिन इससे ये युवा पीढ़ी अन्जान दिखाई पड़ती है।

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

१. युवाओं पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव देखना।

२. बदलते सामाजिक प्रतिमानों का स्वरूप समझना।

उपकल्पनाः अध्ययन के उददेश्यों को दृष्टिगत रखते हुये निम्नलिखित उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है -

१. भारतीय युवा पीढ़ी आध्यात्मिकता से भौतिकता की ओर आकर्षित हो रही है जो कि पाश्चात्य संस्कृति की विशेषता है।
२. भारतीय शिक्षा पद्धति को नकारते हुये उनमें पश्चिमी शिक्षा के प्रति आकर्षण व्याप्त है।
३. युवा वर्ग अपनी मातृभाषा के प्रति हीन भावना से ग्रस्त है तथा अंग्रेजी भाषा की तरफ आकर्षित है।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत शोध में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा महानगर को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित किया गया है। महानगर होने के कारण पश्चिमी संस्कृति का स्नातक स्तर के युवाओं पर विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन प्रभावों की प्रकृति, अध्ययन के उद्देश्यों तथा परीक्षणार्थ उपकल्पनाओं की दृष्टि से अन्वेषणात्मक तथा विवरणात्मक शोध प्रारूप का चुनाव किया गया है। शोध अध्ययन के अन्तर्गत दैव प्रणाली के द्वारा आगरा महानगर के तीन महाविद्यालय (आगरा कालेज, सैन्ट जॉन्स कालेज तथा आर०बी०एस० कालेज) के १००-१०० विद्यार्थियों का चयन लॉटरी प्रणाली के आधार पर किया गया है। इस प्रकार इस अध्ययन में कुल ३०० विद्यार्थियों का चयन कर एक ऐसा प्रयास किया है जो कि अध्ययन क्षेत्र के सभी युवाओं का प्रतिनिधित्व करेगें। तथ्यों का संकलन

साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा किया गया है।

उपलब्धियाँः प्रस्तुत अध्ययन में स्नातक स्तर के युवाओं पर पश्चिमी संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को जानने का प्रयास किया गया है। सारिणी संख्या १ में संस्कृति में परिवर्तन के आधार पर युवाओं के विचारों को जाना गया है।

सारिणी संख्या १

संस्कृति में परिवर्तन के आधार पर

परिवर्तन आवश्यक है	संख्या	प्रतिशत
हॉं	२०५	६८.३३
नहीं	९५	३१.६७
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या १ के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि युवाओं का सर्वाधिक प्रतिशत (६८.३३) संस्कृति में परिवर्तन को आवश्यक मान रहा है वहीं ३१.६७ प्रतिशत युवा संस्कृति में परिवर्तन को आवश्यक नही मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि युवाओं के व्यक्तित्व विकास में परिवर्तनशील संस्कृति की भूमिका भी अहम है।

सारिणी संख्या २

भाषा के बदल लेने से आधुनिक होना सम्भव

आधुनिक होना सम्भव है	संख्या	प्रतिशत
हॉं	४१	१३.६७
नहीं	२५९	८६.३३
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या २ से प्राप्त ऑंकड़ों में समग्र का १३.६७ प्रतिशत युवा भाषा बदल लेने से आधुनिक होना सम्भव है ऐसा स्वीकार करता है जबकि ८६.३३ प्रतिशत युवाओं ने अपने विचार रखते हुए बताया कि भाषा को बदल लेने मात्र से ही आधुनिक होना सम्भव नही है। सारिणी से स्पष्ट है कि अधिकांश युवाओं ने स्पष्ट किया कि जब तक व्यक्ति में अर्न्तविचार नही परिवर्तित होते तब तक वह आधुनिक नही हो सकता।

सारिणी संख्या ३

युवाओं की शिक्षा के माध्यम के आधार पर

शिक्षा का माध्यम	संख्या	प्रतिशत
हिन्दी माध्यम	१७०	५६.६७
अंग्रेजी माध्यम	७४	२४.६७
दोनो माध्यम	५६	१८.६६
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या ३ में सूचनादाताओं की सर्वाधिक संख्या (५६.६७ प्रतिशत) हिन्दी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने वालों की रही, २४.६७ प्रतिशत युवाओं ने अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त की और दोनों (हिन्दी व अंग्रेजी) माध्यमों से शिक्षा ग्रहण करने वाले युवाओं की संख्या १८.६६ प्रतिशत रही है। सारिणी से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर युवाओं ने स्पष्ट किया है कि शिक्षा का माध्यम शिक्षा पर काफी प्रभाव डालता है। युवाओं ने बताया कि भारतीय समाज में अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम को अधिक तीव्रगति से विकास करने का कार्य कान्वेन्ट स्कूल, क्रिश्चियन कालेज आदि कर रहे हैं।

सारिणी संख्या ४

रूढ़िवादिता के स्थान पर विवेक को बढ़ावा

बढ़ावा दिया	संख्या	प्रतिशत
हॉं	२१५	७१.६७
नहीं	८५	२८.३३
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या ४ से स्पष्ट होता है कि पश्चिमी शिक्षा ने रूढ़िवादी कृत्यों को दूर कर विवेक को बढ़ावा दिया है क्योंकि समग्र में इसे ''हॉं'' के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या सर्वाधिक (७१.६७ प्रतिशत) रही है तथा नही कहने वाले युवाओं की संख्या मात्र २८.३३ प्रतिशत है।

सारिणी संख्या ५

नैतिक मूल्यों के आधार पर

नैतिक मूल्यों को भूलते जा रहे हैं	संख्या	प्रतिशत
हॉं	२७१	९०.३३
नहीं	२९	९.६७
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या ५ से स्पष्ट है कि युवा नैतिक मूल्यों को भूलते जा रहे हैं। समग्र की अधिकांश संख्या (९०.३३ प्रतिशत) ने ''हाँ'' कहकर इसे स्वीकार किया है जबकि ९.६७ प्रतिशत युवाओं ने ही इसे ''नही'' कहकर बताया है। इससे स्पष्ट है कि पश्चिमी संस्कृति ने नैतिक मूल्यों के पतन में अहम भूमिका का निर्वाह किया है।

सारिणी संख्या ६

नैतिक गुणों में परिवर्तन से अपराधों में वृद्धि

अपराध को बढ़ावा मिला है	संख्या	प्रतिशत
हॉं	२५४	८४.६७
नहीं	४६	१५.३३
योग	३००	१००.००

सारिणी संख्या ६ के आधार पर स्पष्ट है कि युवाओं में नैतिक गुणों में परिवर्तन से अपराधों को बढ़ावा मिला है जिसे

चयनित ३०० युवाओं में से ८४.६७ प्रतिशत युवाओं ने ''हॉं'' कहकर स्वीकार किया है तथा ''नही'' कहने वालों की संख्या मात्र १५.३३ प्रतिशत रहह है।

निष्कर्षः उपर्युक्त समस्त सारिणियों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो रहा है कि भारतीय समाज का आधार स्तम्भ कही जाने वाली युवा पीढ़ी पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव विभिन्न पहलुओं पर दिखाई दिया है। शोधकर्ता ने अध्ययन से पूर्व जिन उपकल्पनाओं का निर्माण किया था उनका परीक्षण अध्ययन क्षेत्र में जाकर प्राप्त आंकड़ो के आधार पर शत प्रतिशत सही परिणाम के रूप में प्राप्त हुआ है। शोधकर्ता ने अपने अध्ययन दौरान युवाओं की शिक्षा प्रणाली, सामाजिक प्रतिमान, रूढ़िवादी विचारों, नैतिक गुणों के पतन में किस प्रकार से पश्चिमी संस्कृति की भूमिका रही है उसका आंकलन विभिन्न तथ्यों से स्पष्ट किया है और देखा है कि युवाओं में पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भाषा व तर्क के आधार पर भारतीय समाज की युवा पीढ़ी लौकिकता की ओर अग्रसर हुई है, अंग्रेजी शिक्षा ने युवाओं में नैतिकता का पतन किया है नैतिक गुणों के अभाव में युवा पीढ़ी अपराधिक कृत्यों को अपनाकर भारतीय सामाजिक विकास का बाधक बनी है। पश्चिमी शिक्षा व संस्कृति ने व्यक्तिवादी विचारों कों विकसित कर सामाजिक विघटन को भी जन्म दिया है। अन्ततः कहा जा सकता है कि वर्तमान युवा पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति के सकारात्मक विचारों को अपनाकर भारतीय संस्कृति के आधार अध्यात्म के साथ सामंजस्य स्थापित कर विकास के मार्ग को गति प्रदान करे तभी युवा पीढ़ी की सार्थकता सिद्ध हो पायेगी।

संदर्भ

१. बोगार्डस, इमौरी एस० : ''सोशियोलॉजी,'' मैकमिलन, कम्पनी न्यूयार्क, १६५०, पृ०-६५

२. हर्षकोविट्स एम०जे०: ''मैन एण्ड हिज वर्क्स,'' अल्फ्रेड ए०नूफ, न्यूयार्क, १६५६, पृ०-१७

३. बैनेडिक्ट, रूथः ''पैटर्न ऑफ कल्चर'', रूटलैज एण्ड कीजन पॉल (लिमि०), लंदन, १६०४, पृ० ४७

४. अस्थाना, प्रतिमाः ''भारतीय अस्मिता के शिखर,'' आगरा, १६६८, पृ०१-११

५. शर्मा, मथुरा लालः ''भारत और विश्व इतिहास की रूपरेखा,'' राजस्थान पुस्तक मन्दिर, जयपुर, पृ० ६६

६. हॉबहाउस, एल०टी० : ''मॉरल्स इन इवोल्यूशन'', चैपमैन एण्ड हॉल, लंदन, १६०६

७. वेस्टरमार्क, ई०: ''द ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेन्ट ऑफ मॉरल आइडियाज,'' मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लंदन, १६१२

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

महिला बाल-श्रमिकों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ० जोहरा जबी**

भारत में महिला बाल-श्रम समस्या अत्यंत जटिल है। आज महिला बाल-श्रम एक सामाजिक बुराई के रूप में समाज में व्याप्त है। महिला बाल-श्रम बालिकाओं के शारीरिक,मानसिक तथा नैतिक विकास में तो बाधक है ही, साथ ही भावी पीढ़ी के भविष्य को भी अन्धकार पूर्ण बना रहा है। भारत में निर्धनता, अधिक जनसंख्या, कुपोषण, बेरोजगारी एवं अशिक्षा की समस्याएं हैं। फलस्वरूप बचपन की स्वाभाविक एवं मौलिक प्रवृत्ति से दूर रहकर बचपन का विनाश करते हुये एक महिला बाल-श्रमिक व्यस्क होते-होते गम्भीर बीमारियों की जकड़ में आ जाती है। प्राकृतिक परिवेश के विपरीत क्रियाकलापों के कारण व्यस्क महिला श्रमिक बनते वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम होकर एक कुशल मजदूरी के लिये अनुपयुक्त हो जाती है। शारीरिक अक्षमता के कारण वह अपने परिवार व समाज के लिए भार स्वरूप हो जाती है। वास्तव में महिला बाल-श्रम एक समस्या ही नहीं वरन् एक रोग के रूप में समाज को खुलेआम चुनौती दे रहा है। प्रस्तुत लेख महिला बाल-श्रमिकों की स्थिति को उजागर करने की दिशा में एक प्रयास रहा है।

महिला बाल-श्रम का इतिहास शायद इतना ही पुराना है जितना कि मानव इतिहास। बहुत से विकासशील तथा नये औद्योगिक विकासोन्मुख देशों में महिला बाल-श्रम प्रथा एक अभिशाप है। महिला बाल-श्रम प्रथा अल्पविकसित देशों के स्वरूप को धूमिल करती है, क्योंकि विकासशील देशों में महिला बाल-श्रम अत्यन्त दयनीय अवस्था में हैं। वास्तव में महिला बाल-श्रम प्रायः सभी विकसित देशों में भी प्रचलित है।

भारत में महिला बाल-श्रम समस्या अत्यन्त जटिल है। आज महिला बाल-श्रम एक सामाजिक बुराई के रूप में समाज में व्याप्त हैं। महिला बाल-श्रम प्रथा बालिकाओं के शारीरिक,मानसिक तथा नैतिक विकास में तो बाधक है ही,साथ ही भावी पीढ़ी के भविष्य को भी अन्धकारमय बना रहा है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के इतिहास में प्राचीन काल में भी महिला बाल-श्रम प्रथा विद्यमान थी। बालिकाओं को भी वस्तुओं की भाँति खरीदा और बेचा जाता था।[1] आइने अकबरी में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जिससे स्पष्ट उल्लेख है कि गरीब बालिकाओं को धनी परिवारों के कार्य करने पड़ते थे। उन दिनों बालिकाओं को गुलामों के रूप में देखा जाता था।[2]

भारत में निर्धनता, अधिक जनसंख्या, कुपोषण, बेरोजगारी एवं अशिक्षा की समस्याएं हैं। फलस्वरूप बचपन की स्वाभाविक एवं मौलिक प्रवृत्ति से दूर रहकर बचपन का विनाश करते हुए एक महिला बाल-श्रमिक व्यस्क होते होते गम्भीर बीमारियों की जकड़ में आ जाती है। शारीरिक अक्षमता के कारण वह अपने परिवार व समाज के लिए भारस्वरूप हो जाती है। वास्तव में महिला बाल-श्रम एक समस्या ही नहीं वरन् एक रोग के रूप में समाज को खुलेआम चुनौती दे रहा है। इन परिस्थितियों में अधखिली कली जैसी बालिका खिलने से पहले ही मुरझाने को मजबूर है।

खतरनाक उद्योगों एवं व्यवसायों में महिला बाल-श्रमिकों को कार्य करने के लिए बाध्य किये जाने से महिला बाल-श्रमिकों को अपना स्वास्थ्य और कोमल भावनाओं की बलि चढ़ानी पड़ती हैं। लाखों छोटी-छोटी महिला बाल-श्रमिकों को काम पर भेजकर उनका बचपन छीना जाता हैं। जिन महिला बाल-श्रमिकों को स्कूल में होना चाहिए था, वे बहुत कम वेतन पर और अस्वास्थ्यकर दशाओं में विभिन्न कार्यों पर लगी हैं।

वास्तव में आज बाल महिला बाल-श्रम की जड़े इतनी गहराई तक जा पहुँची हैं, कि इनको उखाड़ना अत्यंत कठिन होता जा रहा है। बाल-श्रम उन्नमूलन हेतु विभिन्न प्रयास हो रहे हैं। वर्ष १९९० को बालिका वर्ष के रूप में मनाया गया। इसका उद्देश्य विश्व के सभी बच्चों के कल्याण के लिए कार्य करना रखा गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने बाल अधिकार घोषणा पत्र भी निर्गत किया था जिसमें कहा गया कि मानव जाति पर बच्चों का यह ऋण है कि वे उन्हें अपनी श्रेष्ठतम विरासत सुलभ करें और अपने इस कर्तव्य पालन के लिए सभी दायित्वों की पूर्ति हेतु वचनबद्ध हो। परन्तु सच्चाई यह है कि बाल-कल्याण की घोषणाएं सिर्फ कागजो पर ही होती है। हम महिला बाल-श्रमिकों के कल्याण,सुधार,शिक्षा, विकास और अधिकारों के लिए बड़ी-बड़ी बातें तो करते है, परन्तु उनके क्रियान्वयन के प्रति गम्भीर नहीं होते हैं।

दुर्भाग्य से आजादी के ६८ साल बाद भी यह सपना तार-तार हैं। आज भारत में इस चेतना की कमी हैं एवं हम देखते हैं कि

❑ **प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, एम.जी.एम. कॉलेज, सम्भल (उ.प्र.)**

महिला बाल-श्रमिक किस प्रकार गंदे कपड़े पहनकर होटल व घरों में बर्तन साफ करने व चाय काफी बनाने का कार्य करती हैं, तथा पीतल जैसे खतरनाक उद्योग में अपने माता-पिता के साथ हाथ बटाती हैं, और पालक भी यही चाहते हैं कि उनकी रोजी रोटी में वे मद्द करें। इस प्रकार महिला बाल-श्रमिकों को स्कूल, खेलने का मैदान एवं उत्तम भोजन से दूर रखा जाता है।

प्रयुक्त अवधारणाऐं: महिला बाल श्रमिकः- कोई भी ऐसी महिला जिसने अपनी आयु का चौदहवां वर्ष पूरा नहीं किया है वह 'बालिका' हैं तथा कोई भी बालिका जो ऐसे कार्य में लगी है जो मनोरंजन और पढ़ाई लिखाई करने के अवसरों में बाधा डालता हैं, 'महिला बाल-श्रमिक' कहलाती है।

ऐसी कोई भी बालिका जिनकी उम्र १४ वर्ष से कम है उन्हें किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य में नियोजित नहीं किया जाये।[३] इस प्रकार महिला बाल-श्रमिक वह बालिका है जिसने अपनी आयु का चौदहवां वर्ष पूरा नहीं किया हे और वेतन लेकर या बिना वेतन के काम कर रही है।

आपरेशन रिसर्च ग्रुप,बड़ौदा के अनुसारः- एक महिला बाल-श्रम वह बालिका है जिसको सर्वेक्षण के आधार पर चुना जाता है, जो ५-१५ वर्ष की आयु वर्ग में आती हैं। साथ ही जो वेतन लेकर या बिना वेतन के लाभ के लिए परिवार के साथ या परिवार से अलग पूरे दिन कार्य करती है, महिला बाल-श्रमिक कहलाती हैं।[४]

शोध के उद्देश्यः- प्रस्तुत शोध में जिन उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है वे निम्नलिखित हैंः-

१. महिला बाल-श्रमिकों का अध्ययन करना।
२. महिला बाल-श्रमिकों की पारिवारिक संरचना का अध्ययन करना।
३. महिला बाल-श्रमिकों के रहन सहन का अध्ययन करना।
४. महिला बाल श्रमिकों की पारिवारिक आय का अध्ययन करना।

उपकल्पनाऐंः- प्रस्तुत शोध से जुड़ी उपकल्पनाओं का वर्णन निम्नवत् हैः-

१. महिला बाल श्रमिक की पारिवारिक स्थिति निम्न स्तर की हैं।
२. महिला बाल श्रमिक अशिक्षित परिवार से सम्बन्धित हैं।
३. महिला बाल-श्रमिक पिछड़ी जाति से आती हैं।
४. महिला बाल-श्रमिक कार्य अनच्छिापूर्वक कुरती हैं।

शोध प्रारूप :- प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर के विभिन्न कार्यो में संलग्न महिला बाल-श्रमिकों पर आधारित है। तथ्यों के संकलन हेतु ५० महिला बाल-श्रमिक उत्तरदाताओं को सोद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर चयनित किया गया हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में महिला बाल-श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि एवं कार्य की दशाओं का वर्णन किया गया है। महिला बाल-श्रमिकों से तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में महिला बाल-श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हुए हैंः-

आयुः- व्यक्ति की स्थिति निर्धारण में आयु का विशिष्ट महत्व है। वर्तमान में जहाँ अर्जित गुणों को प्राथमिकता दी जाती हैं, वहाँ महिला बाल-श्रमिकों को उचित विकास तथा निर्धनता को दूर करने के लिये शैक्षिक महत्व के साथ आयु का विशेष महत्व है। इसी संबंध में 'बाल-श्रमिकों' की आयु को तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या- ०१

महिला बाल-श्रमिकों का आयु विवरण

आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत
८-१०	१६	३२
१०-१२	२६	५२
१२-१४	०८	१६
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक ५२ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक १०-१२ वर्ष की आयु के अन्तर्गत आती हैं। लगभग एक तिहाई ३२ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक ८-१० वर्ष आयु वर्ग में आती हैं तथा १६ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक १२-१४ वर्ष आयु वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महिला बाल-श्रमिक शिक्षा प्राप्त करने की आयु में विभिन्न कार्यो में लग जाती हैं।

जातिः- भारतीय समाज मुख्य रूप से एक जाति प्रधान समाज रहा है। यहाँ सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति प्रथा ही हैं। चयनित महिला बाल-श्रमिकों से जाति के सम्बन्ध में निम्न आंकड़े प्राप्त हुए हैंः

तालिका संख्या ०२

महिला बाल-श्रमिकों का जाति विवरण

जाति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	०९	१८
पिछड़ी	३९	७८
अनुसूचित	०२	०४
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता हैं कि ७८ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक पिछड़ी जाति के अन्तर्गत पाई गईं तथा शेष १८

प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक सामान्य जाति के अन्तर्गत पाई गई। मात्र ०४ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आती हैं। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि पिछड़े वर्ग का स्तर नीचे गिरा हुआ है।

पारिश्रमिकः- श्रम के बदले पारितोषिक प्राप्त करना ही पारिश्रमिक कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक। महिला बाल-श्रमिक के पारिश्रमिक भुगतान से सम्बन्धित विवरण निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या ०३

महिला बाल-श्रमिकों को पारिश्रमिक का भुगतान

पारिश्रमिक	संख्या	प्रतिशत
दैनिक	०७	१४
साप्ताहिक	२०	४०
मासिक	२३	४६
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि ४६ प्रतिशत पारिश्रमिक भुगतान साप्ताहिक पाया गया तथा उससे कम ४० प्रतिशत मासिक पाया गया। सबसे कम १४ प्रतिशत दैनिक पाया गया।

कार्य की प्रकृतिः महिला बाल-श्रमिका को कार्य पर रखने से अस्थायी रूप से परिवार को लाभ हो सकता है, परन्तु परेशान और नाखुश बचपन अपने भावी विकास और वृद्धि के लिए मजबूत आधार प्रस्तुत नहीं कर पाता। प्रस्तुत शोध में महिला बाल-श्रमिकों की कार्य के प्रति रूचि सम्बन्धित विवरण को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया हैं।

तालिका संख्या ०४

महिला बाल-श्रमिकों की कार्य की प्रकृति

कार्य के प्रति रूचि	संख्या	प्रतिशत
इच्छापूर्वक	१६	३२
अनिच्छापूर्वक	३४	६८
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अधिकांश महिला बाल-श्रमिक (६८ प्रतिशत) कार्य अनिच्छापूर्वक करती हुई पायी गई। लगभग एक तिहाई ३२ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक कार्य इच्छापूर्वक करती हुई पाई गई। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि महिला बाल-श्रमिकों को कार्य करने के लिए विवश किया जाता हैं।

आयः- आय पारिवारिक भरण पोषण का साधन है। पारिवारिक आय स्रोत का परिवार के विकास से सीधा सम्बन्ध हैं। परिवार के सदस्यों की आमदनी ही परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होती है। प्रस्तुत शोध में महिला बाल-श्रमिकों के आय सम्बन्धी विवरण को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया हैं।

तालिका संख्या - ०५

महिला बाल-श्रमिकों की आय

आय वर्ग	संख्या	प्रतिशत
१००-२००	२७	५४
२००-३००	२३	४६
३०० से अधिक	००	००
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक ५४ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिकों की मासिक आय १००-२०० आय वर्ग के अन्तर्गत पाई गई तथा ४६ प्रतिशत २००-३०० आय वर्ग के अन्तर्गत पाई गई। ३००-४०० आय वर्ग के अन्तर्गत संख्या शून्य पाई गई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वाधिक महिला बाल-श्रमिकों की मासिक आय मात्र १००-२०० आय वर्ग के अन्तर्गत आती है, जो कि बहुत कम है।

पारिवारिक संरचनाः- परिवार पति-पत्नी तथा उनकी सन्तानों से मिलकर बनता हैं। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। प्रस्तुत शोध में पारिवारिक संरचना का विवरण तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया हैं।

तालिका संख्या- ०६

महिला बाल-श्रमिकों के परिवार की संरचना

सदस्य	संख्या	प्रतिशत
२-५	०४	०८
५-८	२३	४६
८-१२	२३	४६
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ५-८ तथा ८-१२ आय वर्ग दोनों में संख्या ४६ प्रतिशत पाई गई तथा २-५ आयु वर्ग में ०८ प्रतिशत संख्या पाई गई। ५-८ व ८-१२ सदस्य संख्या का उच्च प्रतिशत यह दर्शाता है कि महिला बाल-श्रमिकों के परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है। उनके परिवारों में सदस्यों की प्रति परिवार औसत संख्या ७.६४ सदस्य है जो अधिक कही जा सकती है।

आर्थिक स्तर :- महिला बाल-श्रमिकों की पारिवारिक आय का मुख्य स्रोत पिता का वेतन ही है। इसी को आधार मानकर इनके सामाजिक स्तर का निर्धारण आर्थिक स्तर के आधार पर किया जाता हैं। प्रस्तुत शोध में आर्थिक स्तर सम्बन्धित विवरण तालिका में निम्न रूप में दर्शाया गया हैं।

तालिका संख्या - ०७

महिला बाल-श्रमिकों का अर्थिक स्तर

जीवन स्तर	संख्या	प्रतिशत
निम्न स्तर	४३	८६
मध्यम स्तर	०७	१४
उच्च स्तर	००	००
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिला बाल-श्रमिक ८६ प्रतिशत निम्न स्तर से सम्बन्धित पाई गई तथा शेष १४ प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक मध्यम स्तर से सम्बन्धित पाई गई, उच्च स्तर के अन्तर्गत प्रतिशत शून्य रहा। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वाधिक महिला बाल-श्रमिक निम्न आर्थिक स्तर से आती हैं।

शिक्षाः- शिक्षा का तात्पर्य अंधकार से प्रकाश की ओर तथा अज्ञानता से ज्ञान प्राप्त करने की ओर बढ़ने का प्रयास है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति परिवार और समाज और अज्ञानता के अंधेरे में भटकता रहता हैं। प्रस्तुत शोध में महिला बाल-श्रमिकों की पारिवारिक शिक्षा संबंधी विवरण निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका संख्या - ०८

महिला बाल-श्रमिकों के परिवार में शिक्षा का स्वरूप

शैक्षिक योग्यता	संख्या	प्रतिशत
शिक्षित	००	००
साक्षर	२०	४०
अशिक्षित	३०	६०
कुल योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ६० प्रतिशत महिला बाल-श्रमिक अशिक्षित परिवार से सम्बन्धित पाई गई तथा मात्र ४० प्रतिशत साक्षर परिवार से सम्बन्धित पाई गईं। शिक्षित परिवार से कोई महिला बाल श्रमिक नहीं आती हैं अर्थात अशिक्षा भी महिला बाल-श्रम को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी है।

निष्कर्षः- उपर्युक्त सारणियों से प्राप्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि महिला बाल-श्रमिक गरीबी,अशिक्षा, और अधिक जनसंख्या के कारण बन जाती हैं। गरीबी एवं अशिक्षा के साथ ही महिला बाल -श्रम प्रथा के लिए तरह-तरह के अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियाँ भी जिम्मेदार हैं। महिला बाल-श्रमिक नाम मात्र की मजदूरी पर विभिन्न असहनीय दशाओं में कार्य करती हैं। वे अनुशासन में रहकर कार्य करती हैं, उन्हें आसानी से डरा-धमकाकर अधिक घंटों तक कार्यरत रखा जा सकता है। वे अपने शोषण का कोई प्रतिरोध नहीं कर पाती हैं। प्राकृतिक परिवेश के विपरीत क्रियाकलापों के कारण व्यस्क महिला श्रमिक बनते वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम होकर एक कुशल मजदूरी के लिए अनुपयुक्त हो जाती हैं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि महिला बाल-श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए उनके माता-पिता को जागरूक करने की आवश्यकता है साथ ही सरकार की जो नीतियाँ व कार्यक्रम हैं, उनको उन महिला बाल-श्रमिकों तक पहुँचाना आवश्यक हैं। स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य व अधिकार सम्बन्धी जानकारी उनको समय-समय पर देना चाहिए। उनको स्कूल में प्रवेश कराने में सहायता करना व चिकित्सीय सुविधाएँ सुलभ कराना चाहिए। महिला बाल-श्रम प्रथा को रोकने के लिए सबसे पहले हमें अपने पड़ोस व मौहल्ले से शुरूआत करनी होगी। अपनी क्षमता के अनुसार उनकी सहायता करनी होगी। सबको स्वयं आगे आकर इस कुप्रथा के प्रति एकजुट होना होगा,तभी इस कुप्रथा का अन्त हो सकता है।

सन्दर्भ

१. सैयद अली, नवाज जैदी : ''चाइल्ड लेबर'' ए केन्सर ऑफ इण्डियन सोसायटी, मानक पब्लिकेशन,दिल्ली २००६ पृ.,१४१

२. पन्त : ''इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया अन्डर द मुगल,'' १९६०, पृ. ६४।

३. भारत का संविधान अनुच्छेद २४।

४. आहुजा,दमन एण्ड जैन महावीर : '' एकॉनॉमिक ऑफ चाइल्ड लेबर-ए मिथ'' कुरूक्षेत्र, मई वोल्युम ४६(८) १९९८ पृ.४।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

इतिहास लेखन में दलित वर्ग

❑ डॉ. योगेश कुमार

दलित शब्द का उपयोग समाज के उन समूहों के लिए किया जाता है, जिन्हें अतीत में अछूत समझा जाता रहा है, और उनमें से अधिकांश आज भी अस्पृश्यता की पीड़ा को झेल रहे है।[१] दलित शब्द नया है, परन्तु इससे जुड़ी धारणा बहुत पुरानी है। संस्कृत में दलित 'शब्द का मूल' दल है जिसका अर्थ है, तोड़ना फोड़ना, पीसना इत्यादि। खुद इस शब्द में ही कर्म मेल-जोल और एक वैध सामाजिक दर्जे से वंचित रखा जाना निहित है। आज 'दलित' शब्द बदलाव और क्रांति का प्रतीक बन चुका है।[२] प्रस्तुत लेख दलितों पर लिखे गए इतिहास के बारे में है, न कि वास्तविक इतिहास पर। दलितों के इतिहास पर एक सर्वांगीण विचार प्रस्तुत करने का श्रेय डॉ. भीमराव अंबेडकर को जाता है। १९१७ में प्रकाशित अपने लेख (कास्ट इन इंडिया) में वे समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से जातियों के उद्‌भव पर विचार करते हैं।[३] उनका मानना है कि हालांकि वैदिक काल के भारतीय समाज में अन्य समकालीन समाजों की तरह वर्ग-विभाजन था। लेकिन जातियाँ नहीं थीं। जाति की परिभाषा देते हुऐ वे लिखते है यह सजातीय विवाह के आधार पर बनती है, अर्थात् जब सजातीय विवाह को बहिर्जातीय विवाह से उत्कृष्ट मान लिया जाता है तो जाति का जन्म होता है।[४]

दलित शब्द का उपयोग समाज के उन समूहों के लिए किया जाता है, जिन्हें अतीत में अछूत समझा जाता रहा है, और उनमें से अधिकांश आज भी अस्पृश्यता की पीड़ा को झेल रहे है।[१] दलित शब्द नया है, परन्तु इससे जुड़ी धारणा बहुत पुरानी है। संस्कृत में दलित 'शब्द का मूल' दल है जिसका अर्थ है, तोड़ना फोड़ना, पीसना इत्यादि। खुद इस शब्द में ही कर्म मेल-जोल और एक वैध सामाजिक दर्जे से वंचित रखा जाना निहित है। आज 'दलित' शब्द बदलाव और क्रांति का प्रतीक बन चुका है। प्रस्तुत लेख दलितों पर लिखे गए इतिहास के बारे में है

अतः जब ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए सजातीय विवाह को अपना लिया और अन्य जातियों ने भी उनका अनुसरण करते हुए इस परंपरा को स्वीकार कर लिया तब से जाति भारतीय समाज की एक मूल इकाई बन गई। इस तरह धीरे-धीरे ज्यादातर लोग जाति के घेरे में आते गए और जो लोग इस घेरे से बाहर रहे उन्हें एक तरह से समाज से बहिष्कृत अर्थात् आउट कास्ट या निर्वासित कर दिया गया। इस तर्क में अंतर्निहित है कि इन्हीं बहिष्कृत लोगों से दलित या अछूत जातियों का निर्माण हुआ।[५]

'अनटचेबल्स : हू वेयर दे एंड व्हाई दे बिकेम अनटचेबल्स' में अंबेडकर ने अस्पृश्यता और अस्पृश्य जातियों के निर्माण के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की है।[६] १९४८ में प्रकाशित यह लेख अंबेडकर के द्वारा पुरातन साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर दलितों के इतिहास की जानकारी प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार समाज के कुछ लोगों को दो प्रक्रियाओं के तहत अछूत बनाया गया। इसके अंतर्गत अंबेडकर ने समाज को अलग-अलग भागों में विभक्त कर देख है।

पहली प्रक्रिया काफी हद तक सार्वभौमिक है। सभ्यता के प्रारंभ में प्रत्येक समाज में कुछ लोग ऐसे होते थे, जो पराजित कबीले के थे और उनके कबीलों के टूटने के बाद वे समाज में समाहित न हो सकें।

अंबेडकर इन लोगों को 'ब्रोकेन मैन' अर्थात् टूटे हुए लोग या दलित कहते हैं। ये लोग बस्तियों के बाहर रहते थे और अन्य कबीलों के आक्रमणों से बस्ती के लोगों की रक्षा करते थे। अतः एक प्रकार से ये लोग निरंतर बहिष्कृत ही थे। हालांकि अछूत नहीं थे। दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया जिसने इन्हें अछूत बना दिया उसका वर्णन अंबेडकर इस प्रकार करते हैं कि, ये लोग, टूटे हुऐ लोग थे जिसे अम्बेडकर ने ब्रोकेन मैन कहा जो बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।[७]

रामशरण शर्मा द्वारा लिखित शूद्राज इन एनशिएंट इंडिया (१९५८) दलितों पर अकादमिक स्तर पर लिखा हुआ पहला ग्रंथ माना जा सकता है। रामशरण शर्मा द्वारा इसके अंतर्गत दलितों की प्राचीन स्थिति का अवलोकन किया गया। लेखक के अनुसार, शुद्रों का इतिहास का प्रत्येक चरण अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तन और इसके फलस्वरूप होने वाले वर्ग-विभाजन से जुड़ा हुआ था। ऋग्वैदिक काल में आर्य समाज मुख्य रूप से कबीलाई, पशुचारक और एक तरह से

❑ इतिहास विभाग, राँची (झारखण्ड)

समतामूलक था। खेती अभी पूरी तरह से स्थापित नहीं हो पाई थी। इस युग के अंत में अनेक उदाहरण मिलते हैं, जब पराजित आर्य या अनार्य कबीलों के लोगों को शूद्र बनाया गया। परन्तु बड़ा परिवर्तन तब आया जब कृषि अर्थव्यवस्था का पूरा विकास हो गया और बड़े पैमाने पर मजदूरों की जरूरत महसूस होते लगी। बड़े भूमिपतियों को अपने खेतों और बागानों में काम करने के लिए ज्यादा श्रमिकों की आवश्यकता महसूस होने लगी। अतः इस काल में शूद्र वर्ण का निर्माण हुआ, अर्थात् ऐसे लोगों का जिन्हें सामाजिक और कानूनी तौर पर निरंतर मजदूर और सेवक के रूप में देखा जा सकें। फलतः शूद्रों और अन्य वर्णों के बीच का अंतर और अधिक होने लगा। इस विभेद को धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों ने न्यायोचित बना दिया। शूद्रों को वैदिक शिक्षा, धार्मिक कर्मकांडों और उपनयन से वंचित कर दिया गया।[८]

प्राचीन भारत में अछूतों के इतिहास पर विवेकानंद झा ने अपने लेखों में ध्यान आकर्षित किया है। स्टेजेज इन दि हिस्टरी ऑफ अनटचेबल्स १९७५ और चांडाल एण्ड द ओरिजिंस ऑफ अनटचेबिलिटी २००४ में ऋग्वैदिक काल से लेकर सन् १२०० ईसवी तक के दलितों के इतिहास के काल का सर्वेक्षण किया है। उन्होंने अछूतों के इतिहास को चार चरणों में विभाजित किया है। ऋग्वैदिक काल में कोई अछूत नहीं था न ही कोई समाज से बहिष्कृत था। हालांकि उत्तरवैदिक काल में चंडाल को अत्यंत घृणा के साथ देखा जाता था, परन्तु वे अछूत नहीं थे। वैदिक काल की समाप्ति के बाद दूसरे चरण की शुरूआत हुई जो ६०० ईसा पूर्व से २००ई. तक माना जा सकता है, इस काल में कुछ हद तक अस्पृश्यता की भावनाएँ उभरने लगीं। चांडाल न सिर्फ प्रदूषित बल्कि अछूत भी समझे जाने लगे। उन्हें सामाजिक और धार्मिक स्तर पर अशुभ और अमंगलकारी माना जाने लगा। तीसरे चरण (सन् २०० से ६००ई. तक) में अस्पृश्यता से संबंधित प्रतिबंध अधिक सशक्त होते गए और नए समूह अछूतों की श्रेणी में शामिल किए जाते रहे जिससे उनकी संख्या में काफी वृद्धि हो गई। चौथे चरण में सन् ६०० से १२००ई. तक के अनगिनत नए समूहों को अछूत करार देकर उनको अपवित्र घोषित किया गया। इस प्रकार से दलित जातियों की संख्या में अपरिमित वृद्धि हुई और उनके खिलाफ प्रतिबंध और कड़े होते गए।[९]

सुवीरा जायसवाल की पुस्तक 'ओरिजिन, फंक्शन एंड डाइमेंशंस ऑफ चेंज २००५' में जाति व्यवस्था एवं उसके उद्भव और विकास पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया। उनके अनुसार जातियों का उद्भव सामाजिक प्रक्रिया के अंतर्गत हुआ और यह वर्ण व्यवस्था के मानक पर आधारित या जातियों का निर्माण और विशेष रूप से सजातीय विवाह की प्रथा निरंतर सुदृढ़ होते पितृसत्ता के कारण विकसित हुई। जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के मूल में निरंतर सुदृढ़ होती पितृसत्तात्मकता, शारीरिक श्रम के प्रति अरूचि और तिरस्कार की भावना और श्रमिकों को नियंत्रित करने की आवश्यकता थी।[१०]

के.आर. हनुमंतन का दक्षिण भारत में जाति व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए अपने लेख 'इवोल्यूशन आफ अनटचेबिलिटी इन तमिलनाडु २००४' महत्वपूर्ण है, जिसके अन्तर्गत उनका मानना है कि अस्पृश्यता वस्तुतः वर्ण व्यवस्था का ही उतोत्पाद है। पहले समाज में सम्मानित और प्रतिष्ठित थीं, अब धीरे-धीरे अछूतों की श्रेणी में शामिल होती गई तमिलनाडू में संगम काल में छुआछूत की भावना नहीं थी। लेकिन उत्तर संगम काल में इस मनोवृत्ति की शुरूआत हुई और अस्पृश्यता का जोर बढ़ा। लेखक के अनुसार, दक्षिण भारत में संगम युग में अस्पृश्यता नहीं मौजूदा थी। उत्तर संगम काल में बौद्ध और जैन धर्मों के अहिंसा-सिद्धांत के कारण इसका आविर्भाव हुआ और पल्लव युग में इस भावना का विस्तार हुआ। चोल काल में अलग अछूत गांवों का जिक्र पाया जाता है और विजय नगर शासनकाल में आछूत जातियों की संख्या काफी बढ़ जाती जाती है।[११]

इन सभी विद्वान लेखकों के आधार पर कहा जा सकता है कि दलित जातियों का निर्माण एक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी जो विभिन्न चरणों में चलती रही और इसका सामाजिक वर्गों में विस्तार होता गया। दूसरी इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि बौद्ध और जैन धर्मों के अन्तर्गत हालांकि एक समतामूलक भावना थी और विशेष रूपसे बौद्ध धर्म में दलितों को भी स्थान मिला लेकिन वे भी अस्पृश्यता की भावना से मुक्त नहीं हो पाये। समाज में अस्पृश्यता को अपना लिया गया था जिसके कारण जाति व्यवस्था बढ़ती गयी, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक व्यवस्था पर पड़ा।[१२]

आधुनिक भारत में दलितों की व्यवस्था पर एलिनर जीलियट और गेल आमवेट का काम विशेष महत्व रखता है एलिनर जीलियट की पुस्तक 'फ्राम अनटचेबल्स टू दलित्स एजेस आन अंबेडकर मूवमेंट', में उन्होंने मुख्य रूप से दलित राजनीति, साहित्य और धर्म का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।[१३]

गेल आमवेट कि पुस्तक 'कल्चरल रिवोल्ट इन कोलोनियल सोसाइटी १९७६' में अब्राह्मण आन्दोलन पर केन्द्रित है, जिसमें उन्होंने महाराष्ट्र के जाति-विरोधी विचारक और कार्यकर्ता

ज्योतिबा फूले के जीवन, विचारधारा और कार्यकलापों पर विचार किया गया है। दलित्स एंड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन १६६४ में उन्होंने देश के विभिन्न भागों, महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में दलित आंदोलन के उद्भव एवं विकास पर चर्चा की है। इन आन्दोलन की अलग-अलग भूमिका पर प्रभाव डाला गया है।[१४]

इन आन्दोलनों कि दो धाराएँ थीं, एक तो सुधारवादी धारा जो कुछ ऊपरी और सतही परिवर्तन ही चाहती थी और जिसका नेतृत्व कई मायनों में गैर-दलित जातियों के लोग कर रहे थे। दूसरी धारा प्रमुखतः जाति विरोधी एवं व्यवस्था विरोधी थी। यह आन्दोलन समाज में भेदभावयुक्त ढांचे को बदलकर एक समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहता था, जो अवधारणा मूल रूप से जाति विरोधी धारा को गुण सुधारवादी धारा से अलग करती थी। हिन्दू धर्म का विरोध १६२० और १६३० के दशकों में देश के विभिन्न भागों में उग्र दलित आन्दोलन विकसित हो गए थे जो मूल निवासी होने की पहचान पर आधारित थे और अपने को आदि आन्दोलन के नाम से संबोधित करते थे।[१५]

आमवेट की पुस्तक 'सीकिंग वेगमपुर' में आमवेट ने जाति-विरोधी बुद्धिजीवियों के सामाजिक-आर्थिक दृष्टि का पन्द्रहवीं से बीसवीं सदी तक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ओवेन लिंच की किताब 'दि पोलिटिक्स ऑफ अनटचेबिलिटी', उत्तर प्रदेश के दलित वर्ग पर लिखा एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। एस. एम. माइकल द्वारा संपादित पुस्तक दलित्स इन माडर्न इंडिया १६६६ में कई महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह है जो दलितों के इतिहास, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनकी सांस्कृतिक धरोहर पर प्रकाश डालता है।[१६]

बारबरा जोशी की किताब, 'डेमोक्रेसी इन सर्च ऑफ इक्वलिटी १६८२' में आजादी के बाद भारत में दलितों की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर विचार किया गया है। इस प्रकार अलग-अलग पुस्तकों के माध्यम से दलितों के इतिहास को प्रतिबिंबित करने की चेष्टा की गयी है जिसके अंतर्गत सामाजिक विषमता को चित्रित किया गया है।

संदर्भ

१. ठाकुर हरिनारायण, 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६, पृ. १६५-१६६
२. जेलियट ई., 'फ्रॉम अनटचेबल्स टु दलित एस्सेज ऑन द अम्बेडकर मूवमेंट', नई दिल्ली, २००१, पृ. ३५-३५
३. अंबेडकर वी.आर., 'कास्ट्स इन इंडिया इन राइटिंग्स एंड स्पीसेज (कंप्लाइड वाई वसंत मून) एजुकेशन डिपार्टमेंट', गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, वाल्यूम १, पृ. १८-१६
४. वही, पृ. १८-१६
५. शुक्ल प्रभात कुमार, 'इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ, ग्रंथ शिल्पी', नई दिल्ली, २०१२, पृ.सं. ३८६-३६०
६. नारायण वद्री, 'उत्तर भारत में दलित संस्कृति, पहचान और राजनीति', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४, पृ. ३०-३१
७. नैमिशराय मोहनदास, 'भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ.सं. ६८-६६
८. शर्मा रामशरण, 'शूद्रो की प्राचीन इतिहास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृ. ४६-५१
६. झा विवेकानंद, 'स्टेज्स इन दि हिस्टरी ऑफ अनटचेबल्स', दि इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, १६७५, पृ. ३-५
१०. जायसवाल सुविरा, 'कास्ट, ऑरिजिन फंक्शन एंड डायमेंशंस ऑफ चेंज', मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृ.सं. १३-१५
११. हनुमंतन के.आर., 'इवोल्यूनशन ऑफ अनटचेबिलिटी इन तमिलनाडु अप टू ए.डी. १६००', इन आलोक पाराशर-सेन (संपा.) सबोर्डिनेट एंड मार्जिनल ग्रुप्स इन अर्ली इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, २००४, पृ. १६-२१
१२. झा विवेकानंद, 'कास्ट ऑरिजिन, फंक्शन एंड डायमेशंस ऑफ चेंज', पूर्व उद्धृत, पृ. १०-११
१३. जीलियट एलिनर, 'फ्राम अनटचेबल्स टू दलित्स एसेज आन अंबेडकर मूवमेंट', ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी, प्रेस, नई दिल्ली, १६६२, पृ.सं. ११-१२
१४. ओमवेदत गेल, 'दलित इन डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन, डॉ. अंबेडकर एंड दि दलित मूवमेंट इन कोलोनियल इंडिया', सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६४, पृ. २५-२६
१४. वही, पृ.
१६. माइकल एस.एम., 'दलित्स इन मार्डन इंडिया, विजन एंड वैल्यूज', विस्तार पब्लिकेंशस, दिल्ली १६६६, पृ. १५-१७

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पूर्व मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप

❑ मोनिका रानी

पूर्व मध्यकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था का एक नया रूप विकसित हुआ जिसे सामन्तवादी व्यवस्था कहा गया। यह सामन्तवादी व्यवस्था प्राचीनकला में भूमिदान के कारण उत्पन्न हुई परन्तु बाद में भूमिअनुदान के साथ-साथ प्रशासनिक अधिकारों का भी हस्तान्तरण होने लगा जिसके कारण समाज की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था भी प्रभावित हुईं। इस समय व्यापार-वाणिज्य के स्वरूप में बदलाव आने से गांव में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। प्रस्तुत शोध अध्ययन में पूर्व मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलते स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय इतिहास में पूर्व मध्यकाल (६००-१२००ई.) काफी महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि इसमें अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद क्षेत्रीय ताकतें मजबूती से उभरीं तथा आर्थिक व्यवस्था सामन्तवादी ढांचे में ढलने लगी यद्यपि यह पूरी तरह यूरोप में विकसित हुए समान्तवादी ढांचे के अनुरूप न ढल सकी। केन्द्रीय सत्ता के अभाव में हर्षवर्धन के बाद छोटे-छोटे राजवंशो में आधिपत्य जमाने के लिए परस्पर काफी समय तक संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में त्रिपक्षीय संघर्ष सर्वोपरि हो कर उभरा। यह संघर्ष कन्नौज पर अधिकार करने के लिए पाल, प्रतिहार व राष्ट्रकूटों के बीच हुआ। इसी समय अरबों के भी आक्रमण होने गले। सामन्तवादी व्यवस्था भूमिदान के कारण उत्पन्न हुई, जिसने समाज के हर पहलू को प्रभावित किया। सामन्तवाद ने उस समय की राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर भी अपना प्रभाव डाला। गुप्तोत्तर एवं प्राक् मुस्लिम युग में अर्थात् पूर्वमध्यकाल में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों में अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तन निर्णयकारी थे। दरअसल भारतीय अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही मुख्यतः कृषि-पशुपालन, व्यापार-वाणिज्य तथा उद्योग-धंधो पर निर्भर रही है। परन्तु पूर्वमध्यकाल में व्यापारी तथा कारीगरों की माल की खपत कम होने के कारण अर्थव्यवस्था भी कमजोर होने लगी। अर्थव्यवस्था के कमजोर होने से एक ऐसे समाज का उदय हुआ जिसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर तथा महत्वपूर्ण हो गई। व्यापार वाणिज्य की कमी से अर्थव्यवस्था कृषि तथा पशुपालन पर आधारित होती गई जिसे बन्द ग्रामीण अर्थव्यवस्था माना गया।

अर्थव्यवस्था में बदलाव : गुप्तोत्तर काल एवं प्राक्-मुस्लिम युग (लगभग ६००-१२०० ई०) में महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तन जो जीवन के सभी आधारों को प्रभावित कर रहा था-भूमिदान तथा उससे उत्पन्न सामन्ती व्यवस्था। सामन्ती व्यवस्था में शक्ति के प्रेरक सामन्त बन गए जिनके हाथों में सत्ता थी। सामन्तवाद की विशेषताएँ-परती तथा आबाद दोनों तरह की भूमि अनुदान में देना, अनुदान में दी गई भूमि के साथ-साथ किसानों का हस्तान्तरण, बेगार प्रथा का विकास, किसानों, व्यापारियों, शिल्पियों की स्थानिक गतिशीलता पर रोक लगाना, मुद्रा का अभाव, व्यापार की कमी, राजस्व व्यवस्था तथा दंड-प्रशासन का धार्मिक अनुदान- भोगियों के हाथों सौंप देने की प्रवृत्ति का प्रारंभ और सामन्ती दायित्वों का विकास।[१] इसके साथ-साथ सामन्तों का आपसी अंतःकलह, हुणों तथा गुर्जरों के आक्रमण एवं अव्यवस्थित प्रणाली के कारण अर्थव्यवस्था में गिरावट हुई।[२]

१. भूमिदान तथा सामन्तवाद का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव- भारत में भूमिदान की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही थी परन्तु इसका पहला प्रमाण सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी (दूसरी शती ई०) द्वारा माना जाता है। भारत में भूमिदान की शुरूआत धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों, मन्दिरों, मठों को दिए जाने वाले अनुदानों से हुई तथा गुप्तकाल तक ऐसे अनुदानों की संख्या में काफी वृद्धि हुई।[३] प्राचीनकाल में दानभोगियों को राजाओं द्वारा गाँवों के प्रशासन के अधिकार भी दिए जाते थे, इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु पूर्व मध्यकाल में दण्ड प्रशासन के हस्तान्तरण का भी उल्लेख मिलता है। भूमिदान की परम्परा ने धीरे-धीरे अपना जटिल रूप धारण कर लिया तथा इसका स्वरूप कठोर होता गया। अब राज्य के कर्मचारियों को भी वेतन स्वरूप भूमिदान दिया जाने लगा तथा उन्हें प्रशासनिक अधिकार भी सौंप दिए जाने लगे। हर्षवर्धन के समय में राज्य की सेवा के बदले नकद वेतन नहीं दिया जाता था।[४] एक स्थल पर हयूनसांग ने स्पष्ट लिखा है कि निजी खर्च चलाने के लिए प्रत्येक गवर्नर,

❑ शोधार्थी, इतिहास विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (उ.प्र.)

मंत्री, मजिस्ट्रेट और अधिकारी को जमीन मिली हुई थी। पाल-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूटों के काल में यह प्रथा और भी व्यापक हो गई। इस प्रकार भूमिदान की प्रथा से सामन्तवाद का विकास हुआ।[५]

२. कृषि विस्तार तथा करों में बढ़ोतरी - कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था। अभिधान रत्नमाला में अनेक प्रकार के संग्रहों में धान्य संग्रह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस काल के ग्रंथों से कृषि की विकसित अवस्था का पता चलता है। खेतों का नाप लेकर सीमा निर्धारित की जाती थी। उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण किया जाता था। हयूनसांग तथा ९वीं और १०वीं शताब्दी के अरब लेखकों ने भूमि की उर्वरता तथा अनेक प्रकार के अन्नों के बहुतायत से पैदा होने का उल्लेख किया है। अच्छी पैदावार के लिए भूमि की गहरी जुताई की जाती थी।[६] लोकनाथ के टिपड़ा ताम्र शासन से पता चलता है कि उसने पूर्वी बंगाल के वन प्रदेशों को कृषि योग्य बनाने की नीति अपनायी।[७] पिछड़े क्षेत्रों में भूमिदान से कृषि के प्रसार की स्पष्ट सम्भावनाएं पैदा हुई। मध्यकाल में रचे गये ग्रंथ ग्राम पद्धति में आरम्भिक मध्यकाल की कुछ सामग्री है जिसमें बताया गया है कि कर्नाटक के कुछ भागों में गांव कैसे बसाए गए। परम्परागत रूप से ३२ गांव बसाने का उल्लेख है। स्कन्द पुराण से पता चलता है कि आरम्भिक मध्यकालीन ग्रंथों में गांवो की जो बहुत अतिरंजित संख्याएं दी गई है वे बढ़ती ग्रामीण आबादी की सूचक है।[८] करों की वसूली कठोरता से की जाती थी। जहां भूमि सामंतों को दी जाती थी वहां कृषकों को अनेक प्रकार के कष्टदायी करों का सामना करना पड़ता था। कृषक को राज्य के अनेक कर्मचारियों को पैदावार का अंश देना पड़ता था। सामंती युग में राजाओं तथा सामंतों के आपसी युद्धों के कारण फसलों को हानि पहुंचती थी। इन सब कठिनाइयों के अतिरिक्त दुर्भिक्ष के कारण किसानों की स्थिति और भी बिगड़ जाती। तरह-तरह के करों के बोझ से किसान तबाह हो रहे थे।

३. उद्योग धंधे तथा श्रेणियों का विकास- आर्थिक जीवन में उद्योग धंधों का बहुत महत्व है। पूर्वमध्यकाल में भी उद्योग धंधे काफी उन्नति पर थे। इस काल की अधिकतर स्मृतियों में शिल्प और उद्योग शूद्रों के व्यवसाय माने गए हैं।[९] साहित्य व अभिलेखों में विभिन्न प्रकार के उद्यमियों जैसे- तैलिक, रथकार, बढ़ई, मालाकार, कलाल, हाथीदांत, लकड़ी, वस्त्र निर्माण उद्योग, लौह, मणि, प्रस्तर, काष्ठ, पोत, मृदभाण्ड, चर्म तथा काँच उद्योग का पता चलता है। उद्योग धंधों के साथ श्रेणी संगठन का प्रचलन भी पूर्व मध्यकाल की विशेषता थी। श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय करने वाले लोगों का समूह होती थी ये अपने हितों की रक्षा-सुरक्षा के लिए एक जुट थीं तथा प्रशासन से पंजीकृण करवाती थीं। इस संदर्भ में संघ, गण, पूग, श्रेणी शब्द इस प्रकार के संगठनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। उत्तरवैदिक काल के साहित्य में भी इन्हें श्रेष्ठिय या श्रेष्ठि कहा गया है।[१०] श्रेणियां बैंक के रूप में भी कार्य करती थीं। श्रेणियों ने देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्रेणियों से गाँव की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का उद्य हुआ। श्रेणियां धार्मिक प्रयोजन के लिए अपनी आय भी अनुदान में देती थी।[११]

४. श्रेणी संगठन - पूर्वमध्यकाल में संगठित शिल्पकार व उद्योगों के व्यापारिक समूह श्रेणी, निगम या निकाय कहलाते थे। वास्तव में प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था को उन्नत करने में इन श्रेणी संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[१२] श्रेणियो के संगठनात्मक स्वरूप का प्रथम उल्लेख पांचवीं सदी ई. पूर्व में गौत्तम धर्मसूत्र में मिलता है जिसमें वैश्यों के व्यवसायों[१३], शिल्पियों के संगठनात्मक नियमों[१४] व न्याय के अधिकारों का वर्णन है।[१५] समयानुसार जैसे-जैसे धातु तकनीकी व व्यापार- वाणिज्य का विकास हुआ तो श्रेणियों की संख्या भी बढ़ती गई। मौर्यकालीन समय में श्रेणिया कठोर प्रशासनिक नियमों के अधीन थीं परन्तु मौर्येत्तर काल में कमजोर राजनैतिक व्यवस्था के बावजूद श्रेणियों का तेजी से विकास हुआ क्योंकि श्रेणियां स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगी थीं जिससे व्यापार-वाणिज्य में वृद्धि हुई, नये व्यापारिक केन्द्रों का उद्य हुआ तथा गांवों से शहरों की तरफ पलायन शुरू हुआ जहाँ शिल्पियों (अधिकतर शुद्र थे) को कठोर सामाजिक ढांचे से मुक्ति के साथ आर्थिक सम्पन्नता तथा सम्मानजनक जीवन यापन करने का अवसर मिला। गुप्तकाल में भी शिल्पियों, व्यापारियों तथा सौदागरों की सम्मानजनक स्थिति रही जिससे शहरों की और पलायन निरन्तर जारी रहा। परिणामस्वरूप नगर महानगरों में तब्दील होते रहे।[१६] गुप्तोत्तर काल में सामन्तीकरण, व्यापार वाणिज्य में कमी, केन्द्रीकृत संरक्षित तकनीकों का अभाव तथा छिन्न-भिन्न राजनैतिक व्यवस्था के कारण नगरों का पतन प्रारम्भ हुआ। अन्ततः शिल्पियों का गांवों की और पलायान शुरू हुआ। कुछ श्रेणियों को छोटे राजाओं तथा सामन्तों ने आर्थिक लाभ के लिऐ संरक्षण प्रदान किया जबकि कुछ शिल्पीकारों ने गांवों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम करना शुरू कर दिया जिससे गांवों की बन्द अर्थव्यवस्था के उदय में सहायता मिली।[१७]

५. व्यापार तथा प्राचीन नगरों की स्थिति - एक तुलनात्मक अध्ययन : मार्क्सवादी इतिहासकारों में रामशरण शर्मा, बी.एन.एस. यादव, डी.डी. कौशाम्बी आदि पूर्व मध्य कालीन भारतीय व्यापार का ह्रास मानते हैं और इनके अनुसार

सामन्तवादी प्रथा के विकास में व्यापार वाणिज्य के पतन ने भी प्रभाव डाला। अब उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होेने लगा। उनके अनुसार अब व्यापार विनिमय के लिए अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता था क्योंकि अतिरिक्त उत्पादन का अधिक भाग जमींदार कर-स्वरूप ले लेते थे। व्यापार की कमी से नगरों का भी पतन होने लगा क्योंकि शिल्पियों तथा उधमियों का गांवो की ओर पलायन होने लगा।[१८] नगरों की बाजार आधारित विनिमयपरक अर्थव्यवस्था के स्थान पर ग्रामीण कृषि आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का विकास, पलायन व नगरों के पतन का कारण बनी।[१९] पालों तथा प्रतिहारों के राज्यों की अर्थव्यवस्था में व्यापार-वाणिज्य का भी सामन्तीकरण देखने को मिलता है। इस काल में मुद्रा का प्रचलन भी कम था इसलिए सामन्ती व्यवस्था में राज्य के कर्मचारियों को नगद वेतन के स्थान पर भूमिदान दिये जाते थे।[२०] इससे गाँवों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। उपर्युक्त इतिहासकारों के अध्ययन से लगता है कि केन्द्रीय सत्ता के अभाव तथा राजनैतिक अव्यवस्था के कारण पूर्वमध्य काल में प्राचीन व्यापारिक केन्द्रों तथा नगरों का पतन, ग्रामीण संस्कृति का उत्थान और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के कारण व्यापार की स्थिति कमजोर हुई। दूसरी तरफ कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों जैसे : रणबीर चक्रवर्ती, ब्रजेश कृष्ण, बी.डी. चटोपाध्याय तथा बी.एन. मुखर्जी के अध्ययनों के निष्कर्ष मार्क्सवादी इतिहासकारों से भिन्न दिखाई देते हैं। उनके अनुसार गुप्त साम्राज्य के विखण्डन के बाद एक नई व्यवस्था का जन्म हुआ था। प्राचीन बड़े व्यापारिक केन्द्रों की जगह छोटे नगरों तथा व्यापारिक केन्द्रों का उदय हुआ जिन्हें मंडीपिकाएँ कहा गया। बड़े नगरों की मंडियों को महामंडीपिकाएँ कहा गया।[२१] जहाँ पर व्यापार स्थानीय स्तर के अतिरिक्त दूर दराज के व्यापारी भी व्यापार करने के लिए आते थे। सातवीं से दसवीं शताब्दी तक ४४ भारतीय राजदूतों को विभिन्न भारतीय राजाओं द्वारा चीन भेजने का उल्लेख मिलता है।[२२]

मुद्रा – इतिहासकार रामशरण शर्मा व डी.डी. कोशाम्बी के अनुसार पूर्वमध्यकाल में सिक्कों का उपयोग बहुत कम हो गया क्योंकि इस काल के जो भी सिक्के उपलब्ध है वे बहुत कम है। उनमें मौलिकता तथा कलात्मक सुंदरता का अभाव है, तोल में भी कम है। सिक्कों की कमी का कारण विदेशी व्यापार में कमी थी सामंती व्यवस्था में भूमिदान भी मुद्रा की कमी को प्रकट करता है क्योंकि वेतन के स्थान पर भूमि दी जाने लगी थी।[२३] व्यापार वस्तु विनिमय के माध्यम से होता था। शुद्ध सोने के सिक्के बहुत कम हैं जबकि वास्तविक स्थिति इससे भिन्न प्रतीत होती है। गुर्जर-प्रतिहार राजाओं में विग्रहपाल, विनयपाल आदि की द्रम्म नामक मुद्राएं मिलती है।[२४] सौराष्ट्र गुजरात क्षेत्र में चापा वंशीय सामन्तों की भी मुद्राएं मिलती है।[२५] सिन्ध के अमीरों की ११वीं शताब्दी की मुद्राएं तथा १०वीं व ११वीं शताब्दियों की हिन्दुशाही राजा जयपाल, आनन्दपाल की चांदी व ताम्बे की मुद्राओं की जानकारी मिलती है।[२६] इसी प्रकार ११वीं शताब्दी की त्रिपुरी के कलचुरि वंश के गांगेय देव की मुद्राएँ, जेजाकभुक्ति के चन्देलों में कीर्ती वर्मा की मुद्राएँ मिली है।[२७] १२वीं शताब्दी में कन्नौज के गहड़वालों में गोविन्द चन्द्र की मुद्राएँ[२८] तथा राजपूतों में महिपाल व अन्यों की चाँदी की मिश्रित धातुओं की मुद्राएँ मिली है।[२९] दक्षिणी भारत के चोल राज्य में कालन्ज नामक सोने के सिक्के का उल्लेख मिलता है।[३०] इसके अतिरिक्त पूरे भारत में इस काल में विभिन्न तरह के सिक्के जैसे- दरहम, दिनार, निष्क, कर्षपण, रूपक, पुराण, कांकणी, सुपरा, टंका आदि नाम के सिक्के मिलते है।[३१]

आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था- पूर्व मध्यकाल में व्यापार वाणिज्य का स्वरूप बदला तथा स्थानीय स्तर पर व्यापार में वस्तु विनिमय के कारण एक नयी व्यवस्था का जन्म हुआ। विदेशों में भारत का व्यापार रोम के साथ कम हो रहा था जबकि चीन के साथ व्यापार बढ़ने लगा था। व्यापार स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मंड़िपिकाओं में होने लगा। वेतन की जगह भूमिदान का प्रचलन बढ़ा।[३२] व्यापार में वस्तु-विनिमय का प्रचलन बढ़ने लगा। सामन्तवाद के कारण सता का विकेन्द्रीकरण हो रहा था। व्यापारियों को सुरक्षा का भी अभाव था। पूर्व मध्यकाल में श्रेणियों का विकास हो रहा था। श्रेणियों ने ही देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पूर्व मध्यकाल में आंतरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशी व्यापार को बढ़ाने के लिए तत्कालीन स्थानीय राजाओं ने विदेशों में राजदूत भेजें। सामन्ती प्रथा से देश में केन्द्रीयकृत अर्थव्यवस्था कमजोर हो गई। परन्तु इससे गाँवों में नई अर्थव्यवस्था की शुरूआत हुई। गुप्तकाल के बाद केन्द्रीय संरक्षित व्यापार तथा शहरी जीवन के ह्रास के कारण भारतीय गांव लगभग आत्मनिर्भर हो गए।[३३] श्रेणियों ने अनेक व्यवसायों को स्थापित किया। ये श्रेणियां ही व्यापार करती थीं। श्रेणियों द्वारा पैसा ब्याज के तौर पर उधार दिया जाता था। यद्यपि पूर्व मध्यकाल में सामंतीकरण से देश की सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ पर इससे देश की बंद अर्थव्यवस्था (गांवों की आत्मनिर्भर व्यवस्था) का जन्म हुआ। सामंती व्यवस्था देश के विभिन्न भागों में मौजूद आत्मनिर्भर आर्थिक ईकाइयों पर आधारित थी।[३४]

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल अपने पूर्व के कालों से भिन्न था। इस समय देश की अर्थव्यवस्था में बदलाव हो रहा था जिसका मुख्य कारण सामंती प्रथा थी। पूर्व मध्यकाल में सता का विकेन्द्रीकरण

हुआ, भूमिदान की शुरूआत हुई, सामंतवाद का जन्म हुआ, उद्योगों तथा श्रेणियों का विकास हुआ। भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्थापित हुआ, नए-नए करों में बढ़ोतरी हुई। व्यापार-वाणिज्य के परिवर्तन से अर्थव्यवस्था भूमि तथा कृषि पर निर्भर हो गई तथा गांवों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूर्व मध्यकाल में अर्थव्यवस्था में बदलाव हुआ जिसने अपने साथ जीवन के दूसरे पहलुओं को भी प्रभावित किया। सामंतवादी प्रथा ने तत्कालीन राजनीति के साथ आर्थिक व्यवस्था को भी प्रभावित किया।

सन्दर्भ

१. शर्मा, रामशरण, 'भारतीय सामन्तवाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२, पृ० ६३
२. यादव, बी.एन.एस., 'सोसायटी एंड क्लचर ऑफ नार्दन इंडिया इन ट्वेल्थ सेंचुरी', सैन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १६७३, पृ० १४१
३. झा, डी.एन., 'भारतीय सामन्तवाद, राज्य समाज और विचारधारा', नई दिल्ली, पृ०४
४. शर्मा, रामशरण, पूर्वोद्धत, पृ० १८-१६
५. बील, सैमुअल लाइफ ऑफ ह्यूनसांग, लंदन, १६११, वोल्यूम १, पृ० ८८
६. इलियट और डाऊसन, 'हिस्ट्री आफ इण्डिया इज टोल्ड बाई इटस ऑन हिस्टोरियन', तीन वोल्यूम, लंदन, १८६६-६७, वोल्यूम १, पृ० १५-१६, २४, २७-२८
७. इण्डियन एन्टिक्वयरी,१५ नं० १६, पंक्तियाँ ३३-५०
८. यादव, बी.एन.एस., पूर्वोक्त, पृ० २३४-३५,
६. प्रकाश ओम, 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास', न्यू एज इन्टरनेशनल पब्लिशर्स, दिल्ली, २००१, पृ० १३८
१०. अथर्ववेद, सम्पादक आर. रौथ और डब्ल्यू डी हिटने, वर्लिन, १८५२, सम्पादक श्रीपाद शर्मा, औधनगर, १६३६,
११. प्रकाश, ओम, पूर्वोद्धत, पृ० १६७
१२. गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, 'प्राचीन भारत में व्यापार वाणिज्य', कॉलेज बुक डीपो, जयपुर, २००४, पृ० ५१
१३. गौतम, धर्मसूत्र, ४८
१४. वही, XI, २३
१५. वही, XII, २४
१६. थापल्याल के.के, 'गिल्डस एन एंशियंट इण्डिया', न्यू एज इन्टरनेशनल लिमिटेड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६६६, पृ० १७-१८
१७. शर्मा, रामशरण, 'भारत के प्राचीन नगरों का पतन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२, पृ० २०५-२०६
१८. वही, पृ० २२८-२२६
१६. नन्दी, आर.एन., 'प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार', ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, १६६८, पृ० १६-२४
२०. शर्मा, रामशरण, भारतीय सामन्तवाद, पूर्वोक्त, पृ० २३२-२३३
२१. चक्रवर्ती, रणबीर, 'ट्रेड एंड ट्रेडर्स इन अर्ली इण्डियन सोसाईटी', मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००७, पृ० १८७-१६७
२२. कृष्ण, ब्रिजेश, 'फॉरेन ट्रेड इन अर्ली मिडिवल इंडिया', हरमान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २०००, पृ० १०-११
२३. शर्मा, रामशरण, भारतीय सामन्तवाद, पूर्वोक्त पृ० ११८
२४. डायल, जॉन एस., 'लिविंग विदाऊट सिल्वर', आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, १६६०, पृ० २५-३२
२५. वही, पृ० ३३
२६. वही, पृ० ५५-५८
२७. वही, पृ० ६४
२८. वही, पृ० ६६
२६. वही, पृ० १०१
३०. कृष्ण, ब्रिजेश, पूर्वोद्धत, पृ० ६७
३१. वही, पृ० ६८
३२. शर्मा, रामशरण, भारतीय सामंतवाद, पूर्वोक्त, पृ० २१-२२
३३. झा, डी.एन., पूर्वोक्त, पृ० ३
३४. शर्मा, रामशरण, भारतीय सामन्तवाद, पूर्वोक्त, पृ० २३३

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ सीमा देवी

शिक्षक, शिक्षा - व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक इकाई एवं अभिकर्ता के रूप में है। इसकी भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह (शिक्षक) शिक्षण प्रक्रिया एवं शिक्षण प्रगति की मेरूदण्ड है। शिक्षा व्यवस्था में विकसित नये परिवर्तनो के फलस्वरूप उच्च शिक्षा में शिक्षक वर्ग में एक नवीन संस्तरण विकसित हुआ है और वह है- सरकारी वित्तपोषित शिक्षक तथा स्ववित्तपोषित शिक्षक हैं स्ववित्तपोषित शिक्षक वे शिक्षक है जो निजी शिक्षा संस्थानों में एवं अर्द्धसरकारी शिक्षा संस्थानों में संस्था प्रमुखों द्वारा स्ववित्तपोषित विषय/संकायों अशंकालिक रूप में नियुक्त किये जाते है। प्रस्तुत अध्ययन पत्र स्ववित्तपोषित शिक्षकों की वर्तमान समस्याऐं, आय का स्तर, उनके कार्य करने की दशाऐं, उनकी मानसिक संतुष्टि एवं सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति का अध्ययन करने का एक प्रयास है।

शिक्षक, शिक्षा - व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक इकाई एवं अभिकर्ता के रूप में है। इसकी भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह (शिक्षक) शिक्षण प्रक्रिया एवं शिक्षण प्रगति की मेरूदण्ड है।[१] सदियों से घात - प्रतिघात, उत्थान-पतन में भी अविचल अखण्ड राष्ट्र के रूप में भारत माँ का साक्षत दर्शन करने वाले गुरूजन सन्तों ने समय-समय पर मानस पुत्रों के माध्यम से समाज को संगठित किया, उसमें चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को, समर्थ गुरू रामदास ने शिवा जी को, स्वामी विरजानन्द ने दयानन्द को, श्रीकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को या महर्षि अरविन्द ने जो समाज खड़ा किया उसमें गुरूओ की भूमिका अहम है।[२] इसी संदर्भ में डा० राधाकृष्णन का कहना है कि भारत में शिक्षक को आचार्य एवं गुरू शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। ये संबोधन शिक्षक के उन गुणों की ओर संकेत देता है जो इन शब्दो के अर्थ में निहित है। आचार्य का अर्थ है अपने जीवन में आदर्श आचरण की प्रतिष्ठा करने वाला। 'गुरू' शब्द से अभिप्राय है जो अंधकार का निरोध करता है, वही गुरू कहलाने योग्य है। 'अंधकार निरोद्धाता गुरू रिव्यमिधीयते' अर्थात जो आध यात्मिक अज्ञान - रूपी अधंकार को दूर करता है। उसे गुरू कहा जाता है।[३] शिक्षक बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व साहस एवं शक्ति की नवचेतना का स्त्रोत होता है।[४] एक अच्छे शिक्षक के व्यक्तित्व में कार्य के प्रति उत्साह, (विकसित ज्ञान) धैर्य, सहनशीलता, क्षमता, प्रेम, सहानुभूति विनम्रता, शिष्टता, सरलता, आत्मविश्वास, चिंतन क्षमता, विभिन्न विषयों का व्यापक एवं गहन अध्ययन करने के प्रति रूचि, वेशभूषा में सरलता एवं स्वच्छता, राग-द्वेष पक्षपात आदि से रहित समस्याओं के समाधान की क्षमता आदि गुणों का समावेश होना चाहिए।[५]

शिक्षा व्यवस्था में विकसित नये परिवर्तनो के फलस्वरूप उच्च शिक्षा में शिक्षक वर्ग में एक नवीन संस्तरण विकसित हुआ है और वह है- सरकारी वित्तपोषित शिक्षक (Government Salary Paid Teacher) तथा स्ववित्तपोषित शिक्षक (Self Finance Teacher) है। सरकारी वित्तपोषित शिक्षक जिनको यू० जी० सी० वेतनमान के अनुरूप राज्य सरकारों से वेतन मिलता है जबकि स्ववित्तपोषित शिक्षक वे शिक्षक है जो निजी शिक्षा संस्थानों में एवं अर्द्धसरकारी शिक्षा संस्थानों में संस्था प्रमुखों द्वारा स्ववित्तपोषित विषय/संकायों में अशंकालिक रूप में नियुक्त किये जाते हैं। यह अवधि ६ माह से १० माह तक होती है और इस श्रेणी के शिक्षकों में अपनी नौकरी के प्रति मन में एक प्रकार का भय बना रहता है जों किसी न किसी प्रकार से इनकी कार्यिक क्षमता को प्रभावित करता रहता है। इनके प्रति संस्था के अन्य कर्मचारियों व प्रमुखों का व्यवहार सम्बधों का स्वरूप एवं उन शिक्षकों की समस्यायें भी अन्य शिक्षकों (स्थायी शिक्षक) की तुलना में अलग एवं गंभीर प्रकृति वाली होती है। पूर्व अध्ययनों के आधार पर भी यह तथ्य प्रकाश में आया है कि स्ववित्तपोषित शिक्षकों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। अनुपम मार्कण्डेय ने उ०प्र० के रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालयों के शिक्षकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर निष्कर्ष रूप में बताया कि अधिकांश शिक्षक अनेक समस्याओं से ग्रस्त थे और निरतंर शिक्षा प्रणाली में सुधार की मांग करते नजर आये।[६] प्रसाद ने 'बिहार प्रांत के विद्यालय एवं कालेज शिक्षकों के प्रेराणात्मक प्रारूप' का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में स्पष्ट किया कि उनके पद की सुरक्षा कालेज के प्राचार्य एवं

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र, आई.डी.एम. गर्ल्स डिग्री कालेज, मोरना, बिजनौर (उ.प्र.)

प्रबन्ध तंत्र पर निर्भर करती है। उन पर कार्य का भार भी अधिक होता है। इस कारण कैरियर उन्नति का मार्ग अवरूद्ध रहता है।[७] १९४७ में भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद के द्वारा इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। प्रथम रिपोर्ट छः आधारभूत विषयों पर केन्द्रित थी। इनके सबसे प्रमुख विषय कालेजों के शिक्षार्थियों एवं शिक्षकों की सामाजिक पृष्ठ भूमि मनोवृत्ति तथा मूल्य थे।[८] कपूर ने विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं पर किये अपने शोध अध्ययन द्वारा स्पष्ट किया कि सामान्यत महिला शिक्षक पुरूष शिक्षको की तुलना में उच्च सामाजिक - आर्थिक पृष्ठ भूमि से आती हैं।[९]

प्रस्तुत अध्ययन पत्र स्ववित्तपोषित शिक्षकों की वर्तमान समस्याऐ, आय का स्तर, उनके कार्य करने की दशाऐ, उनकी मानसिक संतुष्टि एवं सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति का अध्ययन करने का एक प्रयास है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद पर आधारित है जिसमें सोद्‌देश्य निदर्शन विधि के आधार पर जनपद के ६० स्ववितपोषित महाविद्यालयो के २४६ अध्ययन इकाइयों (शिक्षकों) का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया तत्पश्चात् तथ्यों के वर्गीकरण व सारणीयन के साथ उनका साँख्यकीय विश्लेषण कर उनसे निष्कर्ष प्राप्त किये गये। अध्ययन में द्वितीयक तथ्यों की भी सहायता ली गई है। द्वितीयक स्त्रोतो हेतु पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, संबधित शोध इंटरनेट, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ आदि का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के उद्‌देश्यः

१. अध्ययन इकाई के रूप में चयनित शिक्षकों की सामाजिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्रस्तुत करना।
२. स्ववित्तपोषित श्रेणी के अतंर्गत शिक्षकों की कार्य की दशाओं का अध्ययन करना।
३. स्ववित्तपोषित शिक्षकों की शैक्षिक - आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
४. अध्ययन के सम्मलित शिक्षक वर्ग के इस व्यवसाय में प्रवेश के प्रेरणात्मक कारको की जानकारी प्राप्त करना।

उपकल्पनायेंः-

१. उच्च शिक्षा संस्थानों में स्ववितपोषित श्रेणी के अंतर्गत शिक्षक संवर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से अवशोषित हो रहा है।
२. स्ववितपोषित शिक्षको की सामाजिक आर्थिक स्थिति प्रायः अपेक्षाकृत निम्न स्तर की होती है।
३. इस श्रेणी का शिक्षक संवर्ग अपने रोजगार की असुरक्षा एवं अनिश्चितता की स्थिति से गुजरता है।
४. उच्च शिक्षा संस्थाओ में स्ववितपोषित श्रेणी के अंतर्गत कार्यरत शिक्षक संवर्ग अपने उत्तरदायित्वों के प्रति तुलनात्मक दृष्टि से अधिक संवेदनशील व सजग होता है।
५. उक्त श्रेणी के शिक्षकों के साथ संस्था या विभाग प्रमुखों का व्यवहार प्रतिमान स्तरीय न होकर निम्न स्तरीय रहता है।
६. इस श्रेणी मे कार्यरत शिक्षक वर्ग निरंतर तनाव ग्रस्त रहता है।

उपलब्धियाँः

सूचनादाताओं की शैक्षिक प्रस्थिति : अध्यापन व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों के लिए शिक्षा प्राप्ति का स्तर एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है। इस संबंध में यह तथ्य तो पूर्व से स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा क्षेत्र में अध्ययन व्यवसाय में प्रवेश हेतु यू०जी०सी०द्वारा निर्धारित न्यूनतम योग्यताओं की अनिवार्यता है। प्रस्तुत शोध पत्र में सम्मिलित शिक्षकों की शैक्षिक योग्यता का आंकिक प्रदर्शन तालिका संख्या १ में किया गया है।

तालिका संख्या - १

सूचनादाताओं की शैक्षिक योग्यता

शैक्षिक योग्यता	पुरूष शिक्षक		महिला शिक्षक		योग	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
स्नातकोत्तर	२०	८.०३	१८	७.२३	३८	१५.२५
नेट/पी-एच०डी०	६०	२४.१०	८६	३४.५४	१४६	५८.६३
एम०एड०	३१	१२.४५	४	१.६१	३५	१४.०५
एम० फिल	८	३.२१	८	३.२१	१६	६.६४
एलएल०बी०	१२	४.८२	-	-	१२	४.८२
अन्य (कम्प्यूटर)	२	०.८०	-	-	२	०.८०
योग	१३३	५३.४१	११६	४६.५६	२४६	१००.००

उक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्ववितपोषित श्रेणी के अंर्तगत कार्यरत शिक्षकों का अधिकांश प्रतिशत (८४.७५) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता प्राप्त है। गहन विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि पुरूष शिक्षक सूचनादाताओं में २४.१० प्रतिशत पीएच०डी० तथा ३.२१ प्रतिशत एम०फिल धारक हैं, जबकि महिला सूचना छात्राओं में यह प्रतिशत क्रमशः ३४.५४ तथा ३.२१ है। इनसे यह तथ्य भी प्रकट होता है कि पुरूष एवं महिला शिक्षक सूचनादाताओं में निर्धारित योग्यता का प्रतिशत लगभग समान है। केवल १५.२५ प्रतिशत ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित योग्यता स्तर को पूरा नही करता है। लेकिन सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य प्रकाश में आया है कि परास्नातक योग्यता प्राप्त शिक्षक उन शिक्षकों के नाम पर शिक्षण कर रहे हैं जिनकी नियुक्ति मानकों के आधार पर की गई है। किंतु कार्यभारग्रहण नही किया। अतः स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि सूचनादाताओं में लगभग सभी शिक्षक वि०वि० अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित मानक रूपी योग्यता रखते है।

सूचनादाताओं की आय- क्रम प्रस्थितिः- सामान्य अवलोकन से यह तथ्य प्रकट होता है कि आय व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को स्थापित करने के साथ-साथ उसके आचार विचार को स्तर तक प्रभावित करती है। स्ववितपोषित श्रेणी में कार्यरत शिक्षकों को दिया जाने वाला वेतन के नाम पर एक प्रकार से भत्ता होता है जिसमें एकरूपता नही होती है। प्रत्येक स्ववितपोषित महाविद्यालय अपनी आय स्त्रोतों की सीमितता को दर्शाते हुए सुविधानुसार इनका वेतन (भत्ता) निर्धारित करता है, यहाँ तक कि समान महाविद्यालय में विषयक के अनुसार भिन्नता भी कही देखनें को मिल जाती है। सूचनादाताओं को मिलने वाले वेतन का विवरण तालिका २ में प्रदर्शित है।

तालिका संख्या - २

आय- क्रम आधार पर सूचनादाताओं का विवरण

प्रतिमाह (रू० में)	संख्या	प्रतिशत
६०००-८०००	३४	१३.६५
८००१ - १००००	६३	२५.३०
१०००१ - १२०००	६२	२४.६०
१२००१ - १५०००	३८	१५.२६
१५००१ - से अधिक	५२	२०.८०
योग	२४६	१००.००

उक्त तालिका २ से स्पष्ट होता है कि कुल सूचनादाताओं का १३.६६ प्रतिशत ६००० से ८०००रू० प्रतिमाह का वेतन पाते हैं। २५.३० प्रतिशत ८००० से १०००० तक, २४.६० प्रतिशत १०००१ से १२००० तक, १५.२६ प्रतिशत १२००१ सें १५००० तक, १५००१ से अधिक वेतन पाने वाले शिक्षको का प्रतिशत २०.८८ ही है। अतः उक्त विश्लेषण से स्पष्ट रूप में यह कहा जा सकता है। कि अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश शिक्षकों के वेतन का स्तर निम्न है।

तालिका संख्या - ३

सूचनादाताओं के प्रेरणात्मक कारक*

प्रेरणात्मक कारक	शिक्षक			
	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत
शिक्षा प्राप्ति के समय शिक्षको के संपर्क में आने से	१०६	१२.४०	११२	१३.०६
मानवता की सेवा की सेवा की भावना	३६	४.०६	६४	१०.६६
स्वयं की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का अवसर	११७	१३.३१	११४	१३.३३
रोजगार के लिए सीधा अवसर	८४	६.५५	६५	७.६०
समाज में व्यवसाय सम्मान का आकर्षण	११५	१३.०८	१११	१२.६८
समाज में पहचान बनाने की इच्छा	१०१	११.४६	११२	१३.०६
आगे बढने के बेहतर अवसर	७६	८.६४	५५	६.४३
राष्ट्र सेवा की भावना	५४	६.१४	४०	४.६७
अधिक वेतन के कारण	१२५	१४.२२	११४	१३.३३
एक कैरियर बनाने के सिवाय कुछ नही	६२	७.०५	३८	४.४४
योग	८७६	१००.००	८५५	१००.००

*बहुविकल्पी सारणी

अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश के प्रेरणात्मक कारकः प्रत्येक भूमिका की ग्रहणता के पीछे कोई न कोई शक्ति या कारक आवश्यक होता है। ये शक्ति या कारक ही व्यक्ति को अमुख व्यवसाय को ग्रहण करने की प्रेरणा जाग्रत करते है। अध्ययन में सम्मिलित शिक्षक वर्ग से इस व्यवसाय में प्रवेश के प्रेरणात्मक कारको के विषय में जानकारी संकलित की जिसे तालिका संख्या ३ में अवलोकित किया है।

उपर्युक्त तालिका में सूचनादाताओ द्वारा अध्यापन व्यवसाय को अपना मुख्य व्यवसाय चुनने के पीछे प्रेरणात्मक कारक का विश्लेषण बहुविकल्पीय तालिका से स्पस्ट होता है कि पुरूष सूचनादाताओं के लिए मुख्य प्रेरणात्मक कारक क्रमशः अधिक वेतन (१४.२२ प्रतिशत) समाज में व्यवसाय समान का आकर्षण (१३.८ प्रतिशत) स्वयं की अभिव्यक्ति का अवसर (१३.३१ प्रतिशत) तथा शिक्षको से सम्पर्क (१२.४० प्रतिशत) रहा जबकि महिला सूचनादाताओं में अधिक वेतन (१३.३३ प्रतिशत) स्वयं की अभिव्यक्ति का अवसर (१३.३३ प्रतिशत) शिक्षकों से संपर्क में आने (१३.०६ प्रतिशत) तथा समाज में पहचान बनाने की इच्छा (१३.०६ प्रतिशत) रहा है। राष्ट्र सेवा की भावना तथा मानवता की सेवा करना एक प्रकार से गौण कारक के रूप में दृष्टिगोचित होते हैं। अतः सारत्व रूप में कहा जा सकता है कि अध्ययन में सम्मिलित सूचनादाताओं के लिए संबधित व्यवसाय में प्रवेश के कारणों में सामाजिक सम्मान, शिक्षकों का सम्पर्क तथा अभिव्यक्ति को प्रदर्शित कारने का अवसर मुख्य हैं।

महाविद्यालय के कार्य दिवसों में उपस्थिति का समयः स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्य के समय का अध्ययन करने के लिए उनसे पूछा गया कि आप महाविद्यालय के कार्य दिवसों में किस समय तक उपस्थित रहते हैं।

तालिका संख्या - ४

समय	संख्या	प्रतिशत
१०.०० से ०३.०० बजे तक	८५	३४.१३
१०.०० से ०४.०० बजे तक	१३१	५२.६१
०४.०० से अधिक कभी-कभी	३३	१३.२५
योग	२४६	१००.००

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक सूचनादाता (५२.६१ प्रतिशत) १०.०० से ०४.०० बजे तक महाविद्यालय में उपस्थित रहते हैं। जबकि १३.२५ प्रतिशत सूचनादाता ०४.०० बजे से अधिक समय तक महाविद्यालय में उपस्थित रहते हैं। मात्र ३४.१३ प्रतिशत सूचनादाता ऐसे हैं जो १०.०० से ०३.०० बजे तक महाविद्यालय को समय देते हैं।

अध्यापन व्यवसाय के प्रति सन्तुष्टि तथा असंतुष्टि की स्थिति : व्यक्ति जिस व्यवसाय संबद्ध होता है। वह उसकी अच्छाई बुराई, लाभ-हानि तथा बारीकियों से अवगत हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में चयनित शिक्षकों से उक्त संदर्भ पर जानकारी संग्रहित अध्यापन व्यवसाय के प्रति संतुष्टि एवं असंतुष्टि की स्थिति को दर्शाया गया है।

तालिका संख्या - ५

सन्तुष्टि/ असंतुष्टि का मापदण्ड	शिक्षक संख्या / प्रतिशत				योग	
	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
संतुष्ट	१२	४.८२	२६	११.६५	४१	१६.४७
आशिंक संतुष्ट	१५	६.०२	३७	१४.८६	५२	२०.८८
असंतुष्ट	१०६	४२.५७	५०	२०.०८	१५६	६२.६५
योग	१३३	५३.४१	११६	४६.५६	२४६	१००.००

तालिका संख्या ५ के विश्लेषण से स्पष्ट है। कि प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित सूचनादाताओं का अधिंकाश प्रतिशत (६२.६५) अपने वर्तमान व्यवसाय (स्ववितपोषित कालेज या संस्थान) से संतुष्ट नही है। इनका कहना था कि योग्यता समान होने पर भी हमें अनुदानित कालेजों में कार्यरत शिक्षकों की भाँति वेतन, उत्तर पुस्तिका मूल्यांकन, प्रोन्नति जैसी कई सुविधाएँ उपलब्ध नही हैं जो प्रत्यक्ष शोषण को ही दर्शाता है जबकि १६.४७ पूर्णतया तथा २०.८८ प्रतिशत सूचनादाता अपने व्यवसाय से आशिंक संतुष्ट दिखाई दिये। इनका मानना था जब तक शासनानुदानित कालेज में नियुक्ति नही मिल जाती तब तक इसी प्रकार की स्थितियों एवं संविदा पर कार्य करते रहना हम सबके लिये अच्छा एवं मजदूरी भी है। अतः सारत्तव के रूप में कहा जा सकता है। अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश सूचनादाता अपना वर्तमान नियुक्ति से संतुष्ट नही हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव – समाज में स्ववितपोषित श्रेणी में कार्यरत शिक्षको की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को प्रायः देखा जाता है। यद्यपि सत्यता में शासनानुदानित शिक्षण सस्थाओं में कार्यरत शिक्षक वर्ग की तुलना में इस वर्ग के शिक्षक कम नही है। अध्ययन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष एवं सुझाव निम्नलिखित है।

१. अध्ययन में एक निष्कर्ष यह आया है कि उच्च शिक्षा का निजीकरण होने से उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए इनके गृह जनपदो के भी महाविद्यालयो के बनने से रोजगार के विकल्प खुले है। स्ववितपोषित महाविद्यालयो में कार्यरत अधिंकाश शिक्षक अपने गृह जनपद में कार्यरत है।
२. उच्चशिक्षा के स्ववित्तपोषित कार्यरत शिक्षको को अपने पद के अनुरूप और अधिक इमानदारी और मेहनत से कार्य करना चाहिए।
३. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयो के प्रवंधको को उनकी योग्यता एवं कार्य के अनुरूप वेतन और सम्मान दिया जाये ताकि कार्यरत शिक्षक अपने पद के प्रति और अधिक वफादार हो सकें।
४. शासन द्वारा भी स्ववित्तपोषित कार्यरत शिक्षकों का कुछ निश्चित मानदेय निर्धारित कर शासन द्वारा ही दिया जाये ताकि प्रबन्धको पर अधिक वित्तीय भार न पड़े और शिक्षक व्यवसाय के प्रति अधिक मेहनती और सजग रहे।
५. स्ववित्तपोषित श्रेणी में कार्यरत शिक्षक से वर्ग की सामाजिक – आर्थिक प्रस्थिति दयनीय प्रकार की बनी हुई है। साथ ही यह शिक्षक वर्ग संस्था प्रमुखो एवं शासन की अवशोषण नीति का निरन्तर शिकार हो रहा।

सन्दर्भ

१. तनेजा वी०आर०, 'एज्युकेशन थाट एण्ड प्रेक्टिस', स्टर्लिंग पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६७३ पृ०-५१
२. सिंह अमिता, 'अध्यापक एवं राजनीतिः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जीः चिंतन परम्परा, वर्ष ११,अंक-२,जुलाई दिसम्बर २००६ पृ०-६३
३. उद्धत,कुसुमगिरि, 'शिक्षा का समाजशास्त्र', रावत पब्लिकेशन, १६६७, जयपुर पृ०-३७
४. अग्रवाल जे०सी०, 'थ्यौरी एड प्रिंसिपल्स ऑफ एज्यूकेशन', विकास पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, १६८२, पृ०-२६०-६१
५. शर्मा एल०एम०, 'टेक्नीक्स आफ टीचिंग', जे०सी० कपूर धनपतराय एण्ड सन्स नई दिल्ली, १६७६ पृ०-२७-३६
६. मार्कण्डेय, अनुपम, 'विश्वविद्यालय शिक्षको का समाजशास्त्र', रूहेलखण्ड वि०वि बरेली उ०प्र० अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, १६८४
७. प्रसाद ए०, 'मॉटीवेशन पेटर्न आफ स्कूल एण्ड कालेज टीचर्स इन बिहार', जनरल आफ सोशल एण्ड इकनोमिक स्टडीज, एन०एन०सिन्हा इन्स्टीटयूट आफ सोशल स्टडीज, पटना, १६६०, पृ०२६
८. चिटनिस एस०, 'टीचर इन हायर एज्युकेशन', १६७४ कोटिड इन सिंह ए० एंड एटवच पी०जी०(एडी), 'द हायर लर्निग इन इण्डिया', विकास पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, पृ०२३७-२५०
६. कपूर पी०, 'द चेजिंग स्टेटस आफ वुमन इन इण्डिया', विकास पब्लिकेशन हाऊस नई दिल्ली, १६७४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा | वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 | ISSN 0974-0074

मातृत्व स्वास्थ्य लाभ कार्यक्रमों की भूमिका-ग्रामीण महिलाओं के संदर्भ में

❑ पूर्णिमा शुक्ला

मातृत्व स्वास्थ्य मानव संस्कृति तथा सभ्यता से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। कोई भी समाज एक स्वस्थ मातृत्व के बिना जीवित नहीं रह सकता है। मातृत्व का अर्थ है एक माँ का सम्पूर्ण स्वास्थ्य। चाहे वह प्रसवपूर्व अवस्था हो, प्रसव के समय की अवस्था हो, या प्रसव पश्चात् की अवस्था हो। भारत गाँवों का देश है। जहाँ की कुल जनसंख्या का ६८.८४ प्रतिशत[१] आज भी गाँवों में निवास करता है तथा वह अपने अधिकारों और सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाओं की जानकारी से कोसों दूर है। भारत सरकार व राज्य सरकारें अपने-अपने स्तर पर मातृत्व स्वास्थ की बेहतर स्थिति के लिए प्रयासरत् भी हैं लेकिन सुविधा प्राप्त करने वालों और सुविधा देने वालों के बीच में एक खाई बनी हुई है।

> नारी की पूर्णता स्त्रीत्व में हैं, स्त्रीत्व की पूर्णता मातृत्व में है और मातृत्व की पूर्णता मातृत्व स्वास्थ्य से होती है। चाहे वह प्रसवपूर्व अवस्था हो, प्रसव के समय की अवस्था हो, या प्रसव पश्चात् की अवस्था हो। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का स्वास्थ्य अत्यन्त निम्न स्तर पर हैं, क्योंकि गरीबी, अशिक्षा, रूढ़ियां, अज्ञानता, स्त्री-पुरूष भेदभाव मूलक अनेक समस्याएं उनके उत्तम स्वास्थ्य की बाधाएँ है।भारत सरकार द्वारा अप्रैल २००५ में ''राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना'' भी शुरू की गयी है।[३] जिसमें मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य को प्रमुख आधार बनाया गया है। यह मिशन स्वास्थ्य क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी एकीकृत पहल है। इसके अंतर्गत मातृत्व स्वास्थ्य लाभ हेतु चलाई गई अनेकानेक योजनाएं हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों की भूमिका एवं इसके मूल्यांकन का एक प्रयास रहा है।

ग्रामीण और खराब चिकित्सीय सुविधाओं के कारण उनमें स्वास्थ्य के प्रति जानकारी का अभाव पाया जाता है। महिलाओं में एक बहुत बड़ी संख्या है जो रक्त की कमी के कारण विभिन्न रोगों से पीड़ित है। बहुत सी ऐसी महिलाएं है जो कुपोषित होने के कारण प्रसूति रोगों का शिकार हैं। औसत स्वास्थ्य की इस स्थिति का प्रभाव आने वाली पीढ़ियों पर भी पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का स्वास्थ्य अत्यन्त निम्न स्तर पर हैं, क्योंकि गरीबी, अशिक्षा, रूढ़ियां, अज्ञानता, स्त्री-पुरूष भेदभाव मूलक अनेक समस्याएं उनके उत्तम स्वास्थ्य की बाधाएँ है। कुपोषण के कारण महिलाओं की प्रजनन क्षमता में गिरावट तथा मातृत्व स्वास्थ्य में कमी आती है।

महिला का उत्तम स्वास्थ्य उसके स्वस्थ मातृत्व के लिए अनिवार्य है। एनीमिया अर्थात् शरीर में रक्त की कमी की समस्या से पूरी दुनिया की महिलाएं ग्रस्त हैं, जिनमें विकासशील देश अग्रणी हैं- भारत और सार्क। विटामिन 'ए' आयोडीन तथा प्रोटीन की कमी भी महिलाओं में देखी जाती है। वर्ष १९९९ की यूनीसेफ की रिपोर्ट ''विश्व के बच्चों की अवस्था'' के अनुसार भारत में उत्पन्न एक तिहाई बच्चों का भार सामन्य से भी कम होता है। इसका कारण मातृत्व स्वास्थ्य की उपेक्षा है।[२] भारत में मातृ मृत्यु दर भी ऊँची है।

मातृत्व स्वास्थ्य हेतु कार्यक्रम : मातृत्व स्वास्थ्य के लिए अनेक सरकारी प्रयास किये गये हैं। मातृ-शिशु कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत माताओं के लिए प्रसवपूर्व सेवाएं, सुरक्षित प्रसव, प्रसव उपरान्त माँ एवं शिशु की देखभाल, आहार एवं शिशु देखभाल की जानकारी आदि का प्रबन्ध किया गया है। भारत सरकार द्वारा अप्रैल २००५ में ''राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना'' भी शुरू की गयी है।[३] जिसमें मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य को प्रमुख आधार बनाया गया है। यह मिशन स्वास्थ्य क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी एकीकृत पहल है। इसके अन्तर्गत मातृत्व स्वास्थ्य लाभ हेतु चलायी गयी कुछ योजनायें निम्न प्रकार से हैं-

जननी सुरक्षा योजना, जननी-शिशु सुरक्षा कार्यक्रम, नियमित टीकाकरण आदि। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ने निर्धारित लक्ष्य को पाने के लिए अन्य कई कदम उठाये हैं, जैसे-आशाओं का चयन, नवजात शिशु परिचर्या का प्रारम्भ, ग्राम स्वास्थ्य एवं स्वच्छता समितियों का गठन, स्वास्थ्य संसाधन केन्द्रों की स्थापना, प्रशिक्षण कार्यक्रम, सचल चिकित्सा इकाइयों का प्रबन्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त कई गैर सरकारी संगठन भी निःशुल्क स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने में भारत सरकार की सहायता कर रहे हैं।

कुछ महात्वपूर्ण आंकड़े[४]

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर बी०एन०ए०एस० कालेज, महारी हरदोई (सी०एस०जे०एम०यू०), (उ.प्र.)

१. बच्चा जन्म देने के ४२ दिन के भीतर होती है ७८ हजार महिलाओं की मौत। ऐसी मौतों में से ७५ फीसदी को बचाया जा सकता हैं।
२. देश में आशा कार्यकत्रियों की संख्या मात्र ७४ हजार।
३. नर्स व दाइयों की संख्या २१,०६६ है।
४. शहरों में ५००० और गांवो मे ३००० महिलाओं पर मात्र एक दाई व नर्स की सुविधा ।
५. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च करने के मामले में भारत ७१ वें पायदान पर ।
६. भारत में हर ७० में से एक महिला जीवन का जोखिम उठाती है जबकि अमेरिका में यह आंकड़ा ४८ हजार पर १ का है ।
७. विश्व भर में प्रसव के दौरान हर रोज मरने वाली डेढ़ हजार महिलाओं में से हर चौथी महिला भारत में मरती है।
८. सेव दि चिल्ड्रेन (Save the Children) की १३ वीं रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के ८० विकासशील देशों में भारत का मातृ स्वास्थ्य में ७६ वां स्थान है।
९. केवल ४२ फीसदी जन्मों के लिए पेशेवर निगरानी हो पाती है।
१०. शिक्षा के क्षेत्र मे भारत का स्थान १२१ वाँ और स्वास्थ्य के मामले में १३४ वाँ है।

अध्ययन के उद्देश्य :

१. ग्रामीण महिलाओं में मातृत्व स्वास्थ्य लाभ योजनाओं के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
२. मातृत्व स्वास्थ्य योजनाओं के लाभ में आने वाली बाधाओं को ज्ञात करना।
३. मातृत्व स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु सरकारी कार्यक्रमों की भूमिका का मूल्यांकन करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन उन्नाव जिलें के बिछिया ब्लाक की ग्रामीण महिलाओं पर आधारित है। इस ब्लाक में कुल ५४ गाँव हैं। बिछिया ब्लाक में २ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा १३८ आंगनवाड़ी केन्द्र हैं। बिछिया ब्लाक के ५ आंगनवाड़ी केन्द्रों के रजिस्टर में अंकित कुल १६२ गर्भवती महिलाओं को चुना गया है। जिसमें क्रमशः चाँदपुर, मैंकूखेड़ा, टीकरगढ़ी, झंझरी तथा गजौली गाँव के आंगनवाड़ी केन्द्र में पंजीकृत महिलायें हैं, जिनमें से ५० महिलाओं का अध्ययन हेतु प्रत्येक केन्द्र से १०-१० महिलाओं का चयन असम्भावित निदर्शन की सुविधाजनक निदर्शन विधि द्वारा किया गया है। अध्ययन में साक्षात्कार अनुसूचि की सहायता से प्राथमिक समंकों का संकलन किया गया है।

सूचनादात्रियों की आर्थिक तथा शैक्षिक पृष्टभूमि : मातृत्व स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध परिवार की आर्थिक स्थिति से है। प्रायः देखा जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय का श्रोत सीमित होता है तथा परिवार का आकार बड़ा जिसके कारण उत्तम स्वास्थ्य सम्बन्धी मूलभूत आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती हैं। पोषणयुक्त भोजन, उचित प्रोटीन की मात्रा, हरी सब्जी, फल, दूध आदि उपलब्ध नहीं हो पाता है जिसके कारण मातृत्व स्वास्थ्य प्रभावित होता है। अतः सूचनादात्रियों से पूछा गया कि उनके परिवार की मासिक आय कितनी है।

तालिका संख्या- १

परिवार की मासिक आय

आय (रु. में)	संख्या	प्रतिशत
१००० - ५०००	३०	६०
५००१ - १००००	१२	२४
१०००१ - १५०००	८	१६
योग	५०	१००

तालिका संख्या-१ को देखने से स्पष्ट होता है कि ६० प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रु. १०००-५००० के मध्य, २४ प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रु. ५००१-१०००० के मध्य तथा १६ प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार मासिक आय १०००१-१५००० के मध्य है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रु. १०००-५००० के मध्य तथा मात्र १६ प्रतिशत सूचनादात्रियों के परिवार की मासिक आय रु० १०००१-१५००० के मध्य है।

शैक्षिक स्तर : नारी की पूर्णता स्त्रीत्व में हैं, स्त्रीत्व की पूर्णता मातृत्व में है और मातृत्व की पूर्णता मातृत्व स्वास्थ्य से होती है। प्रायः देखा गया है कि महिलायें अपने स्वास्थ्य के लिए नकारात्मक रवैया अपनाती हैं। ग्रामीण महिलायें पूर्वाग्रह और अंधविश्वास से अभी मुक्त नहीं हो पायी हैं। इसका कारण है अशिक्षा, अज्ञानता एवं जानकारी का अभाव। महिलाओं की शैक्षिक स्थिति जानने पर प्राप्त सूचनाएं तालिका सं.२ में प्रदर्शित हैं।

तालिका संख्या-२

शैक्षिक स्तर सम्बन्धी तालिका

शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
प्राइमरी	१७	३४
जूनियर	०७	१४
हाईस्कूल	०७	१६
इण्टरमीडिएट	०३	६

स्नातक	०४	८
अशिक्षित	११	२२
योग	५०	१००

तालिका संख्या २ को देखने से स्पष्ट होता है कि ३४ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर प्राइमरी है, १४ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर जूनियर है, १६ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर हाईस्कूल है, ६ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर इण्टरमीडिएट है, ८ प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर स्नातक है तथा २२ प्रतिशत सूचनादात्रियाँ अशिक्षित हैं। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश सूचनादात्रियों का शैक्षिक स्तर प्राइमरी है तथा अधिक संख्या में सूचनादात्रियॉ अशिक्षित भी हैं।

मातृत्व स्वास्थ्य लाभ कार्यक्रमों की भूमिका : सरकार द्वारा चलाई जा रही राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत मातृत्व लाभ हेतु योजनाओं में निःशुल्क आयरन एवं फोलिक एसिड की गोलियां, नियमित टिटनेस टीकाकरण, वजन की जाँच, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण एवं पुष्टाहार इत्यादि सेवाओं को उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया गया है जिनमें चिकित्सीय सेवायें, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के माध्यम से एवं पोषण व आहार सम्बन्धी सेवायें, आंगनवाड़ी केन्द्रों के माध्यम से प्रदान की जाती हैं। मातृत्व स्वास्थ्य लाभ हेतु कार्यक्रमों की भूमिका एवं मूल्यांकन हेतु ग्रामीण सूचनादात्रियों से निम्न प्रश्न पूछे गयेः-

नियमित स्वास्थ्य परीक्षणः गर्भवती महिलाओं की नियमित वजन की जाँच आंगनवाड़ी केन्द्र एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी जाँच प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर होती है। जो कि अनिवार्य है। इस संबंध में सूचनादात्रियों से पूंछा कि क्या उन्होनें नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराया है-

तालिका संख्या- ३

नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराना

स्वास्थ्य परीक्षण अवधि	संख्या	प्रतिशत
प्रत्येक माह	३	०६
हर तीन माह पश्चात्	११	२२
कभी नहीं	३६	७२
योग	५०	१००

तालिका संख्या ३ को देखने से स्पष्ट होता है कि कुल ५० उत्तरदात्रियों में से ०६प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ प्रत्येक माह स्वास्थ्य परीक्षण कराती हैं, २२प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ प्रत्येक तिमाही तथा ७२प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ स्वास्थ्य परीक्षण नहीं कराती हैं। अतः विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उत्तरदात्रियो की नगण्य संख्या ने ही नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराया है जबकि अधिकांश ७२प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ कभी स्वास्थ्य परीक्षण नहीं कराती हैं जबकि स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा मुफ्त परीक्षण की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है।

तालिका संख्या ४

स्वास्थ्य परीक्षण न कराने कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत
स्वास्थ्य केन्द्र दूर होने के कारण	२	५.५५
आवश्यकता न होने के कारण	२५	६६.४५
जानकारी के अभाव के कारण	०३	८.३३
घरेलू पाबन्दी के कारण	०६	१६.६७
योग	३६	१००

तालिका संख्या ४ स्वास्थ्य परीक्षण न कराने के कारण सम्बन्धी है जैसा पिछली तालिका संख्या ३ से ज्ञात हुआ है कि ७२प्रतिशत महिलाएं कभी परीक्षण नहीं कराती है। इन स्वास्थ्य परीक्षण न कराने वाली महिलाओं से ज्ञात होता है कि ५.५५ प्रतिशत सूचनादात्रियाँ स्वास्थ्य केन्द्र दूर होने के कारण, ६६.४५ प्रतिशत सूचनादात्रियाँ आवश्यकता न महसूस होने के कारण, ८.३३प्रतिशत सूचनादात्रियाँ जनकारी के अभाव के कारण, तथा १६.६७प्रतिशत सूचनादात्रियाँ घरेलू पाबन्दी के कारण स्वास्थ्य परीक्षण नहीं कराती है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश सूचनादात्रियाँ नियमित परीक्षण कराने को आवश्यक नही समझती हैं। उनका मानना है कि उनकी पूर्व सन्तानों के जन्म के समय भी उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी जबकि अवलोकन करने पर पाया गया है कि वे शारीरिक रूप से कमजोर हैं।

तालिका संख्या ५

निःशुल्क आयरन एवं फोलिक एसिड की दवाइयों की प्राप्ति

दवाइयों की प्राप्ति	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२८	५६
नहीं	२२	४४
योग	५०	१००

तालिका संख्या ५ को देखने से स्पष्ट होता है कि सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा प्राप्त करायी जा रही मुफ्त आयरन की गोलियाँ ५६ प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने प्राप्त की तथा ४४ प्रतिशत को नहीं प्राप्त हो सकीं। अतः लगभग आधी उत्तरदात्रियाँ सरकारी योजना के इस लाभ से वंचित रह गयी हैं।

तालिका संख्या ६
दवाईयों प्राप्त न करने सम्बन्धी तालिका

कारण	संख्या	प्रतिशत
केन्द्र पर उपलब्ध नहीं	१६	७२.७२
जानकारी का अभाव	०६	२७.२७
योग	२२	१००

तालिका संख्या ६ को देखने से स्पष्ट होता है कि कुल २२ सूचनादात्रियों में से ७२.७२ प्रतिशत सूचनादात्रियों को सरकारी योजना के तहत मुफ्त आयरन की गोलियाँ न प्राप्त होने का कारण केन्द्र पर गोलियाँ उपलब्ध नहीं थी, २७.२७ प्रतिशत सूचनादात्रियाँ जानकारी अभाव के कारण प्राप्त नहीं कर पायी हैं।

टिटनेस टीकाकरण : प्रत्येक गर्भवती महिला को तीन टीके लगाये जाते हैं। यह टीकाकरण केन्द्रों पर और कभी-कभी घरों पर दौरा करते हुए भी लगाये जाते है।

तालिका संख्या- ७
टिटनेस के टीकाकरण

टीकाकरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	३८	७६
नही	१२	२४
योग	५०	१००

तालिका संख्या ७ को देखने से स्पष्ट होता है कि ७६प्रतिशत उत्तरदात्रियों का टिटनेस का टीकाकरण हो चुका है तथा २४प्रतिशत उत्तरदात्रियों का टीकाकरण नहीं हुआ है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदात्रियों का टीकाकरण हो चुका है।

पोषाहार की प्राप्ति : आंगनवाड़ी केन्द्रों में गर्भवती महिलाओं एवं बच्चों हेतु प्रोटीन हेतु पंजीरी को उपलब्ध कराने का प्रबन्ध किया गया है। सूचनादात्रियों से पूंछा गया कि क्या उन्हें केन्द्रों से नियमित पोषाहार प्राप्त होता है।

तालिका संख्या- ८
पोषाहार प्राप्ति

पोषाहार प्राप्ति	संख्या	प्रतिशत
हां	६	१२
नहीं	४४	८८
योग	५०	१००

प्रस्तुत तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि आंगनवाड़ी केन्द्रों में आने वाला पुष्टाहार केवल १२ प्रतिशत महिलाओं को ही प्राप्त हुआ है। केन्द्रों पर पुष्टाहार वितरण व्यवस्था उचित ढंग से न होने के कारण अधिकांश महिलायें पुष्टाहार से वंचित हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन ''ग्रामीण महिलाओं में मातृत्व स्वास्थ्य लाभ कार्यक्रमों की भूमिका एवं मूल्यांकन'' से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का शैक्षिक स्तर अत्यन्त निम्न है जिसके कारण उन्हे सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाली सुविधाओं के बारे में बहुत कम जानकारी है अतः महिलायें अपने अधिकारों से वंचित है। साथ ही स्वास्थ्य कार्यक्रम एवं योजनाओं का उचित ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो रहा है जिसके कारण निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है। मातृत्व स्वास्थ्य को उन्नत बनाने हेतु बुनियादी स्तर से सुधार की आवश्यकता है। अशिक्षा, बेरोजगारी, जानकारी का अभाव आदि स्वास्थ्य कार्यक्रम की सफलता में बाधाएं है। इसे दूर करने के लिए स्वास्थ्य जागरूकता सम्बन्धी पाठशालाएं चलाई जानी चाहिए। महिलाओं की निजी आय की व्यवस्था घरेलू उत्पाद का प्रशिक्षण देकर भी की जा सकती है। योजनाओं की समय-समय पर जांच एवं पुर्नावलोकन करके व्यवस्था को दुरूस्त किया जाना चाहिए। अंत में कहा जा सकता है महिलाओं को स्वयं उनके स्वास्थ्य के प्रति सचेत एवं जागरूक होना होगा तथा सरकार को भी और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

१. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन पत्रिका, स्वास्थ्य एंव परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार अक्टूबर-जनवरी, २०१३ पृ० ३
२. श्रीवास्तव रजनी, 'स्वास्थ्य, प्रजननता एंव परिवार नियोजन के प्रति महिलाओ का निर्णय प्रारूप', शिशिर प्रकाशन, मेरठ, २००७ पृ० ३५
३. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन पत्रिका, स्वास्थ्य एंव परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, मार्च अप्रैल, २०१३ पृ० २४
४. भारतीय स्त्री, राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, २० अक्टूबर २०१२, पृ० ४

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

बाल अपराधियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन

❑ डा० रेखा दुबे

प्रस्तुत शोध पत्र बालकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि व उनकी उपेक्षिता या अपराचिता की स्थिति के बीच संबंध का अध्ययन करता है जो कि मुख्यतः माता-पिता सम्बन्धों, सामाजिक आर्थिक शिक्षण, व्यवसाय, परिवार का आकार व उनके प्रकार आदि पारिवारिक दशाओं पर मुख्यतः केन्द्रित है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य इस तत्व को जानना है कि बाल गृह में रह रहे बालकों की पारिवारिक पृष्ठभूमि किस प्रकार उनकी स्थिति से सम्बन्धित है।

जन्म के तुरन्त बाद ही बालक किसी न किसी परिवार से सम्बन्धित हो जाता है जहां से उसे सामाजिक जीवन के सर्वोच्च स्तर की सीख मिलती है और वह अपनी शारीरिक, मानसिक, व सांस्कृतिक विशेषताओं को विकसित करता है। इस प्रकार परिवार बालक के विकास की प्राथमिक शिक्षण की प्रमुख संस्था के रूप में कार्य करता है। व्यक्तित्व विकास हेतु परिवार द्वारा दी गई सीखें किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में विशिष्ट महत्व रखती हैं। लेकिन जो बालक अस्वस्थ पारिवारिक एवं पर्यावरण दशाओं के चलते व्यक्तित्व विकास में स्वस्थ स्तर को पाने से चूक जाते हैं वे नकारात्मक प्रवृत्ति की ओर मुड़कर असामाजिक गतिविधि में लिप्त हो जाते हैं और आगे चलकर यही तिरस्तृत बालक समाज में विरोधी कार्यो को अंजाम देते हैं जिनका व्यवहार कानून तोड़ने वाला होता है। इसी सन्दर्भ में सिरिल बर्ट ने लिखा है कि 'किसी बच्चे द्वारा किया जाने वाला समाज विरोधी व्यवहार जब इतना गम्भीर हो जाता है कि राज्य द्वारा उसे दण्ड देना आवश्यक हो जाये केवल उस व्यवहार को हम बाल अपराध कहते हैं।"

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बालक के अपचारी या अपचारी स्थिति में उसके परिवार की तत्कालिक स्थिति को जानना है, जिसमें बालगृह कल्यानपुर, कानपुर के २०० बालकों के परिवार में अभिभावकों की वर्तमान स्थिति, व्यवसाय, सामाजिक आर्थिक स्तर, शिक्षण स्थिति, परिवार का आकार व प्रकार व बालक का भ्रातृक्रम का अध्ययन कर निष्कर्षों का निष्पादन किया गया है। सूचनादाताओं से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची को प्रयोग में लाया गया।

उपलब्धियाँ : अध्ययन के अंतर्गत सर्वप्रथम बालगृह के बालकों से बालगृह में उनके आने के कारण संबंध में पूछा गया। उनके प्रत्युत्तर तालिका १ में प्रदर्शित हैं।

तालिका - १
बालगृह में बालकों के रहने का कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत
पारिवारिक स्थिति	३६	१८
बेघर/गुमशुदा	०६	०३
व्यवहार संबंधी दोष	१५८	७६
योग	२००	१००

तालिका सं० १ में ७६ प्रतिशत बालक व्यवहार सम्बन्धी दोषों (अपचारिता) जैसे चोरी, जुआ, झगड़ा, मारपीट, मद्यसेवन, लैंगिक दुष्क्रियाओं, आवारागर्दी के कारण संस्थाओं में थे। ३ प्रतिशत घरों से बेघर व गुमशुदा बालक थें तथा निम्न आर्थिक स्थिति के चलते बालगृहों में शरण लिये हुए थे।

तालिका-२
बालक के माता-पिता की तत्कालिक स्थिति

तत्कालिक स्थिति	उपेक्षित सं० (%)	अपचारी सं० (%)	योग सं० (%)
माता-पिता दोनो नहीं	११ (५.५०)	२४ (१२.०)	३५ (१७.५)
एक जीवित	२६ (१३.००)	४० (२०.०)	६६ (३३)
दोनों जीवित	०५ (२.५०)	६४ (४७.०)	६६ (४६५)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२०० (१००)

तालिका सं० २ के अनुसार अपचारी बालकों में ४६ प्रतिशत के अभिभावक जीवित थें। २० प्रतिशत बालकों के अभिभावकों में कम से कम एक जीवित था तथा १२ प्रतिशत के माता पिता दोनों जीवित नहीं थे। ६.६ प्रतिशत अपचारी ऐसे थे जिनके एक या दोनो माता-पिता जीवित थें। उपेक्षित बालकों में (१३.००) प्रतिशत के अभिभावक में दोनों अथवा कोई एक जीवित था। ५.५० प्रतिशत के दोनो अभिभावक जीवित नहीं थें।

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजीव गांधी महिला महाविद्यालय, परदहॉं, मऊ (उ.प्र.)

तालिका- ३

अभिभावकों का व्यवसाय स्तर

तत्कालिक स्थिति	उपेक्षित	अपचारी	योग
	सं० (%)	सं० (%)	सं० (%)
अकुशल श्रमिक	३०(१५.०)	१०६(५४.५)	१३६(६६.५)
कुशल श्रमिक	०४ (२.००)	२०(१०.०)	२४(१२.०)
नौकरी	०२ (१.०)	१५(७.५०)	१७(८.५)
व्यवसायी	०३ (१.५०)	०६(४.५)	१२(६.०)
अज्ञात	०३ (१.५०)	०५(२.५)	०६(४.०)
योग	४२(२१)	१५८(७६)	२००(१००)

तालिका सं० ३ के अनुसार ६६.५ प्रतिशत अपचारियों व १२.० प्रतिशत उपेक्षित बालकों के अभिभावक कुशल या अकुशल श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं जो कि दिखाता है कि अभिभावक की अपर्याप्त एवं अनिश्चित आमदनी बालक की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के चलते गैर सामाजिक गतिविधि से प्रेरित हो जाती है।

तालिका- ४

बालक के परिवार की समाजार्थिक स्थिति

तत्कालिक स्थिति	उपेक्षित	अपचारी	योग
	सं० (%)	सं० (%)	सं० (%)
उच्च	०३ (१.५०)	०२ (१.०)	०५(२.५०)
मध्यम उच्च	०६ (३.०)	०८ (४.०)	१४(७)
मध्यम निम्न	११ (५.५०)	२६ (४.५०)	४०(२०)
निम्न	१३ (६.५०)	५६ (२८.०)	६६(३७.५)
निम्नतम	०६ (४.५०)	६३(३१.५०)	७२(३६)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२००(१००)

तालिका सं० ४ के अनुसार आर्थिक स्थिति में गिरावट के साथ-साथ बाल अपराधिता की दर में वृद्धि देखी गई। उपेक्षित बालकों में अधिकतर ने अपने परिवार की खराब सामाजिक आर्थिक स्थिति के चलते बालगृहों में शरण ली थी तो वहीं अपचारी बालक निम्न आर्थिक स्थिति के चलते अपचारिता की ओर मुड़े थे।

तालिका- ५

अभिभावक की शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण

शैक्षिक स्थिति	उपेक्षित	अपचारी	योग
	सं० (%)	सं० (%)	सं० (%)
दोनों निरक्षर	८२ (४१.०)	२१ (१०.५)	१०३ (५१.५)
एक निरक्षर	५६ (२८.२)	१६ (६.५)	७५ (३७.५)
दोनों साक्षर	१८ (६.०)	०२ (१.०)	२० (१०.२)
अज्ञात	०१ (०.५)	०० (००)	०२ (०.५)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२०० (१००)

तालिका सं० ५ के अनुसार कुल बालकों में लगभग आधे (५१.५० प्रतिशत) बालक के अभिभावक निरक्षर पाये गये। ३७.५ प्रतिशत के अभिभावक में एक सदस्य पढ़ा लिखा था। मात्र १० प्रतिशत के दोनो माता-पिता पढ़े लिखे थें। बालक को सही मार्गदर्शन देने में व उसके प्रति दूरदर्शिता रखने के संदर्भ में माता-पिता का पढ़ा लिखा होना बहुत जरूरी है।

तालिका- ६

बालक का भातृक्रम के अनुसार विश्लेषण

भ्रातृक्रम स्थिति	उपेक्षित	अपचारी	योग
	सं० (%)	सं० (%)	सं० (%)
पहला	१६ (८.०)	६६ (३३.०)	८२ (४१)
दूसरा	०६ (४.५)	३१ (१५.५)	४० (२०)
तीसरा	०६ (३.०)	२६ (१४.५)	३५ (१७.५)
चौथा	०५ (२.५)	१६ (८.०)	२१ (१०.५)
पॉचवा व अधिक	०३ (१.५)	१२ (६.०)	१५ (७.५)
अज्ञात	०३ (१.५)	०४ (२.०)	०७ (३.५)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२०० (१००)

तालिका सं० ६ के अनुसार सहोदरों में पहले, दूसरे व तीसरे क्रम के बालकों में अपराधिता अधिक देखी गई। इस तरह उपेक्षिता के प्रथम क्रम में उपेक्षित बालक अधिक पाये गये। प्रायः बच्चों की संख्या बढ़ने पर उसे पूर्व बालक पर अभिभावक का ध्यान कम हो जाना स्वाभाविक है। परिणामतः बालक को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है। ''क्राइम इन इंडिया २०११'' की रिपोर्ट के अनुसार आई.पी.सी. के अन्तर्गत २००१ में बाल अपराधियों की संख्या १६.५०६ प्रतिशत पायी गयी थी जो कि कुल अपराध का ०.६ प्रतिशत थी।[२]

तालिका- ७

परिवार के आकार के अनुसार विश्लेषण

परिवार का आकार	उपेक्षित	अपचारी	योग
	सं० (%)	सं० (%)	सं० (%)
एक	०५ (२.५)	१८ (६.०)	२३ ११.५०
दो	१२ (६)	४२ (२१.०)	५४ (२७.०)
तीन	१६ (८.०)	५२ (२६.०)	६८ (३४.०)
चार	०४ (२)	२६ (१३.०)	३० (१५.०)
पाँच व अधिक	०२ (१)	१६ (८.०)	१८ (६.०)
अज्ञात	०३ (१.५)	०४ (२.०)	०७ (३.५)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२०० (१००)

तालिका सं० ७ के अनुसार परिवार के आकार में चार तक की वृद्धि के साथ अपचारिता में भी वृद्धि पाई गई। इसके बाद इसमें लगातार कमी देखी गई। परिवार के बड़े आकार के

कारण अभिभावक पर अतिरिक्त पारिवारिक एवं आर्थिक/वित्तीय दबाव पड़ जाता है जिसके चलते उसका मुख्य ध्यान परिवार की आवश्यकताओं एवं आर्थिक स्थिति के मध्य सामंजस्य बैठाने में लगा रहता है। इसका बुरा असर बालक के विकास पर पड़ता है।

तालिका- ८

परिवार के आकार के अनुसार विश्लेषण

परिवार का प्रकार	उपेक्षित सं० (%)	अपचारी सं० (%)	योग सं० (%)
संयुक्त	१६ (६.५)	४२ (२१.०)	६१(३.५)
नाभिक	२० (१०.०)	११२ (५६.०)	१३२(६६.०)
अज्ञात	०३ (१.५)	०४ (२.०)	०७(३.५०)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२००(१००)

तालिका सं० ८ के अनुसार सर्वाधिक बालक (६६ प्रतिशत) नाभिक परिवार से सम्बन्धित थें। जिसमें सर्वाधिक ५६ प्रतिशत अपचारी बालक व १० प्रतिशत उपेक्षित बालक सम्मिलित थे। प्राचीन समय से संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्धजनों द्वारा दी जाने वाली नैतिकता व मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता आज उसके विघटन पर स्वतः दिखाई दे रही है। केन्द्रीय परिवारों में विशेषकर निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में एक व्यक्ति का ध्यान परिवार की आवश्यकताओं एवं आय के मध्य सामंजस्य बैठाने में बना रहता है। इस कारण इसका बच्चों पर पर्यवेक्षण ठीक तरीके से न होने पाने पर बालक को अनावश्यक व अनियंत्रित स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

तालिका- ६

बालकों के कारणत्व विवरण पर आधारित विश्लेषण

कारणत्व	उपेक्षित सं० (%)	अपचारी सं० (%)	योग सं० (%)
अपचारी	८६ (४४.०)	०२ (१.०)	६० (४५.०)
सामाजिक विकलांगता	५६ (२६.५)	३१ (१५.५)	६० (४५.०)
शोषित/प्रताड़ित	०४ (२.०)	०५ (२.५०)	०६ (४.५०)
शारीरिक विकलांगता	०६ (३.०)	०३ (१.५)	०६ (४.५०)
मानसिक विकलांगता	०१ (०.५०)	०१ (०.५०)	०२ (१.०)
योग	४२ (२१)	१५८ (७६)	२०० (१००)

तालिका सं० ६ के अनुसार ४५ प्रतिशत अपचारी, ४५ प्रतिशत निम्न सामाजिक विकलांगता के ४.५० प्रतिशत शोषित, ४.५० शारीरिक रूप से विकलांग व १ प्रतिशत मानसिक रूप से विकलांग थे। अपचारी बालकों में चोरी, मद्य, आवारागर्दी वाले, सामाजिक विकलांगता में बेघर, आवारी, उपेक्षित, भग्न परिवारों के बालक सम्मिलित किये गये। साथ ही इनमें वे बालक शामिल थे जो माता-पिता के सम्बन्धों में तनाव व परिवार में स्नेह की कमी के कारण घर से बाहर रहते थे। हालांकि शारीरिक या मानसिक विकलांगता का बालक के अपचारिता एवं उपेक्षिता की स्थिति पर कोई विशिष्ट प्रभाव नही डालती है। परन्तु सामाजिक विकलांगता बाल अपराधिता हेतु एक प्रमुख कारण के रूप में परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष :

१. कुल २०० बालकों में से ७६ प्रतिशत अपचारी व २१ प्रतिशत गैर अपचारी (उपेक्षित) थें।
२. १५८ अपचारी में से ३२ प्रतिशत के अभिभावक में से एक या दोनों जीवित नहीं थे, गैर अपचारी में से १८.५० प्रतिशत के दोनों अथवा एक अभिभावक जीवित नहीं थे। इस प्रकार कुल ४३.५ प्रतिशत भग्न परिवारों से सम्बन्धित थे।
३. ६४.५० प्रतिशत व गैर अपचारी १७ प्रतिशत कुशल अथवा अकुशल श्रमिक परिवारों से थे।
४. जैसे जैसे परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति में गिरावट होती देखी गई वैसे वैसे बाल अपचारी समस्या में वृद्धि होती पाई गई।
५. कुल बालकों की संख्या का आधे (५१.५०) निरक्षर परिवारों से थे। साक्षरता में वृद्धि के साथ साथ अपचारी बालकों की दर में कमी होती गई।
६. भ्रातृक्रम में वृद्धि के साथ साथ अपचारिता में कमी देखी गई।
७. परिवार के आकार वृद्धि (विशेषतः ४ सदस्यों तक) के साथ-साथ अपचारियों की संख्या में वृद्धि पाई गई। हालांकि अधिकतर ६६ प्रतिशत बालक नाभिक परिवारों से थे।
८. बालकों का बड़ा हिस्सा सामाजिक विकलांगता (४५ प्रतिशत) का शिकार था जो कि दिखाता है कि निम्न पारिवारिक सामाजिक दशायें बालकों के स्वस्थ विकास में बाधक होती हैं जो कि उनको समस्याग्रस्त बना सकती हैं। शारीरिक या मानसिक दोष बालक के अपचारिता या उपेक्षिता से कोई प्रमुख सम्बन्ध नही रखते।

सन्दर्भ

१. Burt Cyril, 'The Young delingnet', sahitya bhawan publication, Agra 2013, p. 15
२. क्राइम इन इंडिया, रिपोर्ट २०११

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

बदरी-केदार तीर्थयात्रा के आर्थिक प्रभाव के रूप में चट्टियों से नगरीकरण : एक ऐतिहासिक अध्ययन

❑ दीपक सिंह

प्राचीन काल से ही भारत में चार धाम यात्रा की परंपरा प्रचलित रही है। इन चार धामों में बदरी-केदार की तीर्थयात्रा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। बदरी-केदार तीर्थयात्रा का जहाँ तीर्थयात्रियों के लिए धार्मिक महत्त्व रहा है, वहीं स्थानीय निवासियों के लिए यह आजीविका का महत्त्वपूर्ण साधन भी रही है। स्थानीय जनमानस द्वारा यात्रा मार्ग पर स्थित चट्टियों में घी, दूध व अन्य दैनिक जीवन की आवश्यकता की वस्तुओं की आपूर्ति से जहाँ उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई, वहीं ये चट्टियाँ कालान्तर में नगरों के रूप में परिवर्तित होकर यहाँ के शिक्षा, व्यापार, संस्कृति का केन्द्र भी बन गयीं। चट्टियों के नगरीकरण की प्रक्रिया का बीसवीं सदी में बहुत विकास हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

गढ़वाल हिमालय में स्थित बदरी-केदारधाम की तीर्थयात्रा प्राचीनकाल से प्रचलित रही है। उत्तरवैदिक युग (१०००-६०० ईसा पूर्व के लगभग) में महर्षि वेदव्यास के कहने पर पाण्डवों ने गौत्र हत्या और गुरू हत्या के पाप से मुक्ति के लिए केदार तीर्थ की यात्रा की थी,[1] तो वहीं दूसरी ओर भगवान श्रीकृष्ण के कहने पर उनके अनन्य भक्त उद्धव जी बदरीकाश्रम आये थे।[2] यही नहीं मौर्य युग (३२४-१८७ई० पूर्व) में भी यात्राओं का यह विधान गढ़वाल हिमालय में किसी न किसी रूप में जारी रहा।[3] मौर्य युग के बाद गुप्तकाल (३१९-४६७ई०) में भी यहाँ तीर्थयात्रा की प्रक्रिया चलती रही, जिसकी पुष्टि देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर के पश्च भाग में स्थित अभिलेख से होती है।[4] यहाँ मन्दिर के पृष्ठ भाग में स्थित प्राकृतिक शिला पर अनेक तीर्थयात्रियों के नाम ब्राह्मी लिपि व संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण हैं। इसी तरह की यात्रा का वर्णन देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र (मगध नागरी लिपि व संस्कृत भाषा) में भी मिलता है, जिसमें वर्णित है कि- "केदारे विधिनोपयुक्त पयसां गंगा समेंताम्बुधौ"[5] इस तरह से तीर्थयात्रा का यह क्रम निरन्तर जारी रहा। बदरी-केदार की तीर्थयात्रा में एक नया मोड़ तब आया, जब आदिगुरू शंकराचार्य का गढ़वाल हिमालय की पवित्र भूमि में आगमन हुआ। शंकराचार्य ने यहाँ बौद्ध धर्म को समाप्त कर हिन्दू धर्म की पुनः स्थापना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई[6] व इस पवित्र भूमि को उत्तर दिशा की आदिपीठ स्थापित करने के उपयुक्त समझा और तब जाकर ज्योतिर्मठ की स्थापना की। बदरीनाथ में नारदकुण्ड से बदरीश की मूर्ति का उद्धारकर्ता यह प्रखर ब्रह्मवेता गढ़वाल हिमालय में एक ऐसी तीर्थयात्रा प्रथा को जन्म दे गया, जिसने भारत को एक सूत्र में बांधे रखने का काम किया।[7] वैसे भी सनातन धर्म और संस्कृति में पलने वाले भारतीयों के जीवन में कम से कम एक बार तीर्थयात्रा करने की परंपरा प्राचीन समय से ही रही है और इसी मंतव्य को ध्यान में रखते हुए आदि गुरू शंकराचार्य ने भारतवर्ष के चारों दिशाओं में चार मठों या पीठों की स्थापना की,[8] जिसके चलते तीथयात्रा की यह परंपरा आज भी बनी हुई है। बदरी-केदार तीर्थयात्रा की इस परंपरा के कारण ही यहाँ स्थित पैदल मार्गो पर चट्टियों का विकास हुआ, जो कि कालान्तर में स्थानीय नगरों के रूप में परिवर्तित हुए। इस प्रकार इस क्षेत्र में स्थित वर्तमान नगर पूर्व में किसी न किसी रूप में तीर्थयात्रा से जुड़े रहे हैं। यही नगर वर्तमान में यहाँ व्यापार, शिक्षा व पर्यटन आदि के केन्द्र बने हुए हैं।

प्राचीन समय से ही धार्मिक दृष्टि से बदरी-केदार तीर्थयात्रा का महत्त्व तो रहा ही है, किन्तु इस धार्मिक तीर्थयात्रा ने कहीं न कहीं गढ़वाल हिमालय की अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण यहाँ की भूमि कभी भी कृषि के लिए पूर्णतया उपयुक्त नही रही है। इस कारण से यहाँ के जनमानस को अपनी आजीविका के लिए अन्य संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ा। जैसे कि स्थानीय लोगों द्वारा बदरी-केदार तीर्थयात्रा मार्गो पर दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का विनिमय करना, यात्रियों को घी, दूध बेचना, स्थानीय वस्तुओं का व्यापार करना आदि। इस प्रकार विभिन्न रूपों में इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था बदरी-केदार तीर्थयात्रा से प्रभावित रही है। कालान्तर में तीर्थयात्रा के इस स्वरूप के साथ ही धार्मिक स्थलों का पर्यटन के रूप में भी विकास हुआ, जिससे तीर्थयात्रा के साथ पर्यटन भी यहाँ की अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। इस प्रकार यह जानना आवश्यक हो जाता है कि

❑ शोध अध्येता, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखण्ड)

बदरी-केदार तीर्थायात्रा से गढ़वाल हिमालय की अर्थव्यवस्था किस प्रकार तथा किस हद तक प्रभावित हुई है। यद्यपि वर्तमान में इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पूर्णतः तीर्थयात्रा पर नही टिकी हुई है, लेकिन यह भी स्पष्ट है कि आज भी तीर्थयात्रा यहाँ की अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आधार है। इससे स्पष्ट होता है कि बदरी-केदार तीर्थयात्रा का यहाँ की अर्थव्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

चट्टियाँ : प्राचीन काल में हरिद्वार से लेकर बदरीनाथ व केदारनाथ तक की यात्रा पैदल मार्गों से ही की जाती थी। इन पैदल मार्गों पर यात्रियों के ठहरने के लिए जगह-जगह कुछ पड़ाव होते थे, जिन्हें चट्टी कहा जाता था। इन चट्टियों पर स्थानीय लोग तीर्थयात्रियों को उनकी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराते थे, जिससे यात्रियों की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती व स्थानीय लोगों को आजीविका (धन) मिल जाती थी। इन तीर्थयात्रा मार्गों पर लगभग ५-६ मील की दूरी पर या जहाँ जल आदि की सुविधा के साथ पड़ाव योग्य स्थान होता था, वहाँ चट्टियाँ बनाई जाती थी। अधिकाँश चट्टियों में निकट के कुछ ग्रामीण, झोपड़ियों का निर्माण करके अपनी सामग्री का विक्रय करते थे। यदि वे स्वयं उनमें सामग्री का विक्रय नहीं करते तो उन्हें वे बनियों को किराए पर दे देते थे, जिससे उनकी आजीविका आसानी से चल जाती थी। जैसे नागपुर पट्टी (गढ़वाल) व तल्लाढ़ांगू की चट्टियों में व्यापार करने वाले लोग मुख्यतः स्थानीय होते थे, किन्तु अन्यत्र सारे यात्रा मार्ग पर अल्मोड़ा या श्रीनगर के बनियों ने तथा सुमाड़ी गॉव (पौड़ी गढ़वाल) के ब्राह्मणों ने इस लाभप्रद व्यापार पर अपना अधिकार कर लिया था।[९] यात्रा मार्ग पर स्थित सभी चट्टियों में पड़ोस के ग्रामीण लकड़ी, साग-सब्जी व फल के साथ ही अन्य खाद्य सामग्री व दूध बेचते थे। यहाँ तक कि सुमाड़ी (पौड़ी गढ़वाल) के निवासी तीर्थयात्रा आरम्भ होने पर अपनी भैंसे लेकर यात्रा मार्ग के सुविधाजनक स्थानों पर पहुंचते थे, और तीर्थयात्रियों को चट्टियों पर दूध बेचते थे। तीर्थ यात्रा मार्ग पर बहुत से लोग यात्रियों व उनके सामान को ढोकर अपनी आजीविका चलाते थे, जैसा कि आज भी केदारनाथ तीर्थ पर गौरीकुण्ड से केदारनाथ के लिए स्थित पैदल मार्ग पर लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए तीर्थयात्रियों के साथ-साथ उनके सामान को भी ढोते हैं। इस प्रकार प्राचीनकाल से होने वाली बदरी-केदार तीर्थयात्रा से इस क्षेत्र में मुद्रा का चलन बना रहता था।

बदरी-केदार तीर्थयात्रा मार्ग के प्रमुख स्थानों पर वस्तुओं का क्रय-विक्रय, यात्रियों को ठहरने, खाने-पीने व रात्रि विश्राम के लिए २-४ छोटी-छोटी दुकानें होती थी, इस प्रकार के स्थान हाट कहलाते थे। शाबर क्षेत्र में स्थित ऐसे 'हाटों' को 'घाट' कहा जाता था। इन हाटों पर अपनी दुकान चलाने वाले व्यापारी लोगों को दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ महँगे दामों पर बेचते थे। **संभवतः** इसीलिए इन हाटों की व्यापारिक गतिविधियों के सन्दर्भ में शिव प्रसाद डबराल ने लिखा है कि इन हाटों में सीधे-सादे ग्रामीणों को लूटा जाता था, इसलिए इन्हें 'चोरघाट' भी कहते थे।[१०] यही चट्टियाँ व हाट कालान्तर में अपने क्रमिक विकास के फलस्वरूप बाजार व धीरे-धीरे नगरों के रूप में विकसित हो गये। बदरी-केदार तीर्थयात्रा मार्ग पर प्राचीन समय में इस प्रकार की कई चट्टियाँ स्थित थी। यशवंत सिंह कठोच ने बदरी-केदार तीर्थयात्रा मार्ग पर स्थित प्रसिद्ध चट्टियों व उनकी दूरी का विवरण इस प्रकार दिया है[११] -

गंगाद्वार (हरिद्वार) से बदरीनाथ मार्ग (१८३ मील)

गंगाद्वार से ऋषिकेश	१४ मील
नाईमोहन	१२ मील
बन्दरचट्टी होकर महादेवचट्टी	१२ मील
व्यास घाट	१० मील
बाह या देवप्रयाग	८ मील
राणीबाग	८ मील
श्रीनगर	१० मील
भट्टीसेरा	८ मील
पुनाड़ (रूद्रप्रयाग)	११ मील
शिवानन्दी	८ मील
गौचर चट्वापीपल होकर कर्णप्रयाग	१० मील
सोनला होकर नन्दप्रयाग	१३ मील
लालसांगा (चमोली)	६ मील
मठ हाट होकर पीपलकोटी	१० मील
गरूडगंगा, टंगणी होकर गुलाबकोटी	१२ मील
हेलंगचट्टी खनोटी होकर जोशीमठ	११ मील
घाट चट्टी होकर पाण्डुकेश्वर	८ मील
लामबगड़ हनुमानचट्टी होकर बदरीनाथ	११ मील

गंगाद्वार से केदारनाथ मार्ग(१५० मील)

गंगाद्वार से पुनाड़ (रूद्रप्रयाग)	८४ मील
रूद्रप्रयाग से तिलवाड़ा मठ होकर अगस्त्यमुनि	११ मील
भीरी तथा कुण्ड होकर गुप्तकाशी	१३ मील
नाला तथा भेत होकर फाटा	६ मील
त्रियुगीनारायण तथा सोनप्रयाग (सौनकप्रयाग) होकर गौरीकुण्ड	१३ मील
चीरवासा रामावाड़ा चट्टी होकर केदारनाथ	१० मील

केदारनाथ से लालसांगा (चमोली) मार्ग (६४ मील)

केदारनाथ से गौरीकुण्ड	१० मील
फाटा	१३ मील
नाला होकर ऊखीमठ	११ मील
पोथावासा होकर चोपता	१२ मील
मण्डलचट्टी	८ मील
जंगलचट्टी, वैरागणा गोपेश्वर होकर	
लालसांगा (चमोली)	६ मील

चट्टियाँ व स्थानीय व्यापार : प्राचीन समय में गढ़वाल हिमालय के समस्त गाँव अपनी आजीविका चलाने के लिए भेड़-बकरियों को पालते थे तथा उनकी ऊन से बनायी गई कम्बल, स्वेटर, टोपी व अन्य वस्तुएँ चट्टियों में तीर्थयात्रियों व व्यापारियों को बेचते थे। यहाँ तक कि नागपुर परगने के खड्वाल अपनी कम्बलों को श्रीनगर बाजार में बेचने जाते थे,[१२] जैसा कि आज भी बदरीधाम के पास में स्थित माणा गाँव के भोटिया लोग ऊनी वस्तुएँ बनाकर तीर्थयात्रियों व व्यापारियों को बेचते हैं। पैदल तीर्थयात्रा मार्ग पर भार ढोने के लिए भी इन्हीं भेड़-बकरियों को उपयोग में लाया जाता था। बिजनौर से आने वाले तीर्थयात्री कभी-कभी अपने साथ गढ़वाल हिमालय के बैलों को भी खरीद के ले जाते थे, क्योंकि उनका मानना था कि यहाँ के बैल ऊँचे पहाड़ी भागों की जड़ी बूटियों से पुष्ट व फुर्तीले बने रहते हैं, जिनको कि गाड़ी पर जोतने के लिए अधिक अभ्यास कराने की आवश्यकता नहीं होती थी।[१३] आज भी बिजनौर के व्यापारियों का गढ़वाल हिमालय के व्यवसाय से जो कुछ सम्बन्ध रह गया है, वह केदारधाम के लिए पैदल तीर्थयात्रा मार्ग में घोड़े-खच्चरों का व्यवसाय है। चट्टियों में मुख्यतः दूध, घी आदि का विक्रय होता था। उत्तर दिशा की ओर बण्ड पट्टी में स्थित चट्टी (पीपलकोटी) घी के क्रय-विक्रय का मुख्य केन्द्र था। यहाँ उत्तर-पूर्वी नागपुर, दशोली, उत्तरी बधाण और पैनखण्डा के निवासी अपना घी बेचने के लिए पहुँचते थे। दक्षिण व पश्चिम नागपुर के निवासियों के जिस घी को चट्टी वाले बनिया नहीं खरीदते थे, वे उसे लेकर श्रीनगर बाजार में पहुँचते थे।[१४] अन्न में गेहूँ, चावल, ओगल, मण्डुआ और दाल का विक्रय श्रीनगर व अन्य तीर्थयात्रा मार्गों पर होता था। इन यात्रा मार्गों पर दुग्ध पदार्थों के साथ ही माँस व साग-सब्जी भी बेची जाती थी, जिससे इस क्षेत्र के ग्रामीणों की आजीविका चलती थी। ये ग्रामीण चट्टियों से नमक, गुड़ और कभी-कभी लोहा तथा सूती कपड़े खरीदते थे। इन चट्टियों में गढ़नरेशों व गोरख्यालियों के शासनकाल में चलने वाले टकों का ब्रिटिश शासन के आरम्भिक कुछ वर्षों के पश्चात प्रचलन बन्द हो गया था, किन्तु उन्हें ब्रिटिश राज्य में प्रकट रूप में बेचने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस सन्दर्भ में ट्रेल ने लिखा है, कि गढ़वाल में भारी सँख्या में पुराने भद्दे पैंसे मैदान को निर्यात किए जाते थे। १७६ पैसों को देकर १ रू० मिलता था, पीछे कुछ समय बाद उनका मूल्य दोगुना हो गया था तथा तब ८० पैसे १ रू० में बिकने लगे, बाद के समय में उनका मूल्य ब्रिटिश पैसे के समान ही हो गया था।[१५] चट्टियों से नगरों का विकास होने के परिप्रेक्ष्य में यह भी उल्लेखनीय है कि बदरीनाथ यात्रा की कठिनाइयों को देखकर १८८० ई० में स्वामी विशुद्धानन्द ने काली कमली क्षेत्र की स्थापना की व बदरी-केदार यात्रा मार्ग पर कई चट्टियों में धर्मशाला, औषधालय, सदावर्त, पानी की व्यवस्था आदि का निर्माण करवाया।[१६] यात्रा मार्ग पर बीमारियों को फैलने के डर से व प्रतिवर्ष मृतकों की संख्या देखकर सन् १६०७ ई० तक सरकार द्वारा बदरीनाथ, जोशीमठ, चमोली, कर्णप्रयाग, श्रीनगर व ऊखीमठ में सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था करवाई गयी और यात्रा मार्ग पर प्रत्येक दो पड़ावों पर सदावर्ती अस्पताल भी बनवाये गये थे। इसी सन्दर्भ में १६१३ ई० में यात्रा मार्ग पर स्वच्छता आदि पर ध्यान देने के लिए सरकार द्वारा जे० सी० रावर्टसन व आदम्स के नेतृत्व में एक समिति गठित की गयी, जिसकी सिफारिश पर सरकार ने हरिद्वार से बदरीनाथ यात्रा मार्ग पर सफाई कर्मचारियों की नियुक्तियाँ की तथा चट्टियों में पहुँचने वाले जल की स्वच्छता को बनाये रखने की दिशा में कार्य किया।[१७]

चट्टियों का नगरों के रूप में विकास : नगरीकरण को मानव सभ्यता एवं संस्कृति का समानार्थी, सहगामी तथा अनुगामी माना जाता है। मानव सभ्यता के प्रत्येक युग में नगर सभ्यता तथा संस्कृति के केन्द्र रहे हैं, जिनकी तद्युगीन मानव समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार नगरीकरण एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है, जो ग्रामीण इलाकों को नगरों में बदलने की प्रवृत्ति को दर्शाती है। गढ़वाल क्षेत्र में स्थलाकृति एवं जलवायु सम्बन्धी विषमताओं के साथ ही पिछड़ा आर्थिक आधार होने के कारण नगरीकरण की प्रक्रिया मन्द रही है। इसी कारण यहाँ नगरों की संख्या कम होने के साथ ही उनका आकार भी छोटा है, किन्तु फिर भी यहाँ किसी न किसी रूप में नगरों का विकस हुआ है। इस क्षेत्र में नगरीकरण के सन्दर्भ में यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ नगरों के विकास में क्षेत्र विशेष की भी अहम भूमिका रही है, जैसे- कई नगर इस क्षेत्र में प्रवेश करने हेतु प्रयुक्त घाटियों के प्रवेश द्वारों पर बसे हैं, इनमें हरिद्वार, ऋषिकेश व कोटद्वार मुख्य हैं। इसी तरह कुछ नगर नदियों के संगम पर बसे हुए हैं, इनमें देवप्रयाग, रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग आदि प्रमुख प्रमुख हैं,[१८] परन्तु इन सभी के सन्दर्भ में

यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि कहीं न कहीं ये सभी नगर तीर्थयात्रा से सम्बन्धित हैं तथा तीर्थयात्रा के कारण ही इनका विकास हुआ है।

गढ़वाल हिमालय में अधिकांश नगर उन स्थानों पर बसे हैं, जहाँ प्राचीनकाल में बदरी-केदार तीर्थो के लिए जाने वाले पैदल मार्गों पर चट्टियाँ बनाई गई थी। इन चट्टियों में समय के साथ धीरे-धीरे क्रमिक रूप में बदलाव आता गया, जो कि कालान्तर में अपने विस्तृत स्वरूप में बाजारों में परिवर्तित हो गये। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक यही बाजार गढ़वाल हिमालय में नगरों के रूप में विकसित हुए। इसी प्रकार बदरी-केदार तीर्थयात्रा के कारण गढ़वाल हिमालय में नगरीय विकास के फलस्वरूप भवनों व सड़कों का भी विकास हुआ, जिसके कारण यहाँ के नगरीय क्षेत्रफल में विस्तार होता गया।

प्राचीन समय में बदरी-केदार तीर्थयात्रा के लिए जिन चट्टियों से पैदल मार्ग जाते थे, उन्हीं पैदल मार्गो को सड़कों के रूप में विकसित किया गया। इससे इस क्षेत्र में सड़कों का विकास हुआ। सड़कों के निर्माण से यहाँ के स्थानीय लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुआ। तीर्थयात्रियों की सँख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण उनके ठहरने के लिए आवास व्यवस्था की भी आवश्यकता हुई और धीरे-धीरे यात्रियों के ठहरने के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर बनी चट्टियों पर बदरी-केदार मंदिर समिति की धर्मशालाओं, गढ़वाल मण्डल विकास निगम के अतिथि गृहों, होटलों व अन्य भवनों का निर्माण हुआ। इस प्रकार प्राचीनकाल की चट्टियाँ अपने आकार व क्षेत्रफल में विस्तृत होती गयीं। फलस्वरूप प्राचीन चट्टियों के स्थान पर आधुनिक नगर विकसित हो गये।

नगरीकरण से सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास

सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सामान्य जीवन पद्धति से भिन्न जीवन पद्धति और जीवन दर्शन को ही नगरीगरण का स्वरूप तथा लक्षण माना जाता है।[१९] इसके अन्तर्गत न केवल आवास क्रमों, जलापूर्ति, स्वास्थ्य, परिवहन एवं संचार के साधनों, स्थानीय प्रशासनिक एवं शैक्षिक संस्थाओं आदि को ही नगरीकरण के घटक के रूप में स्वीकार किया जाता है, बल्कि इसमें वे समस्त मूर्त-अमूर्त और स्थूल-सूक्ष्म कारक भी समाहित होते हैं, जो नगरीय जीवन स्तर और मूल्यों के स्थायित्व तथा सुरक्षा के लिए आवश्यक होते हैं। इन सुविधाओं की प्राप्ति से ही नगर निवासियों को नगरीय होने की अनुभूति होती है। गढ़वाल हिमालय के नगरीय समाज में जो भी अधिकाँश परिवर्तन दिखाई देते हैं, वह बदरी-केदार तीर्थायात्रा के कारण ही सम्भव हुआ है। तीर्थयात्रा के कारण ही इस क्षेत्र में विभिन्न राज्यों के लोगों का आवागमन हुआ, जिससे यहाँ के निवासियों का उनसे संपर्क हुआ। इस संपर्क के फलस्वरूप यहाँ की बोली-भाषा, खान-पान आदि में परिवर्तन आया। इस प्रकार इस क्षेत्र में भारत की विविध सांस्कृतिक परंपराओं का समन्वय होता गया। इन सब परिवर्तनों का यहाँ के नगरीय जीवन पर तो प्रभाव पड़ा, किन्तु ग्रामीण जीवन उतना प्रभावित नहीं हो पाया। इस कारण यहाँ का नगरीय समाज व ग्रामीण समाज में कुछ भिन्नता भी पायी जाती है। इस क्षेत्र के नगरीकरण को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक इस प्रकार हैं-

१-गढ़वाल हिमालय के जिन स्थलों पर सामाजिक सुविधाओं जैसे-शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य आदि का विकास हुआ है, वहाँ बाहर से आने वाले आगन्तुकों कि संख्या में वृद्धिहोती गई, जिससे अनेक अन्य नगरीय सुविधायें भी विकसित होती रहीं।

२-गढ़वाल हिमालय में धार्मिक केन्द्र और तीर्थ स्थल के रूप में भी नगरों का विकास हुआ है, जैसे-हरिद्वार व बदरीनाथ, क्योंकि धार्मिक स्थलों पर यात्रियों के एकत्रित होने से यहाँ पर्यटन सम्बन्धी विविध कार्यो तथा सेवाओं का विकास भी होता गया, जिससे यहाँ के नगरों का विस्तार और भी अधिक सम्भव हुआ।

३-गढ़वाल हिमालय में बहुत से ऐतिहासिक महत्त्व के स्थलों पर नगर स्थित हैं, जैसे- देवप्रयाग, रूद्रप्रयाग, अगस्त्यमुनि, कर्णप्रयाग, गोपेश्वर, जोशीमठ आदि।

नगरीकरण से आर्थिक विकास : नगरीकरण आर्थिक प्रगति का सहगामी है। सामान्यतः आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ नगरीकरण का भी विकास होता है। कृषि कला में सुधार, यातायात के साधनों का विकास, प्रौद्यौगिकीय विकास, औद्योगिक पदार्थो एव संसाधनों की उपलब्धि आदि का नगरीकरण पर प्रत्यक्ष एवं सकारात्मक प्रभाव पाया जाता है।[२०] नगरीकरण की प्रक्रिया में जब गढ़वाल हिमालय में मोटर मार्गों का निर्माण हुआ, तो इन मोटर मार्गों के कारण यहाँ मोटर व्यवसाय भी पनपने लगा, जो कि धीरे-धीरे यहाँ की आर्थिकी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया। इससे यहाँ के नगरों/पर्यटन व तीर्थ स्थलों में तीर्थयात्रियों व पर्यटकों की संख्या बढ़ने लगी। यातायात की सुविधा बढ़ाने हेतु सन् १९४५ ई० में बर्निडी (डिप्टी कमिश्नर) के आदेश से गढ़वाल मोटर्स आनर्स यूनियन की स्थापना हुई। अपने व्यवसाय में निरन्तर उन्नति करते हुए यह मात्र दो वर्ष में (सन् १९४७ ई० तक) ब्रिटिश गढ़वाल का सबसे महत्वपूर्ण व बड़ा व्यवसाय बन गया और कुछ ही समय में एशिया की सबसे बड़ी मोटर कम्पनियों में इसकी गणना होने लगी। बीसवीं ई० की अर्द्ध शताब्दी के लगभग टिहरी गढ़वाल मोटर्स आनर्स यूनियन लिमिटेड व यातायात लिमिटेड बस कम्पनियों की स्थापना भी हो चुकी थी।[२१] परिणामस्वरूप तीर्थयात्रियों व

पर्यटकों की आवश्यकता की वस्तुऐं गढ़वाल हिमालय के दूर-दराज के स्थानों तक भी प्राप्त होने लगी। यह सब मोटर व्यवसाय की उन्नति के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ है। मोटर मार्गों के निर्माण से स्थानीय गाँव नगरों से जुड़ गये, जिससे स्थानीय ग्रामीणों को अपनी उत्पादित वस्तुओं को निकटवर्ती नगरों में बेचने में आसानी हुई।

वर्तमान में गढ़वाल हिमालय में नगरीकरण में सहायक दूसरा कारक होटल व आवास व्यवसाय है, जिसने तीर्थयात्रा व पर्यटन पर मुख्य प्रभाव डाला है। निरन्तर आवागमन के कारण इस क्षेत्र में भोजनालयों, ढाबों, होटलों या खाने-पीने के सामान की दुकानों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। आवास व्यवस्था में धर्मशाला, डाक बंगले, गढ़वाल मण्डल विकास निगम के अतिथि गृह तथा स्थानीय व बाहरी लोगों द्वारा बनाये गये निजी आवास आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार यहाँ की जनता के साथ-साथ सरकार की भी इस व्यवसाय में अहम भूमिका रही है। इनमें गढ़वाल मण्डल विकास निगम ने जो भवन बनाये हैं, वे बाहरी प्रदेशों या विदेशी तीर्थयात्रियों/पर्यटकों की क्षमता को देखकर बनाए गये हैं। इस कारण इन अतिथि गृहों में आधुनिक जीवन की लगभग सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। बदरी-केदार मन्दिर समिति ने भी तीर्थयात्रियों की यात्रा को सुगम बनाने व अपनी आर्थिकी को सुदृढ़ करने के लिए प्रत्येक नगर में अपने विश्रामगृह बनवाये हैं, जिनकी सूची इस प्रकार है-

गढ़वाल हिमालय के नगरों में स्थित बदरी केदार मन्दिर समिति के विश्राम गृहों में आवासीय व्यवस्था।[२२]

स्थान	विश्रामगृह	कमरे	क्षमता
ऋषिकेश	०२	२२	५०
देवप्रयाग	०१	१५	८०
श्रीनगर	०२	१२	१००
धारीदेवी श्रीनगर	०१	०३	०६
रूद्रप्रयाग	०१	२८	६६
कर्णप्रयाग	०१	०५	२०
नन्दप्रयाग	०१	०६	२०
चमोली	०१	१३	५०
पीपलकोटी	०२	१५	६०
जोशीमठ	०२	१४	४०
अगस्तमुनि	०१	०८	२०
गुप्तकाशी	०२	१२	२४
सोनप्रयाग	०१	०३	२५
गौरीकुण्ड	०४	२०	१२०
त्रिजुगीनारायण	०१	०१	०४
ऊखीमठ	निर्माणधीन		
केदारनाथ	०४	२१	२५०
मद्महेश्वर	०१	०३	१५
कालीमठ	०१	०६	२४
तुंगनाथ	निर्माणाधीन		
गोपेश्वर	निर्माणाधीन		
पौड़ी	०१	१४	१००
नई टिहरी	०१	१४	५०

श्री बदरीनाथ धाम स्थित मन्दिर समिति की आवासीय व्यवस्था[२३]

विश्राम गृह का नाम	डबलबैड	३ बैड	४ बैड	सूट	आवासीय व्यवस्था
नीलकंठ	१४ कक्ष		४ कक्ष		४४
मोदी -२		४ कक्ष			१२
झुनझुन कॉटेज	३कक्ष किचन सहित				१२
मोदी - १		४ कक्ष			१२
नारायण सदन	१० कक्ष				२०
चाँद कॉटेज			८ कक्ष		३२
डालमियाँ	८ कक्ष		४ कक्ष	३ कक्ष	४४
गुजराती	२ कक्ष				०४
आन्ध्र भवन	१ कक्ष				०२
बस टर्मिनल					१५०
योग	**३८ कक्ष**	**८ कक्ष**	**१६ कक्ष**	**३ कक्ष**	**३३२**

नगरीकरण से पर्यटन का विकास : पर्यटन शब्द अंग्रेजी के टूरिज्म शब्द से लिया गया है। टूरिज्म शब्द का सम्बन्ध लैटिन भाषा के टूअर से है। टूअर शब्द का उद्‌भव १२९२ ई० में लैटिन भाषा के शब्द टोरन्स से हुआ है, जिसका अर्थ-एक औजार या उपकरण है, जो पहिए की तरह गोलाकार या वृत्ताकार होता है, और सम्भवतः इसी टोरन्स शब्द से यात्रा चक्र टूअर का विचार उत्पन्न हुआ।[२४] इस प्रकार टूअर शब्द से धीरे-धीरे टूरिस्ट व टूरिज्म शब्द की उत्पत्ति हुई।[२५] टूअर शब्द का प्रयोग सन् १६९३ ई० के लगभग अर्थात १७वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक विभिन्न स्थानों की यात्रा, मनोरंजन, भ्रमण, पर्यटन तथा विभिन्न राष्ट्रों व क्षेत्रों के भ्रमण अथवा यात्रा करने के लिए किया गया।[२६] प्राचीन काल में इस क्षेत्र में पर्यटन धार्मिक यात्राओं के रूप में ही अधिक प्रचलित रहा, किन्तु अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन के बाद शनै-शनै पर्यटन का रूप अधिक विस्तृत होता गया। पर्यटक के रूप में गढ़वाल हिमालय आने वाला प्रथम विदेशी फ्राँसीसी पर्यटक वर्नियर था, जो कि सन् १६५६ ई० में श्रीनगर गढ़वाल तक आया था और तब उसने यहाँ का मानचित्र बनाया था।[२७] पर्यटन के फलस्वरूप ही १९३४ ई० में टिहरी निवासी संत सोहन सिंह ने हेमकुण्ड साहिब की खोज की तथा १९३१ ई० में फ्रैंक स्माइथ ने फूलों की घाटी खोज निकाली थी।[२८] इसके साथ ही औली (जोशीमठ) पर्यटकों को लुभाने का पर्यटन स्थल बना, जहाँ कि आई० टी० बी० पी० की मदद से सन् १९८५ ई० में प्रथम आइस स्कीइंग कोर्स (५-३० दिन का) फरवरी-मार्च में प्रारम्भ किया गया था। इसी का प्रतिफल है कि गढ़वाल हिमालय की प्रीति डिमरी (रविग्राम), वन्दना पंवार (सुनील गाँव), अभिषेक भट्‌ट (मारवाड़ी) व विवेक पंवार (सुनील गाँव) अन्तर्राष्ट्रीय स्कीइंग प्रतियोगिता में अपना हुनर दिखा चुके हैं।[२९] सन् १९७५ से लेकर २०१४ ई० तक इस क्षेत्र में आने वाले तीर्थयात्रियों व पर्यटकों का विवरण इस प्रकार है[३०]

गढ़वाल में आने वाले तीर्थयात्री/पर्यटकों का विवरण

वर्ष	बदरीनाथ	केदारनाथ
१९७५	१८०,०००	८१,५४९
१९७६	१९६,७८६	९२,२१८
१९७७	१४५,०००	६५,०००
१९७८	१२०,०००	६०,८३९
१९७९	१५६,५६८	८०,७६९
१९८०	२३७,३५७	९२,६५९
१९८१	२१४,०८०	९७,२०२
१९८२	१९८,८८६	७२,२४९
१९८३	२२७,३९५	८२,०७९
१९८४	२२५,२००	११३,३२३
१९९२	४,१२,५९७	१,४१,७०४
१९९३	४,७६,५२६	१,१८,६५९
१९९४	३,४७,४१५	१,०४,६३८
१९९५	४,६१,४३५	१,०५,१६०
१९९६	४,६५,९९२	१,०५,६९३
१९९७	३,६१,३१३	६०,५००
१९९८	३,४०,५१०	८२,०००
१९९९	३,४०,१००	८०,०९०
२०००	७,३५,२००	२,१५,२७०
२००१	४,२२,६४७	१,९१,९८०
२००२	४,४८,५१७	१,६६,२१७
२००३	५,८०,९९३	२,८९,०५५
२००४	४,९३,९१४	२,७४,४८९
२००५	५,६६,४२४	३,६०,१५६
२००६	७,४१,२५६	४,८५,४६४
२००७	९,०१,९६२	५,५७,९२३
२००८	९,११,३३३	४,७०,०४८
२००९	९,१६,९२५	४,०३,६३६
२०१०	९,२१,९५०	४,००,०१४
२०११	९,८०,६६७	५,७१,५८३
२०१२	९,८५,६३१	५,८३,१७६
२०१३	४,९७,७४४	३,१२,२०१
२०१४	१,७२,५८९	१,२२,२८९

बदरी-केदार तीर्थयात्रा पर निर्भर आर्थिकी

बदरी-केदार की तीर्थयात्रा आरम्भ होते हुए इस क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों में तेजी आ जाती है। छः महीने से शिथिल पड़ी आर्थिकी को जैसे पंख लग जाते हैं और लोग पुनः अपने व्यवसाय की उन्नति हेतु प्रयासरत हो जाते हैं। बदरी-केदार की तीर्थयात्रा का यहाँ की आर्थिक स्थिति पर कितना प्रभाव है, इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-बदरी-केदार धाम के कपाट खुलने तथा बन्द होने के समय लाखों रूपयों के फूलों से बदरी-केदार तीर्थो को सजाया जाता है। ये फूल प्रतिवर्ष पुष्प समिति ऋषिकेश के द्वारा चढ़ाए जाते हैं। बदरीधाम का भारत के चारों दिशाओं से भी अटूट सम्बन्ध रहा है। इस धाम में सुदूर दक्षिण में केरल से, पुजारी (रावल), नारियल और सुपारी तथा कर्नाटक से चन्दन, कश्मीर के पाम्पुर से केसर पहुँचाने का विधान रहा है। जगन्नाथ पुरी के समान यहाँ भी चावल पकाकर भात का भोग लगता है जो कि प्रसाद में दिया

जाता है।[31] प्राचीन चट्टियों के समय से ही गढ़वाल हिमालय में विभिन्न प्रकार से सिक्के जमा होते रहे हैं, लेकिन व्यापार से इतने नहीं कि जितने बदरी-केदार मन्दिरों पर आने वाले हजारों श्रद्धालुओं को सामान और सेवाएँ बेचकर जमा हुए। लगभग पूरे गढ़वाल हिमालय की आर्थिकी का सबसे महत्वपूर्ण कारक बदरी-केदार मन्दिर व तीर्थायात्रा है। किसी न किसी रूप में यहाँ के समस्त रोजगार इन्हीं धामों व धामों की यात्रा से जुड़े हैं, जैसे- कि सड़क बनाने के लिए ठेकेदार व मजदूर, होटल व मोटर व्यवसाय, आवास व्यवसाय व सड़क मार्गों से जुड़े गाँव का दूध, सब्जी, फल व अन्य खाद्य सामाग्री का व्यवसाय आदि। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १९३९ ई० में बदरी-केदार मन्दिर समिति की स्थापना होते ही तीर्थयात्रा यहाँ स्थित मन्दिरों के हक-हकूकधारियों की आर्थिकी का एक अहम हिस्सा बन गया। इससे कई लोगों को मन्दिर समिति में रोजगार मिल गया। वर्तमान में तो इन हक-हकूकधारियों के प्रत्येक परिवार से एक-एक सदस्य को बदरी-केदार मन्दिर समिति में नौकरी मिली है। वर्तमान में ऐसे कर्मचारियों की संख्या लगभग ३०००-४००० के बीच है। यहाँ का दूसरा सबसे बड़ा हिस्सा जो बदरी-केदार तीर्थयात्रा पर निर्भर है, वह ब्राह्मण वर्गों के हक-हकूक के रूप में है, जो कई लोगों की आजीविका का एक मुख्य साधन है। इनमें देवप्रयाग का पण्डा समाज, डिमर गाँव के डिमरी, हाट व गिरगाँव के हटवाल व कोठियाल, नौटियाल, मैठाणी, रतूड़ी व अन्य ब्राह्मण समाज आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त भी कई लोगों की आजीविका तीर्थयात्रा से जुड़ी है, जैसे- बदरीनाथ में प्रतिदिन १००-१२० के बीच फोटोग्राफर काम करते हैं, जिनकी एक दिन की आय लगभग १५००-२०००रू० के बीच होती है। १०-२० लोग प्रतिदिन तुलसी माला बेचने का काम करते हैं और ये लगभग एक दिन के २०० से २५० तुलसी माला प्रत्येक १० रू० के हिसाब से बेचते हैं। बदरीधाम आने वाले लगभग प्रत्येक यात्री एक-एक सी० डी० कैसेट ५०-५०रू० में खरीदते हैं, जिसमें कि भगवान बदरी-केदार की आरतियों का संग्रह होता है। यही नहीं बदरीधाम आये साधु-संतो व भिखारियों की सँख्या लगभग १५० से २०० के आस-पास रहती है, जिनकी आजीविका मन्दिरों में काम करके या भीख माँग कर चलती है। इसी तरह यात्रा के दौरान यहाँ नेपालियों की संख्या भी ६०-७० के बीच रहती है, जिसमें से २५ से ३० तक बदरीनाथ व शेष माणा गाँव की ओर काम करते हैं, जो कि तीर्थयात्रियों को पैदल मार्गों पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी कण्डी में ले जाते हैं और कुछ नेपाली सामान को ढोते हैं। माणा के कई भोटिया लोग धाम में आने वाले तीर्थयात्रियों को ऊनी टोपी, स्वेटर व अन्य कपड़ों को बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। इसी प्रकार बदरीधाम में प्रसाद-मेवा बेचने वाले, गंगा जल बेचने वाले यहाँ तक कि तीर्थयात्रियों के जूते संभालने में लोग भी प्रतिदिन पर्याप्त धनराशि कमा लेते हैं।[32]

केदारधाम में भी इसी प्रकार पण्डित समाज पूजा-पाठ से जुड़े हुए हैं। कुछ स्थानीय ग्रामीण फोटोग्राफी में व प्रसाद बेचने में व कुछ दुकानों में कैसेट बेचने में लगे रहते हैं, साथ ही केदारधाम में सावन माह के बाद स्थानीय लोग ब्रहमकमल भी बेचते हैं। भगवान केदार को केवल ब्रह्मकमल ही चढ़ाया जाता है, इसलिए भी ब्रह्म कमल की यहाँ निरन्तर माँग बनी रहती है। गौरीकुण्ड से लेकर केदारनाथ तक लगभग ३२०० लोग यहाँ की विभिन्न चट्टियों/पड़ावों पर दुकानदारी का काम करते हैं। ये दुकानें केदारनाथ, जंगलचट्टी, रामबाड़ा, घिनडूपाणी, गरूडचट्टी तक स्थित हैं। घोड़े-खच्चर वाले भी इस क्षेत्र में पर्याप्त रोजगार प्राप्त करते हैं। इस व्यवसाय में एक यात्रा अवधि में लगभग ४५०० लोग कार्य करते हैं। ये लोग अपने घोड़े-खच्चरों में गौरीकुण्ड से केदारनाथ तक यात्रियों को ढोने का कार्य करते हैं। इसी प्रकार ६००० के लगभग नेपाली डण्डी-कण्डी, होटलों व घास (घोड़े-खच्चरों के लिए) के काम में लगे रहते हैं। गौरीकुण्ड से केदारनाथ तक एक डण्डी का दाम ३६०० रू० व एक कण्डी का दाम १२००-१८००रू० तक होता है। पैदल चलने वाले यात्रियों के लिए बांस के डण्डे भी बेचे जाते हैं, जिनसे प्रति डण्डे की कीमत १०रू० तक ली जाती है। केदारनाथ में दूध, सब्जी बेचने वाले गाँवों में सीतापुर, नारायणकोटी, रामपुर, सोनप्रयाग, बडासू के प्रत्येक परिवार से १०-३० लोग काम करते हैं। इसी तरह लगभग ५८० तीर्थ पुरोहित प्रतिवर्ष केदारनाथ की पूजा का कार्य करते हैं।[33] तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि केदारनाथ धाम पर आश्रित रहने वालों की सँख्या बदरीधाम से कहीं अधिक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बदरी-केदार तीर्थयात्रा का इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सन् २०१३ की आपदा से प्रदेश आज भी नहीं उभर पाया है। इससे बदरी-केदार तीर्थयात्रा के आर्थिक महत्त्व को समझा जा सकता है। अपनी आजीविका के लिए तीर्थयात्रा पर निर्भर रहने वाले लोगों की संख्या को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि निःसंदेह बदरी-केदार तीर्थयात्रा का इस क्षेत्र की आर्थिकी में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ

१. श्रीमद्भागवत महापुराण, खण्ड-२, एकादश स्कन्ध, गीताप्रेस गोरखपुर, चालीसवाँ अध्याय/सोलहवाँ श्लोक, उद्धृत-रावत, शिवराज सिंह, ''केदार हिमालय और पंचकेदार', विनसर पब्लिशिंग कं० देहरादून, २००६, पृ.६४
२. श्रीमद्भागवत महापुराण, पूर्वोक्त उनतीसवाँ अध्याय/इकतालीसवाँ श्लोक, उद्धृत-रावत, शिवराज सिंह, पूर्वोक्त, पृ.६३
३. कठोच, यशवन्त सिंह, 'मध्य हिमालय खण्ड-३ उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास' विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, २०१० पृष्ठ ४५।
४. देवप्रयाग, रघुनाथ मंदिर, यात्री लेख, उद्धृत-डबराल, शिवप्रसाद, 'उत्तराखण्ड के अभिलेख एवं मुद्रा' वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, १६६०, पृ.४४
५. डबराल, शिवप्रसाद, पूर्वोक्त, पृ.५६
६. रावत, शिवराज सिंह, 'श्री बदरीनाथ धाम दर्पण', सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, १६६४, पृ.१०६
७. नैथानी, शिवप्रसाद, 'ब्रह्मपुर और सातवीं सदी का उत्तराखण्ड', पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर (गढ़वाल), २००५, पृ.३६
८. रावत, शिवराज सिंह, पूर्वोक्त, पृ.२१
६. डबराल, शिवप्रसाद, 'राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास भाग ७' वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, पृ.४०६।
१०. डबराल, शिवप्रसाद पूर्वोक्त, पृ.४१०।
११. कठोच, यशवंत सिंह, पूर्वोक्त, पृ.४८।
१२. डबराल, शिवप्रसाद पूर्वोक्त, पृ.४१०।
१३. वही।
१४. डबराल, शिवप्रसाद पूर्वोक्त, पृ.४११।
१५. डबराल, शिवप्रसाद पूर्वोक्त, पृ.४१३।
१६. काला एस० पी०, 'गढ़वाल हिमालय में तीर्थयात्रा एवं नया पर्यटन' सरिता बुक हाउस, दिल्ली, १६६२ पृ.५७।
१७. काला, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ.५८।
१८. मोहन, सविता, 'उत्तरांचल समग्र अध्ययन' विद्यावती प्रकाशन, नैनीताल, २००२ पृ. ७१।
१६. सिंह, आर० एन० व मौर्य, एस० ड़ी०, 'नगरीय भूगोल' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, २०१०, पृ.२८८।
२०. सिंह, आर० एन० व मौर्य, एस० ड़ी०, पूर्वोक्त, पृ.२८८।
२१. काला, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ.११२।
२२. बदरी-केदार मन्दिर समिति की वार्षिक रिपोर्ट, २०१५-१६, पृ.०२।
२३. वही।
२४. भाटिया, ए० के०, 'टूरिज्म इन इण्डिया : हिस्ट्री एण्ड डेवलपमेण्ट', स्टर्लिंग नई दिल्ली, १६७८, पृ.४२।
२५. काला, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ.०६।
२६. हरिमोहन 'संस्कृति पर्यावरण और पर्यटन' तक्षशिला प्रकाशन, देहली, २००३, पृ.२०।
२७. काला, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ.५४।
२८. काला, एस० पी०, पूर्वोक्त, पृ.५८।
२६. गढ़वाल मण्डल विकास निगम की वार्षिक रिपोर्ट, २०१०-११।
३०. बदरी-केदार मन्दिर समिति की वार्षिक रिपोर्ट, २०१५-१६, पृ.०१।
३१. नैथानी, शिवप्रसाद, पूर्वोक्त, पृ.३७।
३२. साक्षात्कार, श्री जगदीश मेहता, ग्राम पाण्डुकेश्वर, जोशीमठ, २६ मई २०१५।
३३. साक्षात्कार, श्री लक्ष्मण सिंह नेगी, ग्राम ऊखीमठ, रूद्रप्रयाग, १८ जुलाई २०१५।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

ई-बैंकिंग सेवायें : सरकारी तथा प्राईवेट बैंको की सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन

❑ **अर्चना**

आजकल के इस व्यस्तता के दौर में प्रत्येक व्यक्ति समय को महत्वपूर्ण मानता हैं समय की बचत करता हैं तथा हर काम को कम समय में करना चाहता हैं। इसी सन्दर्भ में यदि बैकिंग की बात करें तो ग्राहक का तथा स्वयं (बैंक का) का कीमती समय बचाने के लिये ही बैकिंग इन्डस्ट्री ने तकनीकि की मदद ली है। आजकल सभी बैंक (सरकारी एवं प्राइवेट) ई-बैकिंग; ए.टी.एम. सेवायें, एन.ई.एफ.टी., आर.टी.जी. एस. आदि सुविधा प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत सरकारी तथा प्राइवेट बैंकों की ई-बैंकिंग सेवाओं तथा उनसे ग्राहकों की संतुष्टि का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आजकल के इस व्यस्तता के दौर में प्रत्येक व्यक्ति समय को महत्वपूर्ण मानता हैं समय की बचत करता हैं तथा हर काम को कम समय में करना चाहता हैं। इसी सन्दर्भ में यदि बैकिंग की बात करें तो ग्राहक का तथा स्वयं (बैंक का) का कीमती समय बचाने के लिये ही बैकिंग इन्डस्ट्री ने तकनीकि की मदद ली है, जिसके द्वारा आज के समय में लगभग सभी बैंक अपने अपने ग्राहकों को उत्कृष्ट सेवा देने का प्रयन्त कर रहे हैं। अतः ग्राहक भी प्रसन्न है कि अब उन्हे छोटे-छोटे कार्यो हेतु बैंक की पंक्ति में नहीं खड़ा होना पड़ रहा है तथा कुछ घण्टों का कार्य कुछ ही क्षणों में निष्पादित हो जाता है, किन्तु तकनीकि पर विश्वास धीरे-धीरे ही संभव हुआ है।

प्रारम्भ में जब मोबाइल व इन्टरनेट की दुनिया में कदम रखा गया तब इन पर भरोसा कम था परन्तु अब धीरे-धीरे विश्वास बढ़ता जा रहा है, और ग्राहकों के इस बढ़ते हुये विश्वास को देखकर प्राइवेट बैंक तो आगे आये ही हैं, साथ ही साथ सरकारी बैंकों ने भी अपने स्वरूप तथा समय के साथ हुये परिवर्तन और प्रतिस्पर्धा को देखते हुये अपना स्वरूप बदला है तथा तकनीकि की शरण में आ गये हैं और अब सभी बैंक तकनीकि के माध्यम से ग्राहकों को सेवा प्रदान करने में अग्रसर हो रहे हैं। आज न केवल बैंक उत्कृष्ट सुविधा दे रहे हैं अपितु उनमें एक विशेष प्रकार की प्रतिस्पर्धा भी है, कि कौन सा बैंक अपनी सुविधाओं के द्वारा ग्राहकों को आकर्षित तथा संतुष्ट करता है। ज्ञातव्य है कि आजकल सभी बैंक (सरकारी एवं प्राइवेट) ई-बैकिंग; ए.टी.एम. सेवायें, एन.ई.एफ.टी., आर.टी.जी. एस. आदि सुविधा प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं। हिमानी शर्मा ने अपने अध्ययन में पाया कि ई-बैंकिंग कस्टमर और बैंक के रिश्तों को और बेहतर बनाने में मदद करती है, जिससे बैक व कस्टमर के बीच का विश्वास बढ़ता है तथा बैंक की परफारमेन्स और बेहतर होती है।[1] नमिता राजपूत के अनुसार इन्नोवेशन और आई.टी. के कारण इंडियन बैंक के परफारमेन्स में वृद्धि होती जा रही है। अब बैंक के पास कोई विकल्प नहीं रहा है। अब बैंक को अपना एटीट्यूड, स्ट्रेटजीज और पॉलिसी बदलनी होगी। इनके अनुसार सरकारी बैंक और प्राइवेट सेक्टर बैंक की सेवाओं में कोई अन्तर नहीं है।[2]

Nyangosi et al. (2009) ने कस्टमर की ओपीनियन अलग-अलग ई-बैंकिंग टैक्नोलॉजी के एडाप्शन के बारे में डाटा एकत्र किया जिसमें लोगों ने ई-बैकिंग का महत्व तथा एडाप्शन लेवल के बारे में बताया। इस स्टडी ने ई-बैंकिंग के ट्रेन्ड को हाईलाइट किया। इस स्टडी के परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि इण्डिया एवं केन्या दोनों ही देशों के लोगों में ई-बैंकिंग को लेकर पॉजिटीव एटीट्यूड है और कस्टमर ई-बैंकिंग को महत्व दे रहे हैं।[3]

उद्देश्य : विभिन्न बैंकों की ई-बैकिंग सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन का क्षेत्र : प्रस्तुत अध्ययन का आधार एक सर्वेक्षण है जो कि बरेली शहर में रहने वाले लोगों पर किया गया है। इन सभी लोगों का खाता किसी न किसी सरकारी या प्राइवेट बैंक में है। बरेली शहर में सर्वेक्षण करने का उद्देश्य यह है कि यहाँ लगभग सभी सरकारी तथा प्राइवेट बैंक की शाखायें हैं। अध्ययन हेतु २५ सरकारी बैंक २५ प्राइवेट बैंक के खाता धारकों का चयन किया गया। सूचनादाताओं से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की सहायता ली गई।

उपलब्धियाँ : अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नवत रहीं-

❑ शोध अध्येत्री अर्थशास्त्र, बरेली कालेज, बरेली (उ.प्र.)

सारणी १

ग्राहकों की आर्थिक सामाजिक रूपरेखा

वर्ग	संख्या	प्रतिशत
बैंक का प्रकार		
सरकारी बैंक	२५	५०
प्राइवेट बैंक	२५	५०
आयु		
२५ वर्ष तक	९	१८
२६.३५ वर्ष	१२	२४
३६.४५ वर्ष	१०	२०
४६.५५ वर्ष	१४	२८
५६ से अधिक	५	१०
व्यवसाय		
सेवा	१३	२६
व्यापार	१६	३२
उद्योग	०९	१८
कृषि	०२	०४
व्यवसायिक	१०	२०
शिक्षा		
हाईस्कूल	०२	०४
इन्टरमीडिएट	१२	२४
स्नातक	१७	३४
परा स्नातक	११	२२
व्यवसायिक शिक्षा	०८	१६

विश्लेषणः उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि समस्त आयु समूहों, व्यवसायों तथा शैक्षिक वर्गों के लोग अध्ययन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सारणी २

आप कब से ई-बैंकिंग का उपयोग कर रहे हैं ?

उपयोग वर्ष	सरकारी बैंक		प्राइवेट बैंक	
	आवर्तन	प्रतिशत	आवर्तन	प्रतिशत
१ वर्ष से कम	१	४	२	८
१-२ वर्ष	५	२०	३	१२
२-३ वर्ष	१४	५६	११	४४
३-५ वर्ष	२	८	..	..
५ से अधिक वर्ष	३	१२	९	३६

विश्लेषण : उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि सरकारी बैंक व प्राइवेट बैंक दोनों के ही ज्यादातर कस्टमर पिछले २-३ वर्षों से या उससे अधिक वर्षों से ई-बैंकिंग का उपयोग कर रहे हैं।

सारणी ३

क्या आपका बैंक विभिन्न जगहों पर ए.टी.एम. सेवायें प्रदान करता है ?

ए.टी.एम. सेवाएं	सरकारी बैंक		प्राइवेट बैंक	
प्रदान करता है	आवर्तन	प्रतिशत	आवर्तन	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	१३	५२	१६	६४
सहमत	७	२८	८	३२
निष्पक्ष	२	८	..	..
असहमत	२	८	१	४
पूर्णतः असहमत	१	४	..	..

विश्लेषण : इस अध्ययन के आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि ए.टी.एम. सेवाओं के विभिन्न जगहों पर होने के संदर्भ में सरकारी बैंक के ५२ प्रतिशत लोग पूर्णतः सहमत हैं तथा २८ प्रतिशत लोग सहमत हैं। वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक के ६४ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत तथा ३२ प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं तथा सरकारी बैंक में ८ प्रतिशत लोग असहमत तथा ४ प्रतिशत लोग पूर्णतः असहमत हैं, वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक के केवल ४ प्रतिशत लोग असहमत हैं।

सारणी ४

क्या आपका बैंक फण्ड की सुरक्षा प्रदान करता है ?

फंड की सुरक्षा	सरकारी बैंक		प्राइवेट बैंक	
	आवर्तन	प्रतिशत	आवर्तन	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	८	३२	१३	५२
सहमत	१२	४८	४	१६
निष्पक्ष	३	१२	४	१६
असहमत	२	८	३	१२
पूर्णतः असहमत	..	..	१	४

विश्लेषण : इस तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार ३२ प्रतिशत लोग सरकारी बैंक में अपने फण्ड की सुरक्षा को लेकर पूर्णतः सहमत हैं तथा ४८ प्रतिशत लोग सहमत हैं। वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक में यह प्रतिशत क्रमशः ५२ प्रतिशत व १६ प्रतिशत है। सरकारी बैंक में फण्ड की सुरक्षा को लेकर सिर्फ ८ प्रतिशत लोग असहमत हैं। वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक में १२ प्रतिशत लोग असहमत हैं तथा ४ प्रतिशत लोग पूर्णतः असहमत हैं।

सारणी ५
क्या आपका बैंक ई-बैंकिंग सर्विसेज को उपयोग करने के लिए अधिक शुल्क चार्ज करता है?

अधिक शुल्क लेता है	सरकारी बैंक आवर्तन	सरकारी बैंक प्रतिशत	प्राइवेट बैंक आवर्तन	प्राइवेट बैंक प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	१	४	१२	४८
सहमत	१४	५६	६	२४
निष्पक्ष	५	२०	२	८
असहमत	३	१२	४	१६
पूर्णतः असहमत	२	८	१	४

विश्लेषण : इस अध्ययन के अनुसार ई-बैंकिंग सेवा शुल्क की अधिकता को लेकर सरकारी बैंक में सिर्फ ४ प्रतिशत लोग पूर्णतः सहमत हैं, ५६ प्रतिशत लोग सहमत हैं वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक में ४८ प्रतिशत लोग पूर्णतः सहमत हैं और २४ प्रतिशत लोग सहमत हैं। सरकारी बैंक में १२ प्रतिशत लोग असहमत हैं तथा ८ प्रतिशत लोग पूर्णतः असहमत हैं। वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक में १६ प्रतिशत लोग असहमत हैं तथा ४ प्रतिशत लोग पूर्णतः असहमत हैं।

सारणी ६
क्या आपका बैंक तेज और कुशल ई-बैंकिंग सेवायें प्रदान करता है?

तेज एवं कुशलता ई-बैंकिंग सेवाएं	सरकारी बैंक आवर्तन	सरकारी बैंक प्रतिशत	प्राइवेट बैंक आवर्तन	प्राइवेट बैंक प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	१४	५६	१३	५२
सहमत	२	८	६	३६
निष्पक्ष	५	२०	२	८
असहमत	४	१६	..	..
पूर्णतः असहमत	..	..	१	४

विश्लेषण : इस अध्ययन के अनुसार बैंक द्वारा ई-बैंकिंग सर्विसेज के तेज और कुशल होने के मानक पर सरकारी बैंक के ५६ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत हैं व ८ प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं, वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक में ५२ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत तथा ३६ प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं। सरकारी बैंक के उपरोक्त मानक पर १६ प्रतिशत कस्टमर असहमत हैं वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक के ४ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असहमत हैं।

सारणी ७
क्या आपका बैंक कस्टमर सूचना की गोपनीयता बनाये रखता है?

गोपनीयता बनाये रखना	सरकारी बैंक आवर्तन	सरकारी बैंक प्रतिशत	प्राइवेट बैंक आवर्तन	प्राइवेट बैंक प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	५	२०	३	१२
सहमत	१	४	८	३२
निष्पक्ष	४	१६	१	४
असहमत	४	१६	१२	४८
पूर्णतः असहमत	११	४४	१	४

विश्लेषण : इस अध्ययन के अनुसार बैंक द्वारा कस्टमर सूचना की गोपनीयता प्रदान कराने में सरकारी बैंक के २० प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत हैं तथा ४ प्रतिशत कस्टमर सिर्फ सहमत हैं। वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक के १२ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत हैं तथा ३२ प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं। सरकारी बैंक में कस्टमर की गोपनीयता को लेकर १६ प्रतिशत कस्टमर असहमत हैं तथा ४४ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असहमत हैं, जबकि प्राइवेट सेक्टर बैंक में ४८ प्रतिशत कस्टमर असहमत हैं तथा ४ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असहमत हैं।

सारणी ८
क्या आपका बैंक आधुनिक उपकरण रखता है?

आधुनिक उपकरणों की उपलब्धता	सरकारी बैंक आवर्तन	सरकारी बैंक प्रतिशत	प्राइवेट बैंक आवर्तन	प्राइवेट बैंक प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	६	३६	१७	६८
सहमत	१०	४०	३	१२
निष्पक्ष	२	८	२	८
असहमत	१	४	..	..
पूर्णतः असहमत	३	१२	३	१२

विश्लेषण : अध्ययन के अनुसार बैंक द्वारा आधुनिक उपकरणों की उपलब्धता के सन्दर्भ में सरकारी बैंक के ३६ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत हैं जबकि ४० प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं, वहीं पर प्राइवेट सेक्टर बैंक के ६८ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः सहमत हैं व १२ प्रतिशत कस्टमर सहमत हैं। वहीं सरकारी बैंक के ४ प्रतिशत कस्टमर असहमत तथा १२ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असहमत हैं तथा प्राइवेट सेक्टर के १२ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असहमत हैं।

सारणी ६

बैंक की ई-बैंकिंग सेवाओं से संतुष्टि

ई-बैंकिंग सेवाओं से संतुष्टि	सरकारी बैंक		प्राइवेट बैंक	
	आवर्तन	प्रतिशत	आवर्तन	प्रतिशत
पूर्णतः सहमत	६	३६	१६	६४
सहमत	६	३६	५	२०
निष्पक्ष	५	२०	२	८
असहमत	१	४	२	८
पूर्णतः असहमत	१	४	..	..

विश्लेषण : अध्ययन के आधार पर अपने बैंक की ई-बैंकिंग सेवाओं को लेकर सरकारी बैंक के ३६ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः संतुष्ट व ३६ प्रतिशत कस्टमर ही संतुष्ट हैं जबकि प्राइवेट सेक्टर बैंक के ६४ प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः संतुष्ट तथा २० प्रतिशत लोग संतुष्ट दिखायी देते हैं। इसी तरह सरकारी बैंक के ४ प्रतिशत कस्टमर असंतुष्ट तथा ४ ही प्रतिशत कस्टमर पूर्णतः असंतुष्ट हैं, जबकि प्राइवेट सेक्टर बैंक के ८ प्रतिशत कस्टमर असंतुष्ट हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

१. प्राइवेट सेक्टर बैंक के कस्टमर अपने बैंक की सुविधायें इसलिए प्राप्त कर रहे हैं क्योंकि प्राइवेट सेक्टर बैंक के ए.टी.एम. तुलनात्मक रूप में सरकारी बैंक से ज्यादा जगहों पर उपलब्ध हैं। अतः सरकारी बैंक को अपने कस्टमर को आकर्षित करने के लिए ए.टी.एम. की संख्या में वृद्धि करनी चाहिए।

२. सरकारी बैंक के ज्यादातर कस्टमर प्राइवेट सेक्टर बैंक के कस्टमर से ज्यादा अपने फण्ड को लेकर सुरक्षित महसूस करते हैं। अतः प्राइवेट सेक्टर बैंक को विभिन्न माध्यमों से अपने कस्टमर में उनके निवेशित फण्ड को लेकर विश्वास बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

३. सरकारी एवं प्राइवेट सेक्टर बैंक के तुलनात्मक अध्ययन में सरकारी बैंक की तुलना में प्राइवेट सेक्टर बैंक के ज्यादातर कस्टमर का यह मानना है कि उनका बैंक उनसे ई-बैंकिंग सर्विसेज के लिए अधिक शुल्क चार्ज करता है। अतः प्राइवेट सेक्टर बैंक को अपनी ई-बैंकिंग सुविधाओं को अपने ग्राहकों के लिए सस्ता बनाने का प्रयास करना चाहिए।

४. तुलनात्मक अध्ययन में प्राइवेट सेक्टर बैंक के कस्टमर ई-बैंकिंग सेवाओं को सरकारी बैंक से ज्यादा तेज व कुशल मानते हैं। अतः सरकारी बैंक को अपनी ई-बैंकिंग सेवाओं की गुणवत्ता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

५. सरकारी तथा प्राइवेट सेक्टर बैंक के कस्टमर अपनी सूचना की गोपनीयता को लेकर तुलनात्मक अध्ययन में यह साफ-साफ दिखता है कि ज्यादातर कस्टमर स्वयं से सम्बन्धित सूचना की गोपनीयता को लेकर असंतुष्ट दिखायी देते हैं। अतः सरकारी व प्राइवेट सेक्टर बैंक को अपने कस्टमर से सम्बन्धित सूचना के लिए ज्यादा कटिबद्ध होने की आवश्यकता है।

६. बैंक द्वारा आधुनिक उपकरणों की उपलब्धता के विषय में सरकारी तथा प्राइवेट सेक्टर बैंक के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि दोनों ही बैंकिंग सेक्टर सफलतापूर्वक यह कार्य कर रहे हैं परन्तु प्राइवेट सेक्टर में कस्टमर ज्यादा संतुष्ट दिखाई देता है। अतः सरकारी बैंक को अपने कस्टमर को संतुष्ट करने हेतु आधुनिक उपकरणों की उपलब्धता को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

७. सरकारी तथा प्राइवेट सेक्टर की ई-बैंकिंग सर्विसेज को लेकर संतुष्टि के आधार पर यह स्पष्ट है कि दोनों ही प्रकार के बैंक के कस्टमर लगभग अपने-अपने बैंक से संतुष्ट हैं परन्तु प्राइवेट सेक्टर बैंक के कस्टमर अपने बैंक की सेवाओं को लेकर ज्यादा संतुष्ट दिखाई देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सरकारी बैंक की ई-बैकिंग सर्विसेज की गुणवत्ता में सुधारों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. Sharma Himani, "Banking perspectives on e-banking" NJRIM Vol. 1 No. 1, June 2011.
2. Rajput Namita, "Impact of IT on Indian Commercial Banking Industry. I-scholar Vol. 3, No. 1 (2011).
3. Nyangosi at al., "The evolution of e-banking : a study of Indian and Kenyan technology awareness, International Journal of electronic finance 2009, p.1

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण कुमाऊँ में आधुनिकीकरण : परिदृश्य एवं प्रभाव

❑ नीलम सौन

यदि हम इतिहास के पृष्ठों को पलटें तो पाते हैं कि भारतीय समाज को एक परम्परावादी समाज के रूप में देखा जाता रहा है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय जीवन शैली तथा सामाजिक संस्थाओं में जब पश्चिमी समाज की विशेषताओं का समावेश होना आरम्भ हुआ, तब यहाँ आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेजी से बढ़ने लगी। भारतीय समाज के सन्दर्भ में एस.सी. दूबे[1] ने लिखा है कि ''आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जो परम्परागत या अर्द्ध परम्परागत अवस्था से प्रौद्योगिकी के किन्हीं इच्छित प्रारूपों तथा उनसे जुड़ी हुई सामाजिक संरचना के स्वरूपों, मूल्यों, प्रेरणाओं एवं सामाजिक आदर्श नियमों की ओर होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करती है।'' डेनियल लर्नर[2] ने अपनी पुस्तक 'The passing of Traditional Society' में नगरीयता की वृद्धि, संचार के साधनों में वृद्धि, शिक्षा के प्रसार, सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक तथा राजनीतिक सहभाग एवं तार्किक व्यवहार को आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषताओं के रूप में स्पष्ट किया है। भारतीय समाज आज तेजी से परम्परा के दायरे से निकलकर आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है। आधुनिकीकरण के रूप में यहाँ नयी टेक्नालॉजी को स्वीकार करने के कारण उत्पादन, संचार के साधनों तथा नए आविष्कारों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इन परिवर्तनों से ग्रामीण समाज भी अछूता नहीं रह गया है, वहाँ भी आधुनिकीकरण ने अपना प्रभाव छोड़ा है। भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अनेक भारतीय समाजशास्त्रियों द्वारा अध्ययन किया गया है।

> किसी भी समाज में जब कोई परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही होता है तो ऐसे परिवर्तन को हम प्रक्रिया-मूलक परिवर्तन कहते हैं। यह सम्भव है कि समाज की वाह्य संरचना सामान्य रूप से यथावत् प्रतीत होती है, लेकिन यह प्रक्रियामूलक परिवर्तन जीवन के सांस्कृतिक पक्ष में उत्पन्न होकर सामाजिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न कर देते हैं। सामाजिक परिवर्तन की इन प्रक्रियाओं में संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण इत्यादि प्रमुख प्रक्रियाऐं हैं। इस आलोक में ग्रामीण समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न प्रभावों का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है।

जेतली[3] ने उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के तीन सामुदायिक विकास खण्डों के छः गाँवों के अध्ययन के आधार पर बताया कि आधुनिक और परम्परागत प्रतिमानों के कई परस्पर विरोधी सम्मिश्रण भी हुए हैं। आर्थिक आधुनिकीकरण जीवन की सभी समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक विश्वदृष्टि या सामाजिक सम्बन्धों के बारे में एक समतावादी दृष्टिकोण से सदैव सम्बद्ध नहीं रहा है।

श्रीनिवास[4] ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि परम्परागत भारतीय समाज में गतिशीलता का अंश न्यूनतम ही रहा है। इसमें क्षैतिज गतिशीलता की मात्रा अधिक पायी जाती है लेकिन स्वतन्त्र भारत में प्रौद्योगिकी, आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण के प्रभावों के फलस्वरूप व्यक्ति अर्जित पदों पर भी विश्वास करने लगे हैं।

आहूजा[5] ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था में न केवल सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण जैसे विषयों पर गम्भीर रूप से विचार किया है बल्कि उन विधियों पर भी बल दिया है जिनके द्वारा विवाह, परिवार और जाति जैसी उपव्यवस्थाएं भी अपने को जीवित रखने के लिए एकता को बनाए रखते हुए भी स्वयं को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल करती हैं।

बिष्ट[6] ने उत्तराखण्ड की विभिन्न जनजातियों एवं पिछड़ी जातियों के अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि सांस्कृतिक परिवर्तन एवं सामाजिक गतिशीलता के लिए संवैधानिक प्राविधानों के साथ-साथ आधुनिकीकरण से जुड़ी विभिन्न प्रक्रियाऐं मुख्य रूप से उत्तरदायी रही हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभावों के अध्ययन पर आधारित है। इस हेतु प्रस्तुत शोध में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया है तथा तथ्यों का संकलन वैयक्तिक अध्ययन, साक्षात्कार-अनुसूची एवं अर्द्ध-सहकारी अवलोकन के माध्यम से किया गया है। अध्ययन के लिए कुमायूँ मण्डल के जनपद पिथौरागढ़ में स्थित ग्राम सुवाकोट का चयन अध्ययन समग्र

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

के रूप में किया गया है। ग्राम में कुल २५६ परिवार आवासित हैं जिनमें से साधारण दैव निदर्शन विधि द्वारा १२६ परिवारों को अध्ययन इकाइयों के रूप में चुना गया है और प्रत्येक परिवार के मुखिया से सूचनाओं का संकलन किया गया है।

उत्तरदाताओं की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि : उत्तराखण्ड के कुमायूँ मण्डल का भारत-नेपाल सीमा के समीप स्थित जनपद-पिथौरागढ़ का ग्राम सुवाकोट, पिथौरागढ़-झूलाकोट मोटर-मार्ग के किनारे बड्डा कस्बे से लगा एक अति प्राचीन ग्रामीण क्षेत्र है। यह ग्राम जहाँ एक ओर सदियों से आवासित मूल ग्रामवासियों की जन्म स्थली है वहीं सड़क के किनारे स्थित होने के कारण दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवासित ग्रामीणों का निवास संकुल भी बनता जा रहा है। बाजारों की समीपता, सड़क यातायात की सुविधा, स्कूल-चिकित्सालय, पत्रालय, पुलिस-सुरक्षा आदि की उपलब्ध सुविधाओं ने दूर-दराज के ग्रामीणों को, बड्डा कस्बे के निकटस्थ ग्राम सुवाकोट ने अपनी ओर आकर्षित किया है। इस प्रकार यह क्षेत्र धीरे-धीरे विभिन्न जातियों का मिश्रित निवास स्थान बनता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में आधुनिकीकरण के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए चयनित अध्ययन समूह की जैव-सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त की गयी है, ताकि विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के उत्तरदाताओं पर आधुनिकीकरण के प्रभावों को देखा जा सके। उत्तरदाताओं की आयु, शिक्षा, जाति, परिवार आदि के आधार पर विवरण निम्न प्रकार है।

आयु के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरणः आयु, सामाजिक स्तरीकरण का एक जैवकीय आधार है। आयु एक परस्परात्मक समाज में जहां एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करता है, वहीं उसके कार्य, दायित्व एवं अधिकारों और विशेषाधिकारों को भी परिभाषित करता है। यहां तक कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आयु-आधारित व्यक्ति की स्थिति एक निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती है परिवार के स्तर पर आयु-आधारित परिवार के मुखिया की स्थिति, उसकी भूमिका, वैचारिकी एवं कार्यशैली आधुनिकतावादी दृष्टिकोण को भी प्रभावित करती है। इसीलिए आयु को एक चर के रूप में चयनित कर उत्तरदाताओं की आयु का विश्लेषण आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु चयनित कुल १२६ उत्तरदाताओं में से अधिकांश ५४.२६ प्रतिशत उत्तरदाता ५० वर्ष से अधिक आयु के हैं। ३४.८६ प्रतिशत उत्तरदाता ४०-५० वर्ष आयु समूह के हैं, जबकि मात्र १०.५८ प्रतिशत उत्तरदाता ४० वर्ष से कम उम्र के हैं। अर्थात उत्तरदाताओं में लगभग दो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व है, जो आधुनिकता की प्रक्रिया को पीढ़ीगत आधार पर समझने में सहायक होगा। आयु के आधार पर उत्तरदाताओं की स्थिति का उल्लेख तालिका संख्या- १ में किया गया है।

शैक्षिक आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण : शिक्षा, जहाँ एक ओर सामाजिक स्तरीकरण का एक अर्जित आधार है, वहीं यह मानव की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक व व्यावसायिक स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शिक्षा व्यक्ति की सोचने एवं विचारने के दृष्टिकोण को एक आयाम देती है। आधुनिकीकरण, जिसका सीधा सम्बन्ध एक तार्किक एवं वैज्ञानिक सोच से होता है, के निर्धारण में भी शिक्षा की निर्णायक भूमिका होती है। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति का उल्लेख किया गया है ताकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के निर्धारण में शिक्षा की भूमिका को समझा जा सके। अर्थात विभिन्न शैक्षिक स्थिति के उत्तरदाताओं का आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से क्या सम्बन्ध है इस तथ्य की जानकारी के लिए उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण आवश्यक है। जिसके विवरण तालिका संख्या- २ से स्पष्ट हैं कि अधिकांश (५४.२६ प्रतिशत) सूचनादाता उच्च शैक्षिक वर्ग के अंतर्गत आते हैं। दूसरे स्थान पर ३४.८६ प्रतिशत सूचनादाता माध यमिक शैक्षिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि मात्र १०. ८५ प्रतिशत सूचनादाता अशिक्षित वर्ग से संबंधित हैं।

उत्तरदाताओं का जाति के आधार पर वर्गीकरण : जाति अपने आप में सामाजिक स्तरीकरण का एक परम्परागत आधार है। जाति जन्म पर आधारित एक सामाजिक तथ्य है जो न केवल समाज में जातीय-संस्तरण में व्यक्ति की परिस्थिति एवं भूमिका का निर्धारण करती है, बल्कि परम्परागत रूप से उसके व्यवसाय एवं व्यावसायिक स्थिति का भी निर्धारण करती है। यह तथ्य, आज उभर कर आया है कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार व आधुनिकता के प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्ति अपनी व्यवसायिक स्थिति को परिवर्तित करते जा रहे हैं, तथापि परम्परागत समाजों में आज भी जाति व्यक्ति की सामाजिक एवं व्यावसायिक स्थिति एवं प्रकार्यों का निर्धारक कारक बना हुआ है। जातिगत स्थिति किस सीमा तक व्यक्ति की आधुनिकतावादी सोच को प्रभावित कर रही है और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है, इस तथ्य की जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्तरदाताओं की जातिगत स्थिति का विवरण तालिका सं०- ३ के माध्यम से दिया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि अध्ययन के सूचनादाता अधिकांशतः (६७.४४ प्रतिशत) क्षत्रीय जाति के हैं जबकि २०.१५ प्रतिशत तथा १२.४० प्रतिशत ब्राह्मण जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उत्तरदाताओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि : परिवार का स्वरूप व्यक्तियों की सोच, कार्यशैली व समाज में उनके व्यवहार प्रतिमानों व अन्तर-क्रियात्मक सम्बन्धों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। समाज में आज भी संयुक्त परिवार, एकाकी परिवार व मिश्रित परिवारों के दर्शन होते हैं। इन विभिन्न प्रकार के परिवारों का प्रतिविम्बन सामान्यतया व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों, सोच एवं अन्तर-क्रियात्मक सम्बन्धों के निर्धारण में परिलक्षित होता है। परिवार का स्वरूप क्या समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करता है, और या आधुनिकीकरण की प्रक्रिया परिवार के स्वरूप के निर्धारण में अपना प्रभाव डाल रही है, इस तथ्य की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य के प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं की पारिवारिक स्थिति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, जिसे तालिका सं०- ४ में प्रस्तुत किया गया है। तालिका स्पष्ट करती है कि अधिकांश सूचनादाता (६२.०१ प्रतिशत) एकाकी परिवारों से आए हैं जबकि २६.४५ प्रतिशत संयुक्त परिवार के हैं तथा ८.५२ प्रतिशत मिश्रित परिवारों में निवास कर रहे हैं।

विभिन्न पीढ़ियों में उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना : परिवार के स्वरूप में आदिकाल से लेकर आज तक अनेकानेक परिवर्तन होते रहे हैं। संयुक्त परिवार, जो भारतीय समाज की एक आधारभूत विशेषता रही है उसमें समय के साथ-साथ बदलाव आने लगे हैं। संयुक्त परिवार का स्थान वर्तमान में एकांकी परिवारों ने ले लिया है। संयुक्त परिवार प्रथा ग्रामीण समाजों में अधिक पायी जाती रही है। अध्ययन क्षेत्र में परिवार के स्वरूप में हो रहे परिवर्तन को तीन पीढ़ियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर तालिका सं०- ५ के माध्यम से समझा जा सकता है।

तालिका- ५ से स्पष्ट होता है कि परिवार के स्वरूप में विभिन्न पीढ़ियों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। दादा की पीढ़ी में जहाँ ४६.६१ प्रतिशत संयुक्त परिवार थे वहीं वर्तमान में इनकी संख्या मात्र २६.४५ प्रतिशत ही रह गई है। इसके विपरीत एकांकी परिवारों की संख्या ६२.०१ प्रतिशत हो गई है जो दादा की पीढ़ी में मात्र ३०.२३ प्रतिशत ही थी और पिता की पीढ़ी में बढ़कर ४५.७४ प्रतिशत हो गयी थी। उत्तरदाताओं से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ज्ञात होता है कि ग्राम सुवाकोट में परिवार के स्वरूप में हो रहे परिवर्तन को आधुनिकीकरण का कारण एवं प्रभाव दोनों ही समझा जाता है।

विभिन्न पीढ़ियों में उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति : आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में अनेकों परिवर्तन हो रहे हैं। उनमें से एक व्यावसायिक स्थिति में हो रहा परिवर्तन भी है। वर्तमान में व्यक्ति अपने परम्परागत व्यवसाय की अपेक्षा अन्य व्यवसायों को भी महत्व देने लगे हैं। परम्परागत व्यावसायिक स्थिति में शिथिलता आने लगी है, इसे अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न पीढ़ियों में उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के आधार पर समझा जा सकता है। व्यावसायिक स्तर पर पीढ़ी दर पीढ़ी हो रहे परिवर्तनों को तालिका संख्या- ६ में दिये गये तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है।

तालिका ६ से स्पष्ट होता है कि समय के साथ-साथ उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति में परिवर्तन हुए हैं। कृषि जो ग्रामीण समाज में प्रमुख व्यवसाय हुआ करता था समय के साथ-साथ उसके स्तर में कमी देखी गयी है। वर्तमान समय में व्यक्ति कृषि कार्य करने की अपेक्षा नौकरी या कोई अन्य व्यवसाय करना अधिक अच्छा समझता है। जैसे कि दादा की पीढ़ी में कृषि कार्य करने वालों का प्रतिशत ६७.४४ था, वह वर्तमान समय में ४१.८६ प्रतिशत ही रह गया है। इसी प्रकार परम्परागत व्यवसाय की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहे हैं। दादा की पीढ़ी में परम्परागत व्यवसाय करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत ६.३० था। वह अभी ३.१० प्रतिशत ही रह गया है जिससे परम्परागत व्यवसाय में गतिशीलता का ज्ञान होता है। आधुनिकीकरण ने व्यवसायिक स्थिति में हो रहे परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जातिगत भेदभाव के प्रति उत्तरदाताओं की स्थिति : जाति को संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक संदर्भों में देखा जाता है। संरचनात्मक आधार पर यह प्रस्थितियो, विविध-निषेधों के आधार पर जातियों के बीच प्रतिमानित अन्तःक्रिया और सामाजिक सम्बन्धों के स्थाई स्वरूप की ओर संकेत करती है। सांस्कृतिक आधार पर इसको मूल्यों, विश्वासों और प्रथाओं की व्यवस्था के रूप में देखा जाता है। जाति व्यवस्था यद्यपि अभी भी समाज में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है परन्तु फिर भी नगरीकरण, औद्योगीकरण के फलस्वरूप इसके नियमों में शिथिलता देखी जा रही है। अध्ययन क्षेत्र में १२६ उत्तरदाताओं में से ८२.६४ प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा जातिगत भेदभाव को उचित माना गया है तथा केवल १७.०६ प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा इसे उचित नहीं माना है। जातिगत भेदभाव को उचित नहीं समझने वाले उत्तरादाताओं में सर्वाधिक ७२.७२ प्रतिशत उत्तरादाता शूद्र जाति के हैं, भले ही जातिगत भेदभाव को मानने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है परन्तु फिर भी धीरे-धीरे व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन होने

लगे हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति की जातिगत परिस्थिति के विपरीत उसकी योग्यता को अधिक महत्व देने लगा है।

परिवार में महिलाओं की स्थिति : भारत सहित संसार के अधिकांश देशों में स्त्रियों की प्रस्थिति को लेकर सिद्धान्त एवं व्यवहार में एक बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। एक ओर सभी धर्म तथा सामाजिक कानून स्त्रियों की प्रतिष्ठा तथा सम्मान को बहुत अधिक महत्व देते हैं तथा दूसरी ओर व्यवहार में अधिकांश समाजों द्वारा स्त्रियों को सामाजिक आर्थिक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। स्त्रियों की प्रस्थिति में परिवर्तन को भी आधुनिकीकरण के एक सूचक के रूप में स्वीकार किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में परिवार में महिलाओं की स्थिति को तालिका सं०- ८ के माध्यम से दर्शाया जा सकता है। परिवार में महिलाओं की स्थिति के सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि ८३.७२ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि परिवारों में महिलाओं को भी पुरूषों के समान ही स्थिति प्राप्त है। परिवार के समस्त निर्णयों में महिलाओं को भी समान रूप से भागीदारी का अवसर दिया जाता है। पुरूषों से उच्च स्थिति वाले परिवारों की संख्या ०.७८ प्रतिशत ही है जिससे स्पष्ट होता है कि परिवार में स्त्रियों को या तो पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं या फिर परिवार में स्त्रियों की स्थिति पुरूषों से निम्न हैं। स्त्रियों की परिवार में पुरूषों की तुलना में निम्न स्थिति वाले उत्तरदाताओं की संख्या १५.५० प्रतिशत है। वर्तमान समय में शिक्षा, संचार, औद्योगीकरण के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन हुए हैं जो आधुनिकीकरण का ही प्रतीक माना जा सकता है।

निष्कर्ष : प्राप्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट है कि समाज में समय के साथ-साथ अनेकों परिवर्तन हुए हैं। समाज में आ रहे इन परिवर्तनों को समाज वैज्ञानिकों द्वारा आधुनिकीकरण का नाम दिया है। ग्रामीण समाज भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रह गया है। नगरों के समान ही ग्रामीण क्षेत्रों में भी अनेक परिवर्तन परिलक्षित होने लगे हैं। नगरों की तुलना में भले ही यह धीमी गति से हो रहे हैं पर ऐसा नहीं है कि ग्रामीण समाज प्राचीन काल से लेकर आज तक अपने परम्परागत रूप में ही विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और उसके प्रभावों का अध्ययन करना था जिसे परिवार संरचना, व्यवसाय, जातिगत संरचना एवं स्त्रियों की स्थिति के आधार पर समझने का प्रयास किया गया। प्राप्त तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि परिवार संरचना में समय के साथ-साथ परिवर्तन हो रहे हैं। ग्रामीण समाज का आधार मानी जाने वाले संयुक्त परिवारों की स्थिति में परिवर्तन से अब ग्रामीण एकांकी परिवारों को अधिक वरीयता देने लगे हैं। एकांकी परिवारों की बढ़ती संख्या को आधुनिकीकरण का प्रतीक या फिर इसका प्रभाव भी समझा जा सकता है। एकांकी परिवार में व्यक्ति को स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत अधिक रहती है जो एकांकी परिवार की वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। **ग्रामीण** समाज मुख्य रूप से कृषि पर ही आधारित रहे हैं। कृषि ही ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय रहा है परन्तु आज ग्रामीणों की व्यावसायिक स्थिति में भी परिवर्तन होने लगे हैं। कृषि या अन्य परम्परागत व्यवसायों की अपेक्षा ग्रामीणों द्वारा सरकारी या गैर सरकारी नौकरियों के प्रति अधिक लगाव देखने को मिलता है। तीन पीढ़ियों में उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के अध्ययन के आधार पर यह तथ्य सामने आया है कि कृषि एवं परम्परागत व्यवसाय करने वाले परिवारों की संख्या में कमी हुई है, जो व्यावसायिक गतिशीलता का प्रतीक है। व्यावसायिक गतिशीलता भी आधुनिकीकरण का कारण एवं परिणाम दोनों ही हैं। समाज में जहाँ व्यक्ति की जातिगत स्थिति ही उसके पद एवं प्रकार्य निर्धारण का आधार समझी जाती थी। इस सम्बन्ध में भी अध्ययन से प्राप्त तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि आज के समय में जातिगत स्थिति को अर्जित प्रास्थिति की तुलना में कम महत्व दिया जाने लगा है। यद्यपि अध्ययन क्षेत्र में जातिगत भेदभाव मानने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है परन्तु फिर भी धीरे-धीरे जातिगत नियमों में भी शिथिलता देखी जा रही है। जिसे आधुनिकीकरण से जोड़ा जा सकता है।

महिलाऐं समाज का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अंग है, एक समाज विकसित है या नहीं इसका आंकलन करने में महिलाओं की स्थिति भी महत्वपूर्ण कारक है। जिस समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी है उस समाज को विकसित या आधुनिक समाज की संज्ञा दी जा सकती है। वर्तमान समय में चाहे ग्राम हो या नगर सभी जगह महिलाओं को समाज में पुरूषों के समान ही स्थान प्राप्त है जो आधुनिकीकरण का प्रभाव है। प्राप्त तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि अध्ययनात्मक ग्रामीण परिवेश में शिक्षा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में निर्णायक भूमिका निभा रही है। शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरूप ही जहाँ परिवार के स्वरूप में परिवर्तन घटित हुए हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार का स्वरूप परिवर्तन हुआ है। वहीं व्यक्ति की व्यावसायिक स्थिति व सामाजिक स्थिति के निर्धारण में शिक्षा ने निर्णायक भूमिका निभायी है। यहाँ तक की अध्ययन क्षेत्र में व्यक्तियों के बीच सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में भी शिक्षा की निर्णायक भूमिका रही है।

तालिका १

आयु के आधार पर उत्तरदाताअें का वर्गीकरण

आयु (वर्षों में)	उत्तरदाता	प्रतिशत
अशिक्षित	१४	१०.८५
माध्यमिक स्तर	४५	३४.८८
उच्च शिक्षित	७०	५४.२६
कुल	१२६	१००.००

तालिका २

शैक्षिक आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

शैक्षिक	उत्तरदाता	प्रतिशत
३० – ४०	१४	१०.८५
४० – ५०	४५	३४.८८
५० से अधिक	७०	५४.२६
कुल	१२६	१००.००

तालिका ३

जाति के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

जाति	उत्तरदाता	प्रतिशत
ब्राह्मण	१६	१२.४०
क्षत्रीय	८७	६७.४४
शूद्र	२६	२०.१५
कुल	१२६	१००.००

तालिका ४

उत्तरदाताओं के परिवार का स्वरूप

परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त	३८	२६.४५
एकांकी	८०	६२.०१
मिश्रित	११	८.५२
कुल	१२६	१००.००

तालिका ५

विभिन्न पीढ़ियों में उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना

विभिन्न पीढ़िया	परिवार का स्वरूप			योग
	संयुक्त	एकांकी	मिश्रित	
दादा की पीढ़ी	६४ (४६.६१)	३६ (२०.१६)	२६ (२०.१६)	१२६ (१००.००)
पिता की पीढ़ी	५५ (४२.६४)	५६ (४५.७४)	१५ (११.६२)	१२६ (१००.००)
उत्तरदाताओं की पीढ़ी	३८ (२६.४५)	८० (६२.०१)	११ (८.५२)	१२६ (१००.००)

तालिका संख्या-६

विभिन्न पीढ़ियों में व्यवसाय का स्वरूप

विभिन्न पीढ़िया	व्यवसाय			
	कृषि	नौकरी	व्यापार	परम्परागत व्यवसाय
दादा की पीढ़ी	८७ (६७.४४)	१८ (१३.६५)	१२ (६.३०)	१२ (६.३०)
पिता की पीढ़ी	६३ (४८.८४)	४७ (३६.४३)	१५ (११.६२)	७ (५.४२)
उत्तरदाता की पीढ़ी	५४ (४१.८६)	५५ (४२.६२)	१६ (१२.४०)	४ (३.१०)

तालिका संख्या-७

जातिगत भेदभाव को सही/गलत समझने सम्बन्धी उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया

उत्तरदाता	प्रतिक्रिया	
	हाँ	नहीं
ब्राहमण	१५ (१४.०२)	०१ (४.५५)
क्षत्रीय	८२ (७६.३३)	०५ (२२.७३)
शूद्र	१० (६.३४)	१६ (७२.७२)
योग	१०७ (१००.००)	२२ (१००.००)

तालिका संख्या-८
परिवार में महिलाओं की स्थिति

उत्तरदाता	प्रतिक्रिया		
	पुरूषों के समान	पुरूषों से उच्च	पुरूषों से निम्न
३० वर्ष से ४० वर्ष	१३ (१२.०४)	०१ (१००.००)	-
४० वर्ष से ५० वर्ष	४५ (४१.६६)	-	-
५० वर्ष से अधिक	५० (४६.३०)	-	२० (१००.००)
योग	**१०८ (१००.००)**	**०१ (१००.००)**	**२० (१००.००)**

सन्दर्भ

१. दुबे एस.सी., 'एक्सप्लेनेशन एण्ड मनेजमेन्ट आफ चेंज', टाटा-मेक्ग्रोहिल, १६७१
२. लर्नर डी., 'द पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसायटी', फ्री प्रेस न्यूयार्क, १६५८
३. जेटली एस., 'इम्पैक्ट आफ प्लान्ड सोसल चेन्ज एण्ड मॉर्डनाइजेशन आन रूरल वुमेन', ए पायलट सर्वे इन वेस्टर्न यू.पी., आई.सी.एस.एस.आर. रिसर्च अब्सट्रेक्ट, १६८१
४. श्रीनिवास एम.एन, 'सोशियल चेन्ज इन माडर्न इण्डिया', राजकमल पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, १६७५
५. आहूजा राम, 'इण्डियन सोसियल सिस्टम', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, १६६५
६. बिष्ट बी.एस., 'उत्तराखण्ड की भोटिया जनजाति : परम्परा एवं आधुनिकता के सातत्यता का अध्ययन', विवेक प्रकाशन, दिल्ली, १६६२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 | ISSN 0974-0074

बैगा जनजाति में स्वास्थ्य संबंधी मान्यतायें एवं उपचार विधियाँ

❑ मनोज द्विवेदी
❖ प्राणेश कुमार पटेल

अधिकांश जनजातियाँ जंगलों, पहाड़ी भागों, तराई क्षेत्रों या कस्बों से दूर निवास करती हैं। इन भागों में स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता के अभाव में अनेक बीमारियां पाई जाती हैं। गंदे कपड़े पहने रहने के कारण इनमें कई चर्म रोग हो जाते हैं। इन लोगों में मलेरिया, पीलिया, घेंघा एवं अपच की बीमारियां भी पाई जाती हैं। ये लोग उपचार के लिए जंगली जड़ी-बूटियों, झाड़-फूँक एवं जादू-टोने का प्रयोग करते हैं। उन्हें पौष्टिक भोजन भी उपलब्ध नहीं हो पाता है। ये महुआ, चावल, ताड़, गुड़ आदि की शराब का प्रयोग करते रहे हैं जो न केवल इनके स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है बल्कि इनकी प्रतिरोधक क्षमता एवं क्रियाशीलता को भी प्रभावित करता है।

बैगाओं की चिकित्सा पद्धति में जड़ी-बूटियों और झाड़-फूँक का विशेष महत्व है। गुनिया बैगाओं का प्रमुख चिकित्सक होता है, किन्तु अब गुनिया के प्रति अविश्वास पैदा होने लगा है। गुनियायी चिकित्सा पद्धति आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में अधिक व्यय साध्य भी है। आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता के कारण अधिकांश बैगा अब भी मजबूरी में गुनिया के पास झाड़-फूंक करवाने जाते हैं। हालॉकि इन्होंने आधुनिक चिकित्सा पद्धति के नवाचारों को अपनाया है, किन्तु अपर्याप्त मात्रा में। नकारात्मक पहलू यह है कि जैसे-जैसे बैगा नवाचारों को अपना रहे हैं, वे जड़ी बूटियों से संबंधित अपने प्राचीन व विशिष्ट ज्ञान को भुलाते जा रहे हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में आवश्यक सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अनुसूची के माध्यम से सूचनाओं को एकत्र किया गया है इसके साथ-साथ समूह चर्चा के माध्यम से भी सूचनायें एकत्रित की गई हैं। शोध-पत्र में मध्यप्रदेश के डिण्डोरी जिले के सर्वाधिक बैगा आबादी वाले दस गाँवों से चयनित १६४ परिवारों का अध्ययन किया गया है। बैगा जनजाति के स्वास्थ्य संबंधी मान्यताओं और उनमें परिवर्तन के मूल्यांकन के लिए बैगा परिवारों के स्वास्थ्य सूचकों से संबंधित जानकारी एवं आंकड़ों के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राप्त आंकड़ों का सरलीकरण सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग कर विश्लेषण एवं प्रतिवेदन तैयार किया गया है।

प्रजातीय विशेषताएं -

''बैगा द्रविड प्रजाति की जनजाति है।[१] ''बैगा मध्यम से नाटे कद के, लम्बे संकरे सिर और चपटी नाक वाले होते हैं।[२] बैगाओं का कृष्ण वर्ण, शरीर छरहरा तथा मजबूत होता है। इनके केश काले, घने तथा लहरियेदार होते हैं। बैगा पुरुषों को सिर पर चोटी (गिर्दा) तथा लंगोटी के द्वारा पहचाना जा सकता है जबकि महिलाओं को शरीर पर गुदनों के द्वारा पहचाना जा सकता है।[३]''

''**बैगा** अपनी मूल भाषा भूल चुके हैं, और अब अपने आसपास बोली जाने वाली देशज इण्डो-आर्यन भाषा बोलते हैं।''[४] ''स्थानीय बोली फारसी भाषा या गवैंही भाषा, हिन्दी का बिगड़ा रूप बैगाओं द्वारा बोली जाती है।[५]'' बैगा अपने पड़ोसियों की भाषा बोलते हैं अतः बैगाओं की बोली में 'गोंडी' के शब्दों का मिलना स्वाभाविक है। अब वे छत्तीसगढ़ी का विकृत रूप बोलते हैं।[६]'' बैगा अब जो बोली बोलते हैं, उसे ''बैगानी'' कहा जाता है।

बैगा मध्यप्रदेश के मूल निवासी भी कहे जा सकते हैं। बैगा शब्द का तात्पर्य है ''मायावी वैद्य'' और यह इस सन्दर्भ में छोटा नागपुर की जनजातियों के पुरोहित की ओर इंगित करता है। कोल और गोंड, बैगा को एक ऐसा पुजारी मानते हैं जिन्हें क्षेत्र की मिट्टी के रहस्यों का ज्ञान है। वो बैगाओं को अपने से ज्यादा प्राचीन मानते हैं और सीमा विवाद में उनके निर्णय का सम्मान करते हैं। बैगाओं के मध्य प्रान्त में प्रवास के समय उनके ग्राम पुजारी होने के कारण उन्हें बैगा नाम दिया या अपनाया गया।[७]'' अतः बैगाओं को गुनिया के पर्यायवाची के रूप में भी जाना जाता है।

बैगा वर्तमान मध्यप्रदेश की तीन प्रमुख आदिम जनजातियों में से एक है। ये डिण्डोरी, मण्डला, शहडोल, उमरिया, बालाघाट, सहित देश के कई भागों में फैले हुये हैं। भोपाल के जनजातीय

❑ शोध अध्येता-भूगोल, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म०प्र०)
❖ उपाध्यक्ष, एन.जी.ओ. अनूपपुर विकास प्रस्फुटन समिति, अनूपपुर (म.प्र.)

विकास संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार यह राज्य की सबसे पिछड़ी जनजातियों में से एक है। हाल के वर्षों तक बैगा जनजाति के लोग झूम कृषि (बेवार) करते रहे हैं। अब इन्हें डिण्डोरी जिले के ५२ गाँवों में बैगा चक आरक्षित क्षेत्र के भीतर ही सीमित स्तर पर बेवार खेती की अनुमति है। यद्यपि अब वे हल चलाकर कृषि करने की आवश्यकता के लिए मानसिक रुप से तैयार हो रहे हैं।

जनसंख्या – भारतीय जनगणना २०११ के आंकड़ों के अनुसार मध्यप्रदेश में बैगा जनजाति की जनसंख्या ४१४५२६ (तालिका संख्या १,२,३) है जिसमें पुरुष जनसंख्या २०७५८८ तथा महिला जनसंख्या २०६६३८ है। शोध के दौरान बैगा जनजाति की जनांकिकीय-संरचना के अध्ययन में १६४ परिवारों के प्रत्येक सदस्य की जानकारी प्राप्त की गयी जिसमें १६४ परिवारों में ६६७ सदस्य पाये गये। उनकी जनांकिकीय संरचना सारणी क्रमांक १ से स्पष्ट होती है-

सारणी क्रमांक १

अध्यायित जनसंख्या का लिंगानुसार वितरण

कुल अध्यायित	पुरुष	महिला
६६७	४६३	५०४
(१०० प्रतिशत)	(४६.५४ प्रतिशत)	(५०.४६ प्रतिशत)

लिंगानुपात – एल्विन[८] के अनुसार-१६३१ में बैगाओं का लिंगानुपात १००० पुरुषों पर १३५५ महिलाओं का था। वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार बैगाओं में लिंगानुपात ६६७ हो गया है। अध्यायित १० गाँवों के, १६४ परिवारों के, ६६७ सदस्यों में में लिंगानुपात अधिक पाया गया। १००० पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या १०२२ पायी गयी। अतः बैगा समाज में विगत चौरासी वर्षों में लिंगानुपात में गिरावट आई है, लेकिन यह अभी भी राष्ट्रीय स्तर तथा प्रादेशिक स्तर के लिंगानुपात से अधिक है, जिसे सारणी क्रमांक २ में दर्शाया गया है।

सारणी क्रमांक २

लिंगानुपात की तुलना

वर्तमान समय में	सन् १६३१ में
१००० पुरुषों पर	१००० पुरुषों पर
१०२२ महिलाएँ	१३५५ महिलाएँ

सारणी क्रमांक ३

शोध में प्राप्त बैगा जनांकिकीय तथ्यों का विवरण

जनांकिकीय तथ्य	सदस्य	प्रतिशत
बालक (अविवाहित पुरुष)	२७४	२७.४८
बालिका (अविवाहित महिला)	२८३	२८.३८
विवाहित पुरुष (५५ वर्ष तक)	१८२	१८.२५
विवाहित महिला (५५ वर्ष तक)	१८२	१८.२५
५५ वर्ष से अधिक आयु के पुरुष	१६	१.६०
५५ वर्ष से अधिक आयु के महिला	२१	२.१०
विधुर	०६	०.६०
विधवाएँ	१०	१.००
परित्यक्त पुरुष	०६	०.६०
परित्यक्त महिलाएँ	०८	०.८०
कुल सदस्य	६६७	१००

उपर्युक्त सारणी क्रमांक ३ में प्रदर्शित प्रतिशत को कुल जनसंख्या ६६७ से निकाला गया है। सारणी से स्पष्ट होता है कि अध्यायित गाँवों के बैगा समाज में जनांकिकीय दृष्टि से प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। बालिकाओं की संख्या बालकों से अधिक है। ५५ वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या अधिक है। विधुर की तुलना में विधवा अधिक हैं।

शोध के दौरान बैगा समाज में महिलाओं की संख्या का पुरुषों की तुलना में अधिक पाया जाना, महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की तुलना में अधिक होना प्रमाणित करता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य तथ्य, बैगा समाज में महिलाओं के प्रति लैंगिक भेद-भाव न्यूनतम या नहीं होना भी प्रकट होता है क्योंकि कन्या जन्म को रोकने के प्रयास न करने के कारण बैगाओं में लिंगानुपात अधिक (१०२२) पाया गया है।

स्वास्थ्य एवं उपचार सम्बन्धी मान्यताएँ : शोध के दौरान ज्ञात हुआ, कि बैगा समाज की स्वास्थ्य समस्याएँ अत्यधिक जटिल हैं। इसका कारण यह है, कि बैगाओं में बीमारी सम्बन्धी अनेक मान्यताएँ यथा- पूर्वजन्म के कर्म, धार्मिक कारण, खान-पान, पाप-पुण्य, अधिप्राकृतिक-शक्तियाँ तथा प्राकृतिक कारण आदि पायी जाती हैं। परम्परागत चिकित्सा पद्धति, जादू-टोना, झाड़-फूंक, गुनियायी, जड़ी-बूटी, बलि आदि पर निर्भर है।

संतुलित आहार एवं पोषणयुक्त भोजन के अभाव में बैगाओं की अवरोधक क्षमता घटती जा रही है। वनों के कटने एवं सरकारी नियंत्रण से इन्हें भरपूर पोषणयुक्त वनोंत्पाद अब नहीं प्राप्त होते हैं। वनों में शिकार पर प्रतिबंध है। वन अधिकारियों के डर से वनों में छोटे जीवों का शिकार भी नहीं कर पाते हैं। नई कृषि तकनीकि से अपरचित होने के कारण इनका कृषि उत्पादन इतना नहीं हो पाता कि इनके भोजन के आवश्यकता की पूर्ति हो सके, परिणामस्वरूप कुपोषण से इनकी अवरोधक क्षमता लगातार घट रही है और ये बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।

एल्विन ने बैगाओं में बीमारी के कारण व उपचार का वर्णन किया है। एल्विन के अनुसार बीमारियों के संबंध में अनेक मान्यताएँ यथा- प्राकृतिक, अधिप्राकृतिक, भूत, चुडै़ल, राक्षस, मुआ और मसान, डायनकर्म, जनजातीय नियमों का उल्लंघन आदि बैगाओं में पायी जाती है।[९] 'बैगाओं के सम्पूर्ण देवों में से मुश्किल से ही कोई देवता या आत्मा हो जो मनुष्यों के ऊपर बीमारी न भेजता हो। यहाँ तक कि भगवान भी।[१०] विधि-विधान में त्रुटि और माता या भूत से की गयी मनौती की पूर्ति की असफलता भी बीमारियाँ लाती हैं।[११] यदि रोगी को नारायण देव ने पकड़ा है तो परिवार को तत्काल एक दारू और सुअर समर्पित करना होता है।[१२] जब आप ठंडे हों तो बहुत सा पानी पीने से बुखार आ सकता है।[१३]''

गुनिया द्वारा बीमारी का पता लगाने के लिए कई विधियाँ यथा-'बहारी-काड़ी', 'सूपा-तूमा' 'बन-पाती', 'पिधा-घुमाना', 'बारू' और 'धाम' हैं। बीमारियों को दूर करने के लिए मुर्गी, सुअर, तीतर की बलि, नारियल, शराब का समर्पण तथा सामूहिक भोज आदि दिये जाते हैं।

कभी-कभी रुष्ट देवी-देवता या आत्मा को प्रसन्न करने के लिए उसकी आज्ञानुसार शराब, भोजन आदि कराया जाता है। मन्त्रों के द्वारा भूत-प्रेत, चुडै़ल आदि पर नियंत्रण प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की जाती है। सांप-बिच्छू का काटना, रक्तस्त्राव, जलना आदि को ठीक करने के लिए भी मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। बीमारी को दूर करने के लिए कई जड़ी-बूटियों का प्रयोग किया जाता है। ''बुखार उतारने के लिए एक जंगली बूटी 'बच' को कपड़े में लपेटकर गले में बांध दिया जाता है। खांसी को दूर करने के लिए रसोई की छत की कालिख को हल्दी में मिलाकर एक कपड़े में बांधकर गले में बांध देते हैं।[१४]''

बीमारी सम्बन्धी मान्यताएँ : शोध के दौरान बैगा समाज में रोग की उत्पत्ति हेतु कई धारणाएँ पायी गयीं। यथा-

पूर्व जन्म की धारणा :- कई बीमारियों का कारण पूर्व जन्म के दुष्कर्म होते हैं। जैसे- कोढ़ की बीमारी, स्त्रियों का बांझपन और लकवा की बीमारी।

पाप-पुण्य :- यदि कोई व्यक्ति अपने नजदीक के रिश्तेदार की लड़की से अनैतिक सम्बन्ध रखता है जो कि समाज के नियमों के विपरीत है तो उसे कोढ़ की बीमारी हो सकती है। नियम के विरुद्ध परपुरुष से अनैतिक सम्बन्ध रखने वाली स्त्री बांझ हो जाती है। पंचायत का सदस्य पक्षपात करता है, तो अलौकिक शक्ति अवश्य ही दण्ड देती है।

धार्मिक मान्यताएँ :- रोगों की उत्पत्ति का कारण देवी-देवताओं का क्रोध होता है। अनेक देवी-देवताओं का सम्बन्ध विभिन्न रोगों से होता है, यथाः-

१ मरही-देवी के प्रकोप से महिला 'बांझ' हो जाती है।

२ सूखा देव के प्रकोप से बच्चों को सूखा की बीमारी हो जाती है।

३ अंगमारन-देवी के प्रकोप से महिलाओं का मासिक-चक्र अनियमित हो जाता है।

४ धरती-माता को बिना समर्पित किये, ग्रहण किये जाने वाले पेय पदार्थ विष में परिवर्तित हो जाते हैं।

५ बूढ़ा-देव के प्रकोप से हाथ-पैर में दर्द होने लगता है।

६ ठाकुर-देव की नाराजगी से सम्पूर्ण गाँव को उल्टी दस्त होने लगते हैं। प्रसन्न करने के लिए ठाकुर देव की सामूहिक पूजा की जाती है।

७ मराई-देवी के प्रकोप से हैजा की बीमारी हो जाती है।

८ चेचक व मोतीझरा देवी का प्रकोप होता है। सम्पूर्ण गाँववासी उस घर में आकर भजन-पूजन करते हैं।

खान-पान की मान्यताएँ :- बैगा लोग खान-पान सम्बन्धी असावधानी को कई रोगों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं, यथा-

१. अमरूद खाने के बाद पानी पीने से जुकाम हो जाता है।

२. गर्भवती स्त्रियों के नींबू, दही, इमली, खाने से बच्चे के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

३. दूध-पीने के तुरन्त बाद मछली खाने से पेट सम्बन्धी विकार हो जाते हैं।

निषेध तोड़ने के दुष्परिणाम :- बैगा समाज के निषेधों को तोड़ने से व्यक्ति को अलौकिक-शक्ति अवश्य दण्ड देती है, यथा -

१. खाट (पलंग) सोने वाले से छोटी होनी चाहिए, यदि व्यक्ति से बड़ी होगी तो खाट उसे निगल जायेगी और वह मर जायेगा।

२. बिदरी पूजा के पश्चात् कोई भी बैगा स्त्री खदान से छुई (सफेद मिट्टी) नहीं निकाल सकती, यदि वह ऐसा करती है, तो सम्पूर्ण गाँव पर संकट आयेगा।

३. यदि गर्भवती स्त्री घोड़े की रस्सी को लांघेगी तो, गर्भपात हो जायेगा।

४. गर्भवती स्त्री यदि देव-स्थान पर जायेगी तो, देवता की अप्रसन्नता से गर्भपात हो सकता है।

५. मकान में दो दरवाजे बनाने चाहिए, ऐसा न करने पर भूत-प्रेत परेशान करते हैं।

भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताएँ :- अनेक बीमारियाँ भूत-प्रेत लगने के कारण होती है, यथा-

१. किसी महिला को चुड़ैल लगने से मासिक-चक्र गड़बड़ा जाता है तथा गर्भवती स्त्री का गर्भपात हो जाता है।
२. किसी व्यक्ति को भूत लगने से व्यक्ति अपने ऊपर शारीरिक व मानसिक रूप से नियंत्रण खो बैठता है। वह विक्षिप्तावस्था में पहुँचकर अत्यधिक दुर्बल हो जाता है, तथा भूत न भागने पर भूत उसके प्राण ले लेता है, और उसकी मृत्यु हो जाती है।

रोगों की उपचार विधियाँ : शोध के दौरान पाया गया, कि बैगा इलाज हेतु अनेक विधियाँ प्रयोग में लाते हैं। गुनिया बैगाओं का प्रमुख चिकित्सक होता है। वह अपनी अलौकिक शक्तियों के बल पर देवी-देवताओं को प्रसन्न करता है, दुष्टात्माओं को वश में करता है, पूर्वजों की आत्माओं की इच्छा पूर्ण करता है, तथा जड़ी-बूटियों से भी लोगों को स्वस्थ रखता है। गाँव के गुनिया द्वारा लाभ प्राप्त न होने पर तथा गुनिया की विद्या बंध जाने पर दूसरे गांव के गुनिया की शरण में जाया जाता है। अध्यायित ग्राम सिलपिड़ी के गुनिया सर्वाधिक प्रतिष्ठित हैं। बैगा उपचार की निम्न विधियाँ ज्ञात हुई :-

(१) पूजा :- अनेक बीमारियों की पूजा के द्वारा चिकित्सा की जाती है। "ठाकुर-देव" की नियमित पूजा से पूरा गांव बीमारियों से मुक्त रहता है। देवी की पूजा से मोतीझरा तथा चेचक ठीक हो जाता है। धरती-माता की पूजा से पेय-पदार्थ शरीर को हानि नहीं पहुँचाते हैं।

पूजा व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से गुनिया के द्वारा की जाती है। पूजा में नारियल, मुर्गी, सुअर, बकरा आदि की बलि दी जाती है। शराब भी पूजा में समर्पित की जाती है। कुछ ग्रामों में रामायण एवं श्रीरामचरितमानस का पाठ तथा महारानी देवी की विशेष पूजा की जाती। सोलह सोमवार का व्रत भी ग्राम तरच एवं तांतर में महिलाएँ करती हैं, ताकि भगवान प्रसन्न रहें और वे संकट से मुक्त रहें।

(२) तंत्र-मंत्र :- अधिकांश रोगों की चिकित्सा गुनिया तंत्र-मंत्र के द्वारा करता है। बच्चों को ताबीज बांधा जाता है। बुखार को झाड़-फूंक करके ठीक किया जाता है। कुत्ता, बिच्छू व सांप के काटने पर गुनिया झाड़-फूंक कर चिकित्सा करता है। भूत-प्रेत लगने पर मन्त्र के द्वारा भूत-प्रेत को भगाकर पीड़ित व्यक्ति का इलाज किया जाता है। भूत भगाने की क्रिया को 'भूत-हाँकना' कहा जाता है। मन्त्र पढ़ते समय गुनिया बहुत जल्दी-जल्दी तथा अस्पष्ट स्वर में उच्चारण करता है।

(३) सूपा-तूपा :- यह 'गुनियायी विद्या है, क्योंकि इसमें दो व्यक्ति मिलकर इलाज करते हैं। इसमें गुरु व चेला मिलकर भूत-प्रेत, चुड़ैल आदि से पीड़ित व्यक्ति को मुक्त कराते हैं। गुरू अपने हाथ से सूपा लेता है, तथा चेला (शिष्य) को 'तूमा' थमा देता है। गुनिया दोनों हाथों में उड़द कोदों के दाने लेकर शैतान पीड़ित व्यक्ति के ऊपर से उतारकर 'सूपा' में डाल लेता है। चेला गुरू के सम्मुख तूमा लेकर बैठता है, तूमा में अनाज के दाने पड़े रहते हैं। गुरु मन्त्र पढ़ता आरम्भ करता है, कुछ देर बाद शिष्य के हाथ का 'तूमा' अचानक बज उठता है, अब यह माना जाता है कि शैतान आ गया है। अब पीड़ित व्यक्ति के माध्यम से शैतान से प्रश्न पूछें जाते हैं। "क्या तू शैतान अमुक वृक्ष, घाट या व्यक्ति का भूत है?" जिस प्रश्न पर तूमा बज उठता है, वही उत्तर समझा जाता है। फिर शैतान से रोगी के ठीक होने का उपाय पूछा जाता है, इसमें भी प्रश्नोत्तर का क्रम चलता है, जैसे- तू इस व्यक्ति को छोड़ने के लिए क्या लेगा ? फिर कई वस्तुओं को उसे देने को पूछा जाता है। जैसे- शराब, मुर्गी, सुअर, बकरा, आदि। पुनः जिस वस्तु के नाम लेने पर 'तूमा' बज उठता है, वही उत्तर समझा जाता है। फिर उस व्यक्ति के माध्यम से या गुनिया के माध्यम से शैतान की इच्छा पूर्ण कर दी जाती है और वह पीड़ित व्यक्ति को मुक्त कर चला जाता है। सूपा-तूमा विधि का प्रयोग तब किया जाता है, जबकि सामान्य विधियों तथा मंत्रों के द्वारा शैतान का पता लगाना सम्भव नहीं रहता है।

(४) जड़ी-बूटी द्वारा इलाज :- जब गुनिया यह जान लेता है, कि व्यक्ति किसी अदृष्य बाधा से पीड़ित नहीं है, तो वह रोगी का इलाज जड़ी-बूटियों से करता है। कभी-कभी जड़ी-बूटी (दवाई) देते समय गुनिया कुछ मन्त्र पढ़ता है। निम्न रोगों का उपचार जड़ी-बूटियों के माध्यम से किया जाता हैः-

सर्दी जुकामः- हरी मिर्च पीसकर खिलाते हैं।

दस्त लगनाः- साल-वृक्ष की गोंद पीसकर दही के साथ पिलाते हैं।

खांसी आने परः- पिसी हल्दी को शुद्ध घी में लौंग के साथ तलकर खिलाते हैं।

चेचकः- पत्थरचट्टी की पत्ती खिलाई जाती है।

दाद-खाजः- पताली बैंगन के पत्तों को पीसकर खिलाते हैं।

उल्टीः- मोर-पंख की चांदनी को जलाकर उसकी राख पानी के साथ पिलाते हैं।

कुष्ठः- सिट्सकांडा को उबाल कर उसके पानी से स्नान कराया जाता है।

सर्पदंशः- तेंदू की जड़ खिलाई जाती है।

सन्तानों में अन्तरः- अमर बेल व तुलसी की जड़ खिलाई जाती है।

पेट में पटार (कृमि)ः- नीम के पत्ते को पीसकर खिलाते

हैं।

मोतीझरा:- इसकी चिकित्सा हेतु वनधुरिया की बेल की जड़ी खिलाई जाती है।

पीलिया:- वनधुरिया की बेल खिलाते समय मन्त्र पढ़े जाते हैं।

बुखार:- लड़ैया का पत्ता सुंघाया जाता है।

सिर एवं पेट दर्द:- बरमकाल कांदा को खिलाया जाता है।

हड्डी टूटना:- हरसिंगड़ी बेल को पीसकर बांधते हैं।

(५) गुनिया द्वारा प्रेतात्मा को पहचानना एवं भगाना: शोध के दौरान गुनिया द्वारा प्रेतात्मा को पहचान कर उसे भगाने की निम्न विधियाँ ज्ञात हुईं :-

१. झाड़-फूंक :- गुनिया द्वारा अकेले ही मन्त्रों द्वारा प्रेतात्मा को हाँकना (भगाना)।

२. गुनियायी :- गुनिया द्वारा अपने शिष्य की सहायता से प्रेतात्मा पर नियंत्रण कर पीड़ित को मुक्ति दिलाना। जैसे - ''सूपा-तूमा''।

३. पिटाई करना :- पीड़ित की पिटाई करना, जिससे चोट पीड़ित के शरीर में बसी आत्मा/प्रेत को लगती है, फलतः वह भाग जाता है।

४. अंगुली दबाना :- पीड़ित व्यक्ति की अंगुली के नाखून के पास का भाग अपनी अंगुलियों से गुनिया जोर से दबाता है। प्रश्न पूछता है, और प्रेतात्मा पर नियंत्रण प्राप्त कर, पीड़ित व्यक्ति का इलाज करता है।

५. नब्ज देखना :- पीड़ित व्यक्ति की 'नब्ज' या 'नाड़ी' देखकर गुनिया पता लगाता है, कि पीड़ित व्यक्ति भूत-बाधा से पीड़ित है या प्राकृतिक बीमारी से।

अध्यायित ग्रामों में अपनायी जाने वाली ''चिकित्सा-पद्धतियों'' में भिन्नता पायी जाती है। कोई भी परिवार एक विधि पर निर्भर न रहकर, एकाधिक विधियों को अपनाता है। कुछ सामान्य बीमारियों का इलाज बैगा लोग स्वयं ही कर लेते हैं। इनके लिए वे गुनिया के पास या स्वास्थ्य केन्द्र में नहीं जाते हैं।

सारणी क्रमांक-४

अध्यायित ग्रामों के परिवारों द्वारा अपनायी जाने वाली चिकित्सा-विधि

समय	कुल परिवार	स्वस्थ परिवार	अस्वस्थ परिवार	चिकित्सा विधियाँ		
				गुनिया	स्वयं	चिकित्सालय
विगत दो वर्षों में	१६४ (१००)	३० (१८.२६)	१३४ (८१.७१)	८३ (६२)	१८ (१३.५०)	३३ (२४.५०)

उपर्युक्त सारणी क्रमांक ४ से स्पष्ट होता है कि विगत दो वर्षों में ८१.७१ प्रतिशत परिवार बीमार हुए हैं, जोकि काफी अधिक माना जा सकता है और कहा जा सकता है, कि बैगाओं के स्वास्थ्य की दशा दयनीय है। अभी भी कई परिवार (६२ प्रतिशत) गुनिया द्वारा चिकित्सा को प्रमुखता देते हैं। स्वयं द्वारा चिकित्सा को १३.५० प्रतिशत परिवार प्रमुखता देते हैं। चिकित्सालय में इलाज को प्रमुखता (२४.५० प्रतिशत) परिवार देते हैं। शोध के दौरान एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया कि, अब कई परिवार, परिवार नियोजन के प्रति जागरूक हुए हैं और इन्होंने परिवार नियोजन की विधियों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। इन विधियों में नसबंदी प्रमुख है। हालांकि नसबंदी कराने वाली १०० प्रतिशत महिलाएँ ही थीं किसी पुरुष ने नसबंदी नहीं करवाई।

टीकाकरण : शोध में ज्ञात हुआ, कि बैगा परिवार अपने बच्चों को शासन द्वारा निःशुल्क लगाये जाने वाले जीवन रक्षक टीके भी लगवाते हैं।

सारणी क्रमांक-५

टीकाकरण की स्थिति (कुल परिवार-१६४-१००)

टीकाकरण न कराने वाले परिवार	टीकाकरण कराने वाले परिवार	पोलियो	खसरा	चेचक	टिटनेस	सभी टीके
२१ (१२.८०)	१४३ (८७.२०)	१२२ (७४.४०)	०६ (४.२०)	०६ (६.२०)	०६ (४.२०)	०६ (४.२०)

सारणी क्रमांक ५ से स्पष्ट होता है कि अध्यायित १६४ परिवारों में से १२.८० प्रतिशत ने अपने बच्चों को कोई टीके नहीं लगवाये हैं। ८७.२० प्रतिशत परिवारों ने अपने बच्चों को टीके लगवाये हैं। सर्वाधिक टीके ७४.४० प्रतिशत पोलियो के ''पल्स-पोलियो'' अभियान के तहत लगाये गये हैं। चेचक के टीके ६.२० प्रतिशत परिवारों ने अपने बच्चों को लगवाये

हैं खसरा व टिटनेस के टीके ४.२० प्रतिशत परिवारों ने लगवाये हैं, जबकि सभी टीके ४.२० प्रतिशत परिवारों ने अपने बच्चों को सभी टीके लगवाये हैं।

निष्कर्ष : गुनिया के प्रति विश्वास में कमी आयी है। बैगाओं ने ऐलोपैथिक चिकित्सा-विधि अपनाना आरम्भ कर दिया है। बच्चों को जीवन-रक्षक टीके भी लगवाने लगे हैं, कुछ परिवार, परिवार नियोजन की विधियाँ जैसे नसबंदी आदि अपनाने लगे हैं।

वर्तमान में ६२ प्रतिशत परिवार चिकित्सा हेतु गुनिया पर निर्भर हैं। इनमें से अधिकांश लोग गुनिया के पास विवशता में जाते हैं, क्योंकि शासकीय चिकित्सालय दूर तथा खुलने में अनियमित हैं। वहाँ दवाइयों की उचित व्यवस्था नहीं है या फिर स्वास्थ्य कर्मचारी इन्हें निःशुक्ल दवाइयाँ देते ही नहीं हैं। चिकित्सा-सेवकों का व्यवहार भी जनजातीय-समाज के प्रति रूखापन लिए हुए रहता है। अतः वे चिकित्सालय जाने में झिझकते हैं।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के नवाचारों की स्वीकृति एवं गुनिया के प्रति विश्वास में कमी का एक नकारात्मक प्रभाव यह हो रहा है कि बैगाओं को अनेक रोगों की जड़ी-बूटियों का ज्ञान है विशेषकर गुनिया लोगों को, किन्तु गुनिया में अविश्वास एवं संरक्षण के अभाव में यह ज्ञान दम तोड़ रहा है।

सुझाव :- स्वास्थ्य और स्वच्छता परस्पर अर्न्तसम्बन्धित हैं अर्थात् यदि स्वच्छता होगी तो लोग स्वतः ही स्वस्थ होंगे और जब स्वस्थ होंगे तो अपने और क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास में अपनी कारगर भूमिका निभा सकेंगे। अतः स्वास्थ्य नियोजन हेतु अध्ययन क्षेत्र में निम्न प्रकार की व्यूह नीति अपनायी जा सकती है-

यदि चिकित्सालयों में चिकित्सा का उचित प्रबंध एवं जनजातियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाये, तो अधिकांश परिवार चिकित्सालय ही जाना पसंद करेंगे। क्योंकि गुनिया द्वारा चिकित्सा, अधिक व्यय साध्य होती है। जड़ी-बूटियों में बैगाओं के अटूट विश्वास को देखते हुए आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना कर उनकी चिकित्सा का प्रबंध किया जाये तो वांछित लक्ष्य की प्राप्ति संभव है।

यदि पर्याप्त और कुशलतापूर्वक प्रयास किये जायें, तो बैगा समाज चिकित्सा के आधुनिक नवाचारों को व्यापक तौर पर स्वीकार कर सकता है। पल्स पोलियों अभियान के तहत ७४.४० प्रतिशत परिवारों का अपने बच्चों को दवा पिलवाना, इसकी पुष्टि करता है। बैगा समाज परिवार कल्याण के आधुनिक नवाचारों को अपनाना आरम्भ कर चुका है। अतः इसमें उचित सफलता मिल सकती है, यदि चिकित्सा सेवक बैगाओं के साथ समझदारी पूर्ण मानवीय व्यवहार करें।

अध्ययन क्षेत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या अत्यन्त सीमित है। अतः सभी जनजातीय विकासखण्डों एवं कस्बों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले जाने की आवश्यकता है। कस्बों से दूर आंतरिक वन क्षेत्रों में बसे ग्रामों में समय-समय पर स्वास्थ्य परीक्षण एवं उपचार हेतु डॉक्टरों की टीम भेज कर स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन और निःशुल्क उपचार एवं दवाई वितरण की व्यवस्था करनी चाहिए। क्षेत्र में स्वच्छता-जागरूकता कार्यक्रमों का भी समय-समय पर आयोजन किया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए सिर्फ सरकारी व्यवस्था पर आश्रित नहीं होना चाहिए वरन् स्वयं सेवी संगठनों को भी इस क्षेत्र में आगे आना होगा, जो ग्रामीण समाज के लिए निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध कराने से लेकर स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति इन्हें जागरूक करने में अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभा सकते हैं।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के नवाचार की स्वीकृति एवं गुनिया के प्रति विश्वास में कमी का एक नकारात्मक प्रभाव यह हो रहा है कि अनेक रोगों की जड़ी-बूटियों का जो ज्ञान बैगाओं विशेषकर गुनिया को है अविश्वास एवं संरक्षण के अभाव में वह ज्ञान दम तोड़ रहा है। अतः बैगाओं के इस ज्ञान का उपयोग दवाएँ बनाने में किया जाये, जिससे इस दुर्लभ ज्ञान का सरंक्षण तथा उपयोग दोनों ही हो सकेगा।

उपर्युक्त नियोजन व्यवस्था द्वारा क्षेत्र में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है।

संदर्भ

1 Russell, Robert Vane 'Tribes and Castes of the Central Provinces of India' Macmillan & Co., London, 1916, p.77

2 Singh, K S Tribal 'Society in India', Manohar Publication, Delhi, 1995, p.79

3 मिश्रा, शिवाकान्त, 'मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९९८, पृ. ४५

4 Russell, Robert Vane, op.cit. p. 78

5 तिवारी, शिवकुमार, मध्यप्रदेश की जनजातियां-समाज एवं व्यवस्था, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी १९९४, १०९

6 Elwin, Verrier. The Baiga London, John Murray 1939, p. 53

7 Russell, Robert Vane op.cit. p.78

8 Elwin, Verrier. op.cit. pp. 359-407

9 Elwin, Verrier. op.cit., p. 362

10 Elwin, Verrier. op.cit., p. 367

11 Elwin, Verrier. op.cit., p.376

12 Elwin, Verrier. op.cit., p. 361

13 Elwin, Verrier. op.cit., p. 395

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

कामकाजी महिलाओं के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण ग्रामीण परिवारों के संदर्भ में

❑ **रेखा सिंह**

भारतीय समाज के इतिहास में नारी की स्थिति व स्थान में परिवर्तन होता रहा है। वैदिक काल में नारी की स्थिति बहुत अच्छी थी उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा, राजनीति, धर्म, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त था। मनु के अनुसार "यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता"[1] लेकिन इसी नारी की स्थिति उत्तर वैदिक काल में तथा इसके बाद के काल में गिरती चली गयी और स्त्रियों की स्थिति बहुत ही खराब हो गयी। स्त्री वस्तु बनकर रह गयी थी जिसका उपयोग पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी रुप में कर सकता था। मध्य कालीन युग में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त ही सोचनीय हो गयी थी वैदिक काल की 'गृह लक्ष्मी' 'माता' एवं 'शक्ति प्रदायिनी देवी' अब याचिका, सेविका व निर्बलता के प्रतीक के रुप में दिखाई देनी लगी।

अठारहवीं शताब्दी में यह महसूस किया जाने लगा कि महिलाओं को वे सारे सम्मान व अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए जो प्राचीन काल में प्राप्त थे। राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि दयानन्द एवं एनी बेसेन्ट ने सती प्रथा, बाल विवाह, प्रर्दा प्रथा आदि में सफल प्रयास किये। महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु स्वतन्त्रता से पूर्व कुछ महिला संगठनों जैसे- 'भारतीय स्त्री मण्डल' 'पूना सेवा सदन' 'सरोजनी दत्त महिला समाज' आदि का विकास हुआ। नीरा देसाई के अनुसार "अब नारी न तो बच्चा जन्मने की मशीन और न घर की दासी ही मानी जाती है। उसने एक नई सामाजिक महत्ता प्राप्त कर ली है।"[2] महिलाओं को सुरक्षित एवं संरक्षित करने के उद्देश्य से लगभग तीन दर्जन कानून सरकार द्वारा बनाये गये हैं। उनमें से प्रमुख हैं-बाल विवाह निरोधक अधिनियम-१६२६, हिन्दू विवाह अधिनियम-१६५५, विशेष विवाह अधिनियम-१६५४, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम-१८५६,हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम-१६३७, हिन्दू दत्तक गृहण और भरण पोषण अधिनियम-१६५५, स्त्री कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम-१६६८, समान वेतन अधिनियम-१६७६। इन कानूनों के अतिरिक्त सरकार द्वारा अलग-अलग वर्षों में महिला उत्थान के लिए अनेकों प्रयास किये गये जिनमें से कुछ इस प्रकार से हैं-१६७५ में महिला वर्ष, १६६२ राष्ट्रीय महिला कोष, १६६५ में विश्व महिला सम्मेलन, २००१ महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया जाना।

इन सबके अतिरिक्त प्रकार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम आगँनबाडी, इन्दिरा महिला योजना, महिला समृद्धि योजना, महिला समस्या कार्यक्रम, कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास आदि सुविधाएं भी महिलाओं के लिए उपलब्ध है।

महिलाओं से सम्बन्धित अनेकों कानूनों के होने के बावजूद भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के अधीन क्यों रखा जाता है जबकि नारी पुरुष वर्ग के साथ हर क्षेत्र में कंधा से कंधा मिलाकर काम कर रही है। लेकिन पुरुष वर्ग के समान कार्य करने के बाद भी समाज में व्याप्त भेदभाव व्यवहार, लैंगिक असमानता अश्लील व्यवहार सिर्फ नारी को झेलना पड़ता है। सच तो यह है कि इन सब का कारण नारी अशिक्षा, उसका दब्बूपन, उसमे दक्षता की कमी तथा निर्णय न लेने की स्थिति आदि है। इसी संदर्भ में सिघंवी ने कहा है कि "कहने को आज समाज में महिलाओं को हर प्रकार के समान अधिकार प्राप्त हैं लेकिन आज भी वास्तव में घर और समाज में महिलाओं का स्थान पुरुषों से बहुत निम्न हैं और वह आज भी पुरुष शासित समाज में रह रही है।"[3] इसी संदर्भ

भारतीय समाज में पहले महिलाओं द्वारा कोई आर्थिक कार्य करना उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के विरूद्ध था इसलिए उन्हें घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहना होता था पर आज कानून, संविधान और आय की दृष्टि से महिलायें सभी क्षेत्रों में कार्य कर रहीं है साथ ही सरकार द्वारा अलग-अलग वर्षों में महिला उत्थान के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण किया है जिससे महिलाओं को लाभ मिल सके। आज समाज के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सफलतापूर्वक कार्य कर रही इन कामकाजी महिलाओं के प्रति पुरूष वर्ग का दृष्टिकोण क्या है? क्या उनकी कार्यशीलता के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह जानकारी प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास कहा जा सकता है।

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग (मानदेय), आर्चाय नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

में के० एम० पणिक्कर ने कहा है कि "स्त्रियों की शिक्षा व उनकी राजनैतिक जागृति नें उस कुल्हाड़ी को तेज कर दिया है जिसकी सहायता से हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना सम्भव हो गया है।"[४] ग्रामीण क्षेत्रो में महिलायें ३-६ घण्टें घर के काम में तथा १०-१५ घण्टें घर से बाहर कृषि या अन्य कार्यो में व्यतीत करती हैं जबकी पुरुष मात्र ८-१० घण्टें कार्य करते हैं। कार्यरत महिलाओं में जहां ३६ प्रतिशत महिलायें व्यक्तिगत संतुष्टि या सम्मान के लिये कार्य करती हैं वहीं ६४ प्रतिशत महिलायें परिवार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण कार्य करती हैं। सवाल यह है कि इन सबके बाद भी क्या वे अपने लिये समाज और परिवार में सम्मान का स्थान स्थापित कर पाती हैं। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि अब वह समय आ चुका है जब आज की नारी अपनी शक्ति को पहचाने और अपने बारे में उसी तरह सोचे जैसा गांधी जी ने कहा था "स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है क्योंकि यदि शक्ति का अर्थ पशु शक्ति है तो निश्चित रुप से यह पुरुष के पास ज्यादा है पर यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति है सहने व झेलने की शक्ति है तो निश्चित रुप से स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है।"[५]

शोध प्रारूप : अध्ययन कानपुर नगर के कल्यानपुर ब्लाक के समीप स्थित बैरी गांव के ग्रामीण परिवारों में कार्यरत महिलाओं के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण पर आधारित है। गांव में कुल परिवारों की संख्या ४५० है दैव निर्देशन विधि के अन्तर्गत नियमित अंक प्रणाली को अपनाते हुए ४५० परिवारों में हर तीसरे परिवार के मुखिया को चुना गया। इस प्रकार अध्ययन में १५० पुरूषों को सम्मिलित किया गया ।

प्रस्ततु अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण परिवारों में कार्यरत महिलाओं के प्रति पुरूषों का क्या दृष्टिकोण है समय के परिवर्तन के साथ आज परिवारों में महिलाएं घर से बाहर कार्य करने निकलती हैं कुछ परिवारों में महिलाओं को कार्य करने की आज्ञा है पर परिवारों के मूल्यों एवं नियमों को तोड़ने की आज्ञा नहीं है। के० एम० कपाडिया ने इस सन्दर्भ में अपना तथ्य प्रस्तुत किया है ''आज परिवार के बुजर्ग भी अपनी बहुओं से यह अपेक्षा करने लगे हैं कि वे आर्थिक उपार्जन कर परिवार की आय में योगदान दें आज भी नारी उनकी सीमा रेखा लाधंने की आज्ञा नहीं दे सकते परन्तु उनसे यह आशा की जाती है कि वे आर्थिक समस्याओं के निवारण हेतु धनोपार्जन कर परिवार की आय में अपना योगदान दें।"[६]

कार्यरत महिलाओं के प्रति पुरूषों का दृष्टिकोणः- भारतीय समाज में पहले महिलाओं द्वारा कोई आर्थिक कार्य करना उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के विरूद्ध था इसलिए उन्हें घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहना होता था पर आज कानून संविधान और आय के दृष्टि से महिलायें सभी क्षेत्रों में कार्य कर रहीं है साथ ही सरकार द्वारा अलग-अलग वर्षों में महिला उत्थान के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण किया है जिससे महिलाओं को लाभ मिल सके। अतः सूचनादाताओं से पूछा गया कि कार्यरत महिलाओं के प्रति आपका कैसा दृष्टिकोण हैं।

सारणी संख्या -१

कार्यरत महिलाओं के कार्य प्रति पुरूषों का दृष्टिकोण

पुरूषों का दृष्टिकोण	संख्या	प्रतिशत
सहमत	१०८	७२
असहमत	४२	२८
कुल योग	१५०	१००

प्रस्तुत सारणी से यह पता चलता है कि सर्वाधिक ७२ प्रतिशत सूचनादाता महिलाओं के कार्य करने के प्रति सहमत हैं जबकि २८ प्रतिशत सूचनादाता इससे सहमत नहीं है अतः स्पष्ट है कि कार्यरत महिलाओं के प्रति अधिकांश पुरूषों का दृष्टिकोण सकारात्मक है अर्थात् समय परिवर्तन के साथ और आवश्यकताओं के कारण आज पुरूषों की धारणा परिवर्तित हो रही हैं।

महिला सदस्य द्वारा घर से बाहर कार्य करनाः- भारतीय परम्परा के अनुसार महिलाओं को घर के कार्यो तक सीमित रखा जाता है और वे इन कार्यों में अधिक निपुण होती हैं लेकिन संविधान में 'समान वेतन अधिनियम १६७६' के अनुसार महिलाओं को भी पुरूषों के समान वेतन और अधिकार प्रदान किया जाता है जिससे नारी हर क्षेत्र में पुरूषों के समान कार्य कर रही है। अतः सूचनादातों से पूछा गया कि क्या आपके परिवार की महिला सदस्य बाहर कार्य करने जाती है जो सूचनाएं प्राप्त हुई उसे सारणी संख्या ०२ में प्रर्दशित किया गया है-

सारणी संख्या -२

परिवार की महिला सदस्य द्वारा घर से बाहर कार्य करना

घर से बाहर कार्य करना	संख्या	प्रतिशत
हां	१०५	७०
नही	४५	३०
कुल योग	१५०	१००

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं से सम्बन्धित जो प्राचीन धारणा थी उसमें काफी परिवर्तन आ चुका है आज महिला पुरूषों के समान ही बुद्धिमता और कुशलता प्रर्दशित कर वे पुरूषों के समकक्ष खड़ी हैं ७० प्रतिशत परिवारों की महिलाएं घर से बाहर जाती हैं जबकि ३० प्रतिशत महिलाएं कार्य करने नहीं जाती हैं। परिवर्तन के इस दौर में भी रूढ़िवादी लोग आज भी महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के विरूद्ध हैं फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाएं आर्थिक दृष्टि से कोई न कोई कार्य कर रही हैं और आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो रही हैं आज उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर पर जो प्रगति हुई है वह उनकी आर्थिक स्वतंत्रता का परिणाम है।

महिलाओं के कार्य करने के क्षेत्र : महिलाएं जिस तेजी के साथ हर क्षेत्र में उन्नति कर रही हैं जिसकी ५० वर्षो पूर्व कल्पना भी नहीं की गयी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा औद्योगीककरण और नवीन विचारधारणा के कारण महिलाओं की आर्थिक निर्भरता लगातार बढ़ रही है आज कल शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण, मनोरंजन, कृषि उद्योग, कार्यालयों में स्त्री कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के कार्य करने के कौन से क्षेत्र हैं उनके विचारों सारणी संख्या-०३ में प्रदर्शित किया गया हैं-

सारणी संख्या -३

महिलाओं के कार्य करने के क्षेत्र का विवरण

कार्य करने के क्षेत्र	संख्या	प्रतिशत
मजदूरी	८१	५४
आगंनबाडी	३०	२०
शिक्षकाएं	१८	१२
सिलाई कढ़ाई	१२	०८
अन्य(ब्यूटीपार्लर, समूह सदस्य, पापड़ बनाना)	०६	०६
कुल योग	१५०	१००

सारणी संख्या ०३ से ज्ञात होता है कि ५४ प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि महिलाएं मजदूरी कार्यो को करती हैं जबकि २० प्रतिशत महिलाएं आगंनबाडी का कार्य करती हैं १२ प्रतिशत महिलाएं शिक्षकाएं हैं जबकि ०८ प्रतिशत सिलाई कढ़ाई का कार्य करती हैं और ०६ प्रतिशत महिलाएं अन्य कार्य करती हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अधिसंख्यक महिलाएं मजदूरी कार्यो में लगी है पर धीरे-धीरे दूसरे क्षेत्रों में भी उन्होनें अपना स्थान बनाया है।

महिलाओं के कार्य करने के लिए उत्तरदायी कारणः आज नारी पुरूष वर्ग के साथ हर क्षेत्र में कंधा से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है लेकिन महिलाओं में रोजगार के लिए प्रेरणा पुरूषों से भिन्न होती है क्योंकि अधिकांश ग्रामीण महिलाएं परिवार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण कार्य करती हैं और आय का अधिकांश भाग परिवार की खराब स्थिति को उच्च बनाने के लिए खर्च करती हैं। परिवार की महिला सदस्य घर से बाहर कार्य करने क्यों जाती हैं इसे सारणी संख्या ४ में प्रदर्शित किया गया है-

सारणी संख्या -४

महिलाओं के कार्य करने के लिए उत्तरदायी कारण

उत्तरदायी कारण	संख्या	प्रतिशत
घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु	९६	६४
आत्म निर्भर होने के लिए	३०	२०
अपनी शिक्षा का उपयोग करने के लिए	२४	१६
कुल योग	१५०	१००

सारणी संख्या ४ से पता चलता है कि ६४ प्रतिशत सूचनादाताओं के अंनुसार महिलाएं घर की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के कारण कार्य करती हैं, जबकि २० प्रतिशत महिलाएं आत्मनिर्भर होने के कारण कार्य करती हैं। १६ प्रतिशत अपनी शिक्षा का उपयोग करने के कारण कार्य करती हैं। अतः इससे स्पष्ट होता है कि कुछ ही महिलाएं अपनी व्यक्तिगत संतुष्टि या सम्मान के लिए कार्य करती हैं बल्कि अधिकांश महिलाएं परिवार की खराब आर्थिक स्थिति को सुधारने के कारण कार्य करती हैं।

महिलाओं का पुरूषों के साथ कार्य करना : प्राचीन भारतीय समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन था। उस समय महिलाएं पुरूषों के साथ करने की बात तो बहुत दूर वह बिना पर्दा के सामने नही आ सकती थीं क्योंकि दोनों की स्थिति समाज में अलग-अलग थी। लेकिन आज समय परिवर्तन के साथ महिलाएँ पुरूषों के साथ हर क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। लेकिन पुरूष वर्ग के साथ कार्य करने के बाद भी समाज में व्याप्त भेदभावपूर्ण व्यवहार, लैगिंक असमानता, अश्लील व्यवहार नारी को झेलना पड़ता है। अतः सूचनादाताओं से पूछा कि क्या महिलाओं को पुरूषों के साथ कार्य करना चाहिए उनके विचार सारणी संख्या ५ में प्रर्दशित किये गये हैं-

सारणी संख्या -५

महिलाओं का पुरूषों के साथ कार्य करने पर विचार

पुरूषों के साथ कार्य करना	संख्या	प्रतिशत
हॉ	१२६	८६
नही	२१	१४
कुल योग	१५०	१००

सारणी से ज्ञात होता है कि ८६ प्रतिशत सूचनादाताओं ने जबाव दिया कि महिलाओं को पुरूषों के साथ कार्य करना चाहिए जबकि १४ प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि महिलाओं को पुरूषों के साथ नही करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा, आधुनिकीकरण, संचार साधनों ने रूढ़िवादी सोच को परिवर्तित किया है जिससे आज का पुरूष महिलाओं का पुरूषों के साथ काम करने को गलत नही मनता।

कार्यरत महिला होने के कारण गृह प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारीः भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है जहां पुरूषों को केवल आर्थिक कार्यों से सम्बन्धित कार्य ही सम्पन्न करने होते हैं और महिलाओं को साफ-सफाई, खाना बनाना एवं बच्चों का लालन पालन करना होता हैं। लेकिन वर्तमान में महिलाएं घर के कार्यो को सम्पन्न करती हैं साथ ही बाहर के कार्यो को करके परिवार की आय में अपना सहयोग प्रदान करती हैं लेकिन परिवर्तन के इस दौर में पुरूषों की मानसिकता अभी पूरी तहर समाप्त नही हुई है परिवार में भले पत्नी नौकरी करें घर के सारे काम भी उसी को करने पड़ते हैं। पुरूषों के द्वारा उनके कार्य में मदद भी बहुत कम परिवारों में देखने को मिलती है। पुरूष कहता तो जरूर है कि दोनों समान हैं पर व्यवहारिक रूप में उच्चता निम्नता दिखाई देती है। क्या कार्यरत महिला होने के कारण गृह प्रबन्ध में पुरूष अपनी भागीदारी देते है। इसे हम सारणी संख्या ६ में देख सकते है-

सारणी संख्या -६

गृह प्रबन्ध में पुरूषों की भागीदारी

पुरूषों की भागीदारी	संख्या	प्रतिशत
हॉ	३६	२४
नही	१०५	७०
कभी कभी	९	६
कुल योग	१५०	१००

सारणी संख्या ६ से पता चलता है कि २४ प्रतिशत सूचनादाताओं ने जवाब दिया कि महिलाओं के कार्यरत होने के कारण वे गृह प्रबन्ध में अपनी भागीदारी देते हैं जबकि ७० प्रतिशत सूचनादाता इस बात के पक्ष में नही है। केवल ६ प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि वह कभी-कभी गृह कार्यो में सहयोग करते हैं। अर्थात् अधिकांश का मानना है कि घर के कार्य सिर्फ महिलाओं को ही करने चाहिए भले ही महिला घर से बाहर कार्य क्यों न करती हो।

कार्यरत महिलाओं द्वारा परिवार के साथ सामजस्यः महिलाएं परम्परागत रूप से घर के सभी कार्यो को करती हैं और फिर वह घर से बाहर जाकर पुरूषों के समान हर क्षेत्र में कार्य करके परिवार की आय में अपना सहयोग प्रदान करती हैं। महिलाएं घर तथा बाहर के कार्यो की मांग तथा इसके साथ-साथ घरेलू सुविधाओं तथा सहायता के अभाव की वजह से छोटी-छोटी घटनाएं भी कामकाजी महिलओं को उत्तेजित कर देती हैं जिससे महिलाओं को परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई आती है। अतः सूचनादाताओं से पूछा गया कि क्या कार्यरत महिलाओं द्वारा परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई आती है जो सूचनाएं प्राप्त हुई उन्हे हम सारणी संख्या ७ में देख सकते हैं -

सारणी संख्या-७

कार्यरत महिलाओ द्वारा परिवार के साथ सामंजस्य

परिवार के साथ सामजस्य	संख्या	प्रतिशत
हॉ	८४	५६
नही	३९	२६
कोई उत्तर नही	२७	१८
कुल योग	१५०	१००

सारणी संख्या ७ को देख कर पता चलता है कि ५६ प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना हैं कि कार्यरत महिलाओं को परिवार के साथ सामजस्य स्थापित करने में कठिनाई आती है जबकि २६ प्रतिशत सूचनादाता का मानना है कि कामकाजी महिलाएं अपने कार्यो के साथ परिवार में भी बहुत अच्छा सामंजस्य बना लेती हैं। शेष १८ प्रतिशत सूचनादाताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया।

प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण परिवारों में कामकाजी महिलाओं के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने से स्पष्ट होता हैं कि समय के साथ लोगों की सोच में परिवर्तन आ रहा हैं लेकिन पूर्ण रूप से बदलाव की स्थिति नहीं हैं। ७२ प्रतिशत सूचनादाता महिलाओं के कार्य करने से सहमत हैं, महिला सदस्य द्वारा घर से बाहर कार्य करने के सम्बन्ध में ७० प्रतिशत सूचनादाताओं की राय पक्ष में हैं। सर्वाधिक ५४ प्रतिशत महिलएं मजूदरी का कार्य करती हैं। महिलाओं के कार्य करने के सम्बन्ध में मौटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अधिंकाश ६४ प्रतिशत महिलाएं परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के कारण कार्य करती हैं। ८६ प्रतिशत सूचनादाता

इस बात के पक्ष में हैं कि महिलाओं को भी पुरूषों के साथ कार्य करना चाहिए। ७० प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि घर में कार्यरत महिला होने के बाद भी वे गृह प्रबन्ध में वह अपनी भागीदारी प्रदान नहीं करगें। ५६ प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना हैं कि महिलाओं के कार्यरत होने से परिवार को सामंजस्य स्थापित करने में उन्हे कठिनाई आती हैं।

अतः अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में अनेक प्रयासों के बावजूद देश की महिलाओं की स्थिति में बहुत अधिक सुधार नहीं हो पाया है। आज हमारा देश विश्व के प्रगतिशील देशो के अग्रणी होने के बावजूद महिलाओं की एक बड़ी आबादी अशिक्षा, निर्धनता, असमानता के कारण उपेक्षित हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक महिलाएं हर स्तर पर उपेक्षित हैं। महिलाओं की उपेक्षा के लिए परिस्थितियां तथा सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था उत्तदायी रही है। सरकार तथा समाज को इन परिस्थितियों का अध्ययन करके समस्याओं का समुचित निदान करना होगा और साथ ही पुरूषों को चाहिए कि वह महिलाओं को अपने अधीन न समझकर अपना सहयोगी समझें और साथ ही सम्पूर्ण समाज को अपनी सोच, रवैये और पूर्वाग्रहपूर्ण धारणाओं को भी महिलाओं के प्रति बदलना चाहिए।

सन्दर्भ

१. मनुस्मृति ३.५६
२. देसाई नीरा, 'वोमेंस इन मार्डन इण्डिया', बोरा पब्लिकेशन बाम्बे, १६५७, पृ० २४६
३. सिघंवी, 'नारी भीतर और बाहर', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ११०००२
४. पणिक्कर के० एम०, उद्धधृत मोतीलाल गुप्ता, 'भारतीय संस्थायें', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ० ४४६
५. महात्मा गांधी, 'यंग इण्डिया', १० अप्रैल, १६३०
६. कपाड़िया के० एम०, 'मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया', ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १६६५, पृ० ५२

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

गढ़वाली लोक गीत विलुप्ति के कगार पर : एक ऐतिहासिक अध्ययन

❑ **डॉ० पूनम भट्ट**

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार गढ़वाल धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है, अध्यात्मिक भावना गढ़वाली लोक मानस में पूर्णतः समायी हुयी है। ऐसे ही लोकगीत लोक जीवन के बीच से उपजते हैं। गढवाल क्षेत्र में लोक गीतों का बहुल भण्डार है। किन्तु वर्तमान समय में गढ़वाली लोकगीत परम्परा सभ्यता के विकास के साथ-साथ विलुप्त होने की ओर बढ़ रही है। कहा जाता है कि सभ्यता जब अत्यन्त सभ्य हो उठती है तो वह नपुंसक हो जाती है। लोक परम्पराओं का विकास सभ्यता के साथ न होना लोक परम्परा को विलुप्ति के कगार पर पहुँचाती है। प्रस्तुत आलेख गढ़वाली लोक गीतों की प्रकृति, प्रकार तथा विलुप्ति को उजागर करने का एक प्रयास है।

गढ़वाल अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व तथा प्राकृतिक सौन्दर्य में अद्भुत है। गढ़वाल शब्द का आरम्भ कब और कैसे हुआ। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों व भाषाविदों के अनेक मत हैं। प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि हिमालय के पांच खण्डों में से एक खण्ड केदारखण्ड[१] को ही आधुनिक गढ़वाल कहा गया है। यह स्थान ऋषि मुनियों का निवास स्थान रहा है। गढ़वाल को अन्य कई नामों से भी जाना जाता था जैसे पांचाल देश, देवभूमि, तपोभूमि, बदरीकाश्रम आदि।[२]

प्राचीन काल से ही गढ़वाल अपनी भौगोलिक विशिष्टता के लिये प्रसिद्ध रहा, परन्तु समय-समय पर गढ़वाल की भौगोलिक सीमा बदलती रही। गढ़वाल जिस प्रकार अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध रहा, उसी प्रकार ऐतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, नाग, किन्नर, किरात, आदि लोगों से सम्बधित रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद जब पंवार वंशज महाराजा अजयपाल ने यहाँ के सब ठाकुरी राजाओं और सरदारों को जीत कर सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया तब यहाँ ५२ गढ़ों के होने के कारण यहाँ का नाम गढ़वाल पड़ा।[३]

गढ़वाल मंडल का सम्पूर्ण भू भाग अलकनन्दा, भागीरथी और यमुना उपत्यका में स्थित है। वर्तमान में गढ़वाल ७ जनपदों चमोली, रूद्रप्रयाग, पौड़ी, टिहरी, उत्तरकाशी, देहरादून व हरिद्वार में विभक्त है। गढ़वाल की अपनी एक अलग संस्कृति व लोक परम्परा है। इसी संस्कृति के अन्तर्गत गढ़वाली लोकगीत भी निहित हैं।

गढ़वाली लोकगीत शैली का ऐतिहासिक अध्ययन : भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार गढ़वाल भी धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है, अध्यात्मिक भावना गढ़वाली लोक मानस में पूर्णतः समायी हुयी है। ऐसे ही लोकगीत लोक जीवन के बीच से उपजते हैं। वे बनाये नहीं जाते वरन् सावन के उमड़ते-घुमड़ते बादलों की तरह बरसते हैं कभी कभार यह मालूम नहीं होता कि उनका रचयिता कौन है फिर भी वे हमें लोक जीवन से जोड़कर आनन्द देते हैं। मध्य हिमालयी (गढवाल क्षेत्र) में लोक गीतों का बहुल भण्डार है। लोक गीतों पर देश, काल परिस्थिति का सीधा प्रभाव दिखता हैं, लोक गीत लोक जीवन से इतने गहरे अर्न्तसम्बन्ध रखते हैं कि ये मनोभावों को सहजता से ही अभिव्यक्त कर देतें हैं। गढ़वाल के लोक गीतों से हमें गढ़वाल के इतिहास को जानने में मदद मिलती है, लोक गाथा के माध्यम से गढ़वाल की ऐतिहासिक घटनाओं व समयकाल के दर्शन होते हैं। गढ़वाल के लोक गीतों को अलग-अलग वर्गीकृत किया गया है।

गोविन्द चातक ने गढवाली लोकगीत रचना में लोक गीतों को उनके भाव, आकार प्रकार के आधार पर इस तरह बॉटा है।[४]

(१) **धार्मिक गीत**-जागर, रखवाली, देवता, भूत भैरव और आछरियों के मनौती गीत

(२) **संस्कार गीत**- जन्म के गीत, चूड़ाकर्म के गीत, जनेऊ के गीत, विवाह के गीत, मॉगल, मृत्यु संस्कार संम्बधी गीत।

(३) **ऋतु गीत**- बसन्ती गीत, चैती, झूमैलो, खुदेड गीत, बारहमासी गीत, होली।

(४) **नृत्य गीत**- चौंफुला, छोपती, चॉचरी, थड़या, माघ गीत, तॉदी।

(५) **प्रणय गीत**- बाजूबंद, लामण छोपती, बारहमासी, दामपत्य जीवन के प्रेम गीत।

(६) **विविध गीत**- छूड़ा, दरोल्या, हास्य व्यंग्य विषयक गीत, सामयिक विषयों सम्बधी गीत, बाल गीत, श्रम गीत, जातियों के गीत।

❑ रूद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)

(७) लोक गाथाऐं- पौराणिक गाथाएं, हारूल, वारता।
(८) वीर गाथाऐं- पवाडा,
(६) प्रणय गाथाऐं- चैती।

हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली लोक गीतों को विषय और रस की दृष्टि से को बारह भागों में विभक्त किया हैः- १. मांगल २. झुमैलो ३. थड़्या ४. बासन्ती गीत ५. खुदेड़ गीत ६. चौंफुला (मिलन गीत) ७. कुलाचार ८. चौंमासा ६. बारामासा १०. पट-उपदेशात्मक ११. सामयिक गीत १२. राष्ट्रीय गीत।

शिवानन्द नौटियाल ने लोकगीतों का वर्गीकरण पन्द्रह प्रकार से किया है -

१. देवताओं के मांगल गीत, २. वीर गाथा गीत, ३ हास्य व्यंग्य गीत, ४. संस्कार मांगल गीत, ५. ऋतु गीत, ६. जातियों के गीत, ७. धार्मिक गीत, ८. नृत्य गीत, ६. श्रम गीत, १०. भूत प्रेत के गीत, ११. प्रणय गीत, १२. बाल गीत, १३. रखवाली (रक्षा के गीत), १४. छूडा गीत, १५. सामयिक गीत

लोकगीत लोक जीवन को समझने के लिये सबसे सरल माध्यम हैं, ऐतिहासिक काल की जानकारी व तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, परिवेश की जानकारी लोक गीतों से हो जाती है और वह तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब लिपिबद्ध सामग्रियों का सर्वथा अभाव हो ऐसे में लोकगीतों के वाहक ही पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण के माध्यम होते हैं।

गढ़वाली लोकगीतों की प्रकृति- गढ़वाली लोक गीत ऐसे गीत हैं जिनका कोई स्थानीय नामकरण नहीं हैं उदाहरण के लिये गढवाल में नारी उत्पीड़न के अनेक लोक गीत मिलते हैं जिनमें खुदेड़ गीत, झुमैला आदि उल्लेखनीय हैं। सामायिक गीतों की प्रकृति लोकगीतों से भिन्न हैं, जो सीमित समय तक चलते हैं व कुछ समय बाद अप्रासंगिक हो जाते हैं जैसे- मंहगाई, सड़क, बिजली, पानी, की समस्याओं के गीत एक निश्चित समय तक चल पड़ते हैं। कुछ वर्गो के लोकगीत गढ़वाल में उपलब्ध नहीं होते, वे किसी समय प्रचलित रहे होंगे लेकिन अब मिट चुके हैं इनमें जन्म-मरण, जनेऊ, त्यौहार, मुन्डन, चक्की, तथा व्रत के गीत मुख्य हैं।

गढवाली लोकगीतों के संरक्षण के लिए प्रयास- गढ़वाली लोक गीतों के क्षेत्र में साहित्यकारों, रचनाकारों, शोधार्थियों द्वारा किये गये प्रयासों से ही लोकगीत परम्परा का कुछ हद तक संरक्षण हो पाया है। सर्वप्रथम १६०५ में तारादत्त गैरोला की रचना (सदैई) में गढ़वाली लोकगीतों का संग्रहित करने का कार्य हुआ।

भीष्म कुकरेती ने अपने लेख में स्पष्ट किया है कि गोविन्द चातक, शिवानन्द नौटियाल, मोहन लाल बाबूलकर, हरिदत्त भट्ट शैलेश व अबोध बन्धु बहुगुणा ने गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण व विश्लेषण किया, जो कि साहित्यिक व वैज्ञानिक तरीके से किया गया।

सर्वप्रथम गढ़वाली लोकगीतों को वर्गीकृत करने का कार्य अबोध बन्धु बहुगुणा[७] द्वारा रचित धुयॅाल रचना १६५४ में किया गया। १६५६ में गोविन्द चातक[८] ने गढ़वाली लोक गीतों का समग्र साहित्यिक अध्ययन किया। गढ़वाली लोक गीतों को संरक्षित करने के लिये शिवानन्द नौटियाल ने अपनी रचनाओं गढ़वाली लोक गीत व लोक नृत्य, खुदेड़ गीत, छम घुघरू बाजला, व गढ़वाली बारमासा में अतुलनीय कार्य किया।

शिवनारायण सिंह बिष्ट ने प्रसिद्ध लोकगाथा गढु सुमियाल के पवाड़े को १६२८ में संकलित किया। गढ़वाली लोकगीत रचना में काण्डई दशज्यूला निवासी सर्वेश्वर दत्त काण्डपाल[६] की रचना समौंण, समौण अर बुझौण, १६७१-७२ झुमका गीत संग्रह में गढ़वाली लोकगीत शैली में रचना कार्य किया।

पाण्डव लीला गायन, गढ़वाली गायन, राधा खण्डी रास जिसको गढ़वाली गायन के द्वारा मंचित करने का श्रेय जनपद रुद्रप्रयाग निवासी डी० आर० पुरोहित, कृष्णानन्द नौटियाल, राकेश भट्ट को जाता है जो कि ऐतिहासिक धरोहरों को बचाने का श्रेयस्यकर प्रयास है। आज वर्तमान में गढ़वाली गायन के क्षेत्र में कार्य कर रहे गायकों ने कैसेट व सी०डी० व्यवसाय में कुछ हद तक गढ़वाली लोक गीतों को घर-घर पहुचाने का काम किया है। प्रीतम भरतवाण के जागर गायन व लोक गाथाओं का गायन लोकगीतों के संरक्षण में सहायक सिद्ध हो रहा है, वहीं गढ़वाल के प्रसिद्ध गायक नरेंद्र सिंह नेगी ऋतु गीत, संस्कार गीत, नृत्य गीत, प्रणय व विविध गीतों को लोकगीत शैली में गायन के द्वारा गढ़वाल की लोक गीत विधा को संरक्षित करने का काम कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध में शोधार्थी द्वारा गढ़वाल में जागर सम्राट के नाम से ख्याति प्राप्त गायक प्रीतम भरतवाण से दूरभाष से हुई वार्ता में उन्होने गढ़वाल की लोक गीत परम्परा के बारे में कहा कि अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा पौराणिक समय मे गढ़वाल की लोक गीत परम्परा समृद्ध थी। आम जनमानस द्वारा रचे गये गीत लोक जीवन से जुड़े थे, गीत समृद्ध संस्कृति को वयां करते हैं।

गवेषिका के यह पूछने पर कि क्या वे सभी गीत नयी पीढ़ी तक हस्तांतरित हो पायेंगें- इस पर भरतवाण को कहना था कि व्यवसायिक गायन श्रोताओं के पसंद के अनुसार सभी

गीतों को हस्तान्तरित करना असम्भव है, लेकिन वे स्वयं प्रयासरत हैं कि खोज बीन व शोध के माध्यम से वे गीत सामने आयें ताकि उन्हें जीवंत किया जा सके।

गढ़वाली लोकगीत विलुप्ति के कगार पर- गढ़वाली लोकगीत परम्परा सभ्यता के विकास के साथ-साथ विलुप्त होने की ओर बढ़ रही है। कहा जाता है कि सभ्यता जब अत्यन्त सभ्य हो उठती है तो वह नपुंसक हो जाती है। लोक परम्पराओं का विकास सभ्यता के साथ न होना लोक परम्परा को विलुप्ति के कगार पर पहुँचाती है। विश्वविद्यालयों और विद्वानों की ओर से भी लोक साहित्य को उपेक्षापूर्ण यंत्रणा हाथ लगी है। सचाई यह है कि एक ही समाज के उच्च और निम्न वर्ग नागरिक और ग्रामीण, संस्कृति के विभिन्न स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं, और एक दूसरे को संबल प्रदान करते हैं। हमारी सभ्यता व संस्कृति आज दुर्बल होती जा रही है क्योंकि समाज का पढ़ा लिखा वर्ग लोक संस्कृति से अपना पीछा छुड़ाता जा रहा है। इसी सन्दर्भ में भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने ग्रामगीतों की ओर ध्यान देना चाहिए। लोकगीतों में शामिल कई गीत विलुप्त होने के कगार पर हैं।[१०] यथा-

(१) धार्मिक लोकगीत- आदि काल से लेकर ऐतिहासिक समय तक धार्मिक विश्वास पूजा व अराधना सम्बन्धी गीतों में से वही लोकगीतों के अब शेष हैं जो कि तन्त्र-मन्त्र से जुड़े पुरोहित का हित पोषित कर रहे हैं जैसे नागपूजा, जग्स, जाख, नरसिंह, खेत्रपाल, नगेला, नागराजा, भूत प्रेत, ऐड़ी-आछरी, सैद, हिन्दू देवता, राम, शिव, देवी-नन्दा चन्द्रबदनी सुरकण्डा तथा कई अन्य जागर गीत पण्डवार्त गीत आदि आवजी समाज का भी इसमें योगदान है लेकिन धार्मिक आस्था में कमी के कारण व आवजी व तन्त्र-मन्त्र पुरोहित (घडयाला) जाति के निष्क्रियता से ये लोक गीत विलुप्ति के कगार पर हैं। धार्मिक समूह व सामुदायिक सहभागिता जैसे त्यौहारों के गीत तो मृतप्राय विलुप्त हो रहे हैं जैसे शिवरात्रि, दिवाली, फूल संक्राति, नन्दा अष्टमी, जन्माष्टमी व माघ पंचमी के गीत विलुप्त हो चुके हैं।

(२) संस्कार गीत- मानव समाज में जन्म से मृत्यु तक होने वाले संस्कारों में गाये जाने वाले लोक गीतों में से मांगल गीत ही गढ़वाल के कुछ दूरदराज के गॉव में अवशेष के रूप में सुने जा सकते हैं, जो विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं। जन्म, नामकरण, चुड़कर्म, जनेऊ सहित मृत्यु संस्कार सम्बन्धी लिंगवास, पित्रकूड़ी के लोक गीत वर्तमान में पूर्णतः विलुप्त हो चुके हैं।

(३) ऋतु गीत- वर्तमान लोक में बदलती जीवन शैली के कारण फूलदेई, चैती गीत, माघ गीत, बारहमासा गीत विलुप्त होने के कगार पर हैं। यह जरूर है कि जनपद रुद्रप्रयाग के अगस्त्यमुनि में व जखोली में फूलदेई त्यौहार को बच्चों की सहभागिता से मनाने का प्रयास हो रहा है व फूलदेई गीतों को जीवंत भी किया जा रहा है। लेकिन फूलदेई त्यौहार का वह मूल स्वरूप पूर्णतः विलुप्त हो गया है, जिसमें बच्चे स्वस्फूर्त संलग्न होते थे। चैती गायन जो चैत महिने में आवजी द्वारा घर-घर होता था पूरी तरह विलुप्त हो गया है। आवजी समाज का ही मोह भंग हो चुका है। इस सम्बन्ध में बजीरा लस्या के आवजी सुरमु का कहना है कि समाज अब बदल चुका है। उन्हें केवल शादी विवाह या अन्य आयोजनों में बुलाया जाता है चैत माह या संक्रात के मौकों पर कोई आयोजन हो इसके प्रति किसी को भी रूचि नही है।

(४) प्रणय गीत- लोक जीवन में गाये जाने वाले प्रणय गीतों की जगह सी०डी० मार्केट ने अवश्य ली हैं जिनका मूल स्वरूप तहस नहस हो गया है। दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में यदा कदा बाजू बन्द सुना जा सकता है। छोपती, लामण, गीत विधा चलन से वाहर हो चुके हैं।

(५) लोकगाथा, वीरगाथा व प्रणय गाथाऐं- गढ़वाल में प्रसिद्व व लोक प्रिय लोक गाथाओं में देवजागर भूत जागर कृष्ण सम्बन्धी गाथायें जैसे-चन्द्रावली हरण, रूकमणी हरण, कुसुमा कोलिन, सजू की सुनारी, सिधुवा विधुवा, पाण्डववार्ताऐं, अर्जुन वासुदंता, गैडे की गाथा, नन्दापांती, निरंकार का जागर, ग्वरील जागर वार्तायें सीता हरण, कद्रविनता।

वीरगाथाऐं (पवाडें)- कफू चौहान, हरि और हंसा हिडंवाण, कालू भण्डारी, ब्रहम कुँवर, भानू भौपेला, जगदेव पंवार।

प्रणय गाथाऐं- जीतू, फ्यूँली, जषी, रामी, सरू, मालूशाही : गढ़वाल में लोकगीतों की भांति लोक गाथाओं की बहुलता रही है लोक गीतों व लोक गाथा में अंन्तर इतना है कि लोक गीत जन-जन के कंठहार बने तो लोक गाथा कुछ ही लोगों तक सीमित रही। लोक गाथा आकार और प्रकार में लम्बी है इसलिए इन्हें स्मरण रखना व गाना संभव नही है।

यह कुछ जातियों तक ही सीमित था जिसमें जागरी पुरोहित, आवजी-वादक तथा चंम्प्या हुडक्या आदि मुख्य हैं। चंम्प्या व हुडक्या भी हरिजन जातियों के ही गायक थे जो अब धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं मध्यकाल के समय सामंतों के दरबारों में वीरगाथाऐं सुनाते रण स्थल में सेना का साहस बढ़ाते थे। सामंती प्रथा के पराभव के साथ-साथ चम्प्या, हुड़क्या लोगों का भी पराभव हो चुका है। गढ़वाली लोकगाथाओं के विलुप्त होने का एक कारण यह भी है कि लोकगाथाओं के लिए निश्चित

जातियॉ परम्परागत कार्य करती रहीं समय परिवर्तन के साथ जातियों ने व्यवसाय परिवर्तन कर दिये जिस कारण लोकगाथा को लोक जीवन तक पहुँचाने वाले वाहकों की कमी के कारण लोकगाथा विलुप्त की ओर अग्रसर है।

(६) विविध गीत- जितना विस्तार गढ़वाल के लोक जीवन का है उतनी ही विविधता व व्यापकता यहॉ के लोकगीतों को मिली है। यहॉ विविध गीतों के अर्न्तगत गीतों का एक विशाल भण्डार आ जाता है। अधिकांश विविध गीतों की परम्परा नष्ट हो रही है जो इस प्रकार हैः-

नीति विषयक गीत- छूडा-छूड़ा शब्द का शाब्दिक अर्थ ज्ञान होता है। छूडा की चार श्रेणियॉ गोविन्द चातक द्वारा बतायी गई हैं-

१. जगत व जीवन की अस्थिरता सम्बन्धी
२. भेड़ पालकों के जीवन सम्बन्धी
३. नीति तथा उपदेश सम्बन्धी
४. प्रेम सम्बन्धी

ये गीत प्रायः घर के भीतर संयुक्त परिवारों में सर्दी की लम्बी रातों में आग से सेकते हुए बड़े, बूढ़ों द्वारा गाये जाते रहे ये आकार में बड़े नहीं होते पर सार्थक गीत होते हैं। यह परम्परा संयुक्त परिवारों के टूटने से व बदलते परिवेश से विलुप्त हो गयी है।

(७) श्रम गीत- गढ़वाल के अधिकांश श्रम गीत श्रमशील परिस्थितियों के समय गाये जाने वाले गीत हैं। हांलाकि इसमें श्रमशीलता का भाव नही अपितु श्रमशील स्थिति में गाये जाने के कारण इन्हें श्रम गीत कह सकते हैं। उदाहरण के लिए घास, लकड़ी काटते हुए, भेड़-बकरी चराते हुए, रोपणी (रोपाई) करते हुए, खुदेड़ बसंती, बाजूबंद तथा कई सामयिक गीत श्रमशील होते हुए महिलाओं द्वारा अक्सर गाये जाते हैंः-
जैसे-'रिंगली पिंगली फसल ह्वैगी दाथी उठौ दाथी उठौ
दाथी उठौ दीदी मेरी दाथी उठौं भुली।' श्रमगीत भी बदलते दौर में विलुप्ति की ओर अग्रसर हैं।

(८) जातियों के गीत- इस दृष्टि से तीन जातियों के व्यवसायिक लोग उल्लेखनीय हैं। ब्राह्मण, आवजी व बाद्यी, पूजा जागर गीतों को गाने में निपुण जागरी ब्राह्मण जागरी गीतों को गाने में निपुण होते हैं आवजी लोग मुख्य वाद्यक होते हैं। ये पूजा उत्सव या चैती पसारा या डड्वार (अन्न) मांगते हुए नाचते गाते हैं। आवजियों के समान ही बाद्यी जाति के लोग नृत्य और गीत के लिए प्रसिद्व हैं, इन्हें ढाक्की बाद्यी या बेड़ा कहते हैं ये गाते ही नही गीत रचते भी हैं लेकिन बदलते समय के साथ-साथ जाति आधारित ये गीत प्रोत्साहन के अभाव में विलुप्त हो रहे हैं। शिवानन्द नौटियाल ने अपने शोधग्रन्थ गढ़वाल इतिहास व लोक गाथा में लिखा है कि यदि लोक गीतों व लोक वाद्यों से जुड़े इस पेशे के माध्यम से लोकगीतों का संरक्षण करना है तो इन्हें आजीविका चलाने हेतु पेंशन व प्रोत्साहन राशि की सरकारी मदद दी जानी चाहिए। लेकिन अब तक की सरकारों द्वारा किये गये प्रयासों को अमली जामा नही पहनाया गया।

(९) दरोल्या गीत- उत्तरकाशी जनपद में स्थित रंवाई घाटी में लेचू व दरोल्या गीत भी प्रचलित हैं जो कि लोक गीत के रूप में भी प्रचलित हैं। कई गीतों में गृहस्वामिनी से सुरादान के लिए याचना की गई व कुछ गीतों में शराब को कुरीति मानकर उसके दुखद परिणामों की घोषणा की गयी। आज शराब का प्रचलन व शराब का व्यवसायिक स्वरूप सामने आ चुका है जिस कारण सामाजिक प्रतिक्रिया स्वरूप निकले लोक गीत मृत प्राय हो चुके हैं।

इसी तरह लोक जीवन से उपजे हास्य व व्यंग्य समसायिकता वाले गीतों को भी खूब लोकप्रियता मिली। लेकिन आज बदलते परिवेश में सभ्य होती संस्कृति के साथ-साथ लोक परम्परा वाले लोक गीत पीछे छूट गये हैं जो अब विलुप्त होने के कगार पर पहुँच चुके हैं।

सन्दर्भ

१. केदारखण्ड अध्याय ४०, पृ. २७-२९
२. नौटियाल शिवानन्द, 'गढ़वाल के लोक गीत व लोकनृत्य', प्रभात शास्त्री, संस्करण १९८१, पृ. ७
३. रतूडी हरिकष्ण, 'गढ़वाल का इतिहास', भागीरथी प्रकाशन टिहरी गढ़वाल, १९८८, पृ. ३२२-३३१,
४. चातक गोविन्द, 'गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन', विद्यार्थी प्रकाशन, १९७३, पृ. ४०-४१,
५. शैलेश हरिदत्त भट्ट, 'गढ़वाली भाषा और साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन, २००७, पृ. १३२-१३३
६. नौटियाल शिवानन्द, पूर्वोक्त, पृ. ९
७. बहुगुणा अबोध बंधु, सम्पादक धुयॉल गढवाल साहित्य मंडल दिल्ली संस्करण १९५४
८. चातक गोविन्द, पूर्वोक्त, पृ. ९
९. काण्डपाल सर्वेश्वर दत्त, 'समौण-बुझौण', संस्कृति प्रकाशन अगस्त्यमुनि २०१२,
१०. शुक्ल पंडित राम चन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संवत् २००८, पृ. ६००-६०१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 17 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2015
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

नई पंचायती राज व्यवस्था एवं भोटिया जनजाति की महिलाएँ- जागरूकता, ग्राह्यता एवं प्रतिरोध

❑ दीप्ति

यद्यपि पंचायत राज व्यवस्था किसी न किसी रूप में भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है परन्तु नई पंचायती राज व्यवस्था के आने से पंचायतों को संवैधानिक दर्जे के साथ-साथ अधिक अधिकार, स्वायत्ता, सुरक्षा व एकरूपता प्राप्त हुयी है। परन्तु मात्र प्रावधान ही पर्याप्त नहीं हैं यह देखा जाना भी आवश्यक है कि इन प्रावधानों के प्रति लक्षित समूह की जागरूकता, ग्राह्यता, एवं प्रतिरोध की स्थिति वर्तमान में क्या है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास रहा है।

नई पंचायती राज व्यवस्थाः यद्यपि पंचायत राज व्यवस्था किसी न किसी रूप में भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है परन्तु नई पंचायती राज व्यवस्था के आने से पंचायतों को संवैधानिक दर्जे के साथ-साथ अधिक अधिकार, स्वायत्ता, सुरक्षा व एकरूपता प्राप्त हुयी है। जैसा कि नदीम हसनैन[१], ने अपने अध्ययन में बताया है कि इतिहास के प्रारम्भ से ही पंचायतें भारतीय गावों की आधारशिला रही हैं। प्रत्येक गाव को एक लोकतंत्र बनाने का जो स्वप्न गांधी जी ने देखा था, उसे ग्रामीण पुनर्निर्माण में जनसामान्य को भागीदार बनाने की त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की शुरूआत के साथ ही साकार कर दिया गया है। भारत में पंचायती राज के इतिहास में २४ अप्रैल १९९३ एक स्वर्णिम दिन कहा जा सकता है। इस दिन संविधान ७३वॉ सशोधन अधिनियम, १९९२ लागू हुआ, जिसमें पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा मिला। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं (१) २० लाख से अधिक की जनसंख्या वाले राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की व्यवस्था करना, (२) हर पांचवर्षों में नियमित रूप में पंचायत चुनाव करना, (३) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए कम से कम ३३ प्रतिशत सीटों का आरक्षण, (४) पंचायतों के वित्तीय अधिकारों के बारे में सिफारिश करने के लिए राज्य वित आयोग नियुक्त करना, और (५) संपूर्ण जिले की विकास योजना का मसौदा तैयार करने के लिए जिला नियोजन समिति का गठन।

उक्त सभी ७३वें संविधान संशोधन १९९२ के अन्तर्गत लागू पंचायती राज व्यवस्था को ही नई पंचायती राज व्यवस्था कहा गया।

संसद में २४ अप्रैल १९९३ को ७३ वाँ संविधान संशोधन पारित कर संविधान में ११वीं अनुसूची जोड़ी गई तथा राज्यों को निर्देशित किया कि वे एक वर्ष में इस संशोधन के अनुरूप पंचायती राज कानून बनायें इस प्रकार यह अधिनियम २४ अप्रैल १९९४ को पूरे देश में लागू हो गया। पाण्डेय[२] के अनुसार अनुच्छेद २४३ छ यह उपबन्धित करता है कि इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा, पंचायत की ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान कर सकता है जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे और ऐसी विधि में पंचायत को उपयुक्त स्तर पर ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जैसी उसमें विनिर्दिष्ट की जाये, निम्नलिखित के सम्बन्ध में शक्तियाँ और उत्तरदायित्व देने के लिए उपबन्ध किये जा सकेंगे

(क) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना,

(ख) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की स्कीमों को, जो उन्हें सौंपी जाएँ, जिसके अन्तर्गत वे स्कीमें भी हैं जो ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों से सम्बन्धित हैं, क्रियान्वित करना।

ग्यारहवीं अनुसूची इसी उद्देश्य से संविधान में जोड़ी गई है, जिसमें उन विषयों का वर्णन हैं जिन पर पंचायतों को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है, वे विषय निम्नलिखित हैं १. कृषि एवं कृषि विस्तार, २. भूसुधार, चकबन्दी, भूमि अनुरक्षण, ३. लघु सिंचाई, जल प्रबन्धन और जल आच्छादन, ४. पशुपालन, दुग्ध उद्योग और मुर्गीपालन, ५. मत्स्य उद्योग, ६. सामाजिक वनौद्योग और फार्म वनौद्योग, ७. लघु वनउत्पादन, ८. लघु उद्योग जिसमें खाद्य प्रस्करण उद्योग भी है, ९. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग, १०. ग्रामीण आवासन, ११. पेयजल,

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, डी०एस०बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

१२. ईधन और चारा, १३. सड़के, पुलिया, पुल, नौघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन, १४. ग्रामीण विद्युतीकरण, १५. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत, १६. गरीब-उपशमन कार्यक्रम, १७. षिक्षा जिसमें प्राइमरी और माध्यमिक विद्यालय भी हैं, १८. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यसायिक शिक्षा, १६. प्रौढ एवं अनौपचारिक शिक्षा, २०. पुस्तकालय, २१. सांस्कृतिकरण क्रियाकलाप, २२. बाजार एवं मेले, २३. स्वास्थ्य और स्वच्छता जिसमें अस्पताल, प्राथमिक स्वाथ्य केन्द्र एवं औषधालय भी हैं, २४. परिवार कल्याण, २५. स्त्री और बाल विकास, २६. समाज कल्याण, जिसमें विकलांग और मानसिक रूप से अविकसित भी हैं, २७. जनता कमजोरघ्वर्गों का, विशेषरूप से अनुसूचित जाति एवं जनजाति का कल्याण, २८. वितरण प्रणाली, २६. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

पंचायतों के संबंध में माहेश्वरी[३] उद्धत करते हैं राज्य विधानमण्डल पंचायतों को आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान और आयोजनाओं के क्रियान्वयन सहित कार्यात्मक एवं प्रशासनिक कार्यों के लिए शक्ति प्रदान करेगा। भारत में स्थानीय शासन की एक पुरानी कमजोरी असक्षम वित्तीय आधार है। वित्तीय स्थिति को सुदघ्ढ बनाने के लिए वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, जो पंचायती वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा। यदि राज्य की सरकार यह समझती है कि कोई पंचायत कानून के अनुसार कार्य नहीं कर रही है अथवा अपनी शक्तियों का दुरूपयोग कर रही है या इस प्रकार से कार्य कर रही है जो जनहित में नहीं है तो वह पंचायत को स्थगित या भंग कर सकती है। पंचायत के भंग किये जाने के छ माह के भीतर नवीन निर्वाचन कराने का भी प्रावधान है।

उत्तराखण्ड की ग्रामीण पंचायतों का इतिहास : उत्तराखण्ड के गठन के पश्चात् जैसा कि नवानी एवं रावत[४] लिखते हैं उत्तर प्रदेश में १६४७ में संयुक्त प्रान्त पंचायत राज्य अधिनियम, १६५८ में उ० प्र० अन्तरिम जिला परिषद् अधिनियम और १६६१ में उ०प्र० क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम बनाया गया। उत्तराखंड राज्य में भी थोड़े संशोधनों के साथ इसी को अंगीकृत किया गया।

संशोधन विधेयक २००८ के पश्चात उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में नई पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन में पंचायतों में उत्तराखण्ड की महिलाओं को अधिक अवसर दिये जाने की आवश्यकता महसूस होने लगी जिसके लिए नवानी[५] के अनुसार उत्तराखण्ड में बजट सत्र के दौरान १२ मार्च २००८ को पंचायत संशोधन विधेयक पारित हुआ जिसमें महिलाओं को ५० प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। पंचायतों में अभी तक महिलाओं के लिए ३३ प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था थी। राज्य में अब आधी से अधिक पंचायत सीटों पर महिलायें प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

इस प्रकार ग्रामीण महिलाएं जो अब तक उपेक्षित रहने को मजबूर थीं ५० प्रतिशत आरक्षण देकर उन्हें केवल सदस्या के रूप में नहीं वरन् पंचायत के मुखिया के रूप में भी चुने जाने का अवसर प्राप्त हुआ जो कि एक अभूतपूर्व घटना थी। इस संशोधन से ठहरे हुए ग्रामीण समाज में बदलाव आया है और धीरे-धीरे पंचायतें ग्रामीण विकास की महत्वपूर्ण कड़ी बनती जा रही हैं। अब पंचायतें मजबूती से उभरकर सामने आई हैं और विकास कार्यों को बखूबी अंजाम दे रही हैं। साथ ही स्थानीय लोगों को रोजगार भी मिल रहा है जिससे उनके जीवन स्तर में सुधार आ रहा है। इसके बावजूद पंचायतों की भूमिका को सफल बनाने के लिए इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना जरूरी है। महिलाओं और अनुसूचित जाति एवम् अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए आरक्षण तो किया गया है किन्तु सर्वेक्षण तथा अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि महिलाओं को अभी भी इस अधिनियम के तहत अपनी शक्तियों का स्पष्ट ज्ञान नहीं है। वे बैठकों में उपस्थित नहीं होती और बैठकों में लिए गए निर्णयों पर अंगूठा लगाकर मात्र एक रबर स्टैम्प की भूमिका अदा करती है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति के अध्ययन की दिशा में समाज विज्ञान के लगभग सभी विषयों के शोधकर्ताओं की रूचि जागृत हुई है। इसी परिप्रेक्ष्य में कुमाऊँ मण्डल के बागेश्वर जनपद के कपकोट विकास खण्ड की भोटिया जनजाति की स्थिति अपेक्षात उच्च है। उनके समाजीकरण के प्रतिमानों में पुरूषों व स्त्रियों के संदर्भ में अंतर देखने को नहीं मिलता, कहीं-कहीं तो यह प्रतिमान स्त्रियों के पक्ष में दिखाई पड़ते है। समाजीकरण के प्रतिमानों में पुरूषों व स्त्रियों के संदर्भ में अंतर न दिखने की पृष्ठभूमि में भोटिया जनजाति की महिलाओं की नई पंचायती राज व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में जागरूकता, ग्राह्यता, एवं प्रतिरोध की स्थिति की जानकारी शोध कार्य करने हेतु रूची जागृत करती है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है और यही प्रस्तुत अध्ययन शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

शोध प्रारूपः उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ प्रखण्ड के बागेश्वर जनपद के कपकोट विकास खण्ड में उन ग्रामों की संख्या ३२ है जिनमें भोटिया जनजाति निवास करती है को अध्ययन के समग्र के रूप में चुना गया है। कपकोट विकास खण्ड में २०११ की जनगणना के अनुसार कुल भोटिया जनजातीय की जनसंख्या ११७० है जिसमें पुरूष जनसंख्या

५२६ एवं महिलाओं की जनसंख्या ५८४ है। शोध कार्य हेतु कुल महिलाओं में से २५२ महिलाओं जिनकी आयु १५ वर्ष से अधिक है का चयन दैव निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया। चयनित महिलाओं का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से व्यक्तिगत साक्षात्कार लेकर तथा सहभागी एवं अर्धसहभागी अवलोकन के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है।

अनुसंधान व्याख्याः भारतीय संविधान में आधारभूत लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने एवं ग्रामीण विकास हेतु चलाई जा रही योजनाओं में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ७३वें संविधान संशोधन द्वारा अध्याय भाग-९ अन्तःस्थापित कर ११वीं अनुसूची एवं २९ विषय जोड़े जिसके द्वारा स्थानीय लोगों को अपना प्रशासन चलाने के अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसमें कमजोर एवं वंचित वर्गों की सहभागिता बढ़ाने के प्रावधान भी किये गये, परन्तु मात्र प्रावधान ही पर्याप्त नहीं हैं यह देखा जाना भी आवश्यक है कि इन प्रावधानों के प्रति लक्षित समूह की जागरूकता, ग्राह्यता, एवं प्रतिरोध की स्थिति वर्तमान में क्या है। प्रस्तुत अध्याय में नई पंचायती राज व्यवस्था के प्रति भोटिया जनजाति की महिलाओं की समझ की गहनता का अध्ययन किया गया है ।

अध्ययन में पाया गया कि महिलायें अपने मताधिकार को लेकर सजग एवं सक्रिय हैं वे स्थानीय निकायों के चुनाव से लेकर आम चुनाव तक सक्रिय रूप से स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता के साथ अपने मताधिकार का प्रयोग करती हैं वे महिलाओं के लिए किये गये प्रावधानों के विषय में पर्याप्त जानकारी रखती हैं तथा इसे उन से जुड़ी समस्याओं के समाधान का माध्यम के रूप में स्वीकार करती हैं। वे नई पंचायती राज व्यवस्था के प्रावधानों को महिलाओं के विकास में एक प्रशंसनीय प्रयास मानती हैं ।

चूंकि इसके प्रावधान महिलाओं के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास हेतु एक मील का पत्थर साबित हो रहे हैं इसका उदाहरण कपकोट विकास खण्ड में विकास खण्ड स्तर की विभिन्न योजनाओं से हुए लाभों से भोटिया जनजाति की महिलाओं में एक नयी आशा एवं ऊर्जा का संचार हुआ है जिनमें प्रमुख योजनाऐं हैं ग्राम्य विकास विभाग द्वारा संचालित मनरेगा व इन्दिरा आवास योजना तथा समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित अटल आवास योजना एवं ऊनी उद्योग ऋण। जिनमें से सभी महिलाऐं मनरेगा योजना के बारे में जागरूक है तथा ऊनी उद्योग को अपना प्राथमिक व्यवसाय मानती है तथा इस योजना से प्राप्त लाभों को स्वीकार करती हैं।

साथ ही आंगनबाडी से जुड़े कार्यक्रम को बच्चों तथा महिलाओं के कल्याण के लिए दीर्घकालिक एवं महत्वपूर्ण कदम मानती हैं। अवलोकन करने पर यह भी पाया गया कि न केवल सभी ग्रामीण बालक बालिकाऐं इसका लाभ उठा रही हैं बल्कि गर्भवती एवं धात्री महिलाऐं भी इससे लाभान्वित हुयी हैं।[३] तथ्यों की जानकारी की पुष्टि सर्वेक्षण के निम्न आकड़ों से होती है।

सारणी सं०-१

महिलाओं द्वारा मताधिकार प्रयोग की स्थिति

मताधिकार का प्रयोग	संख्या	प्रतिशत में
हमेशा	१९९	७८.९
कभी-कभी	३६	१४.३
कभी नहीं	१७	६.८
तटस्थ	०	०.००
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-१ के अनुसार पाया कि ७८.९० प्रतिशत महिलाओं ने हमेशा चुनाव में भाग लिया है, १४.३० प्रतिशत महिलाओं ने कभी-कभी चुनाव में भाग लिया है तथा ६.८० प्रतिशत महिलाओं ने चुनाव में कभी भाग ही नहीं लिया। स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाऐं अपने मताधिकार का प्रयोग करती थीं।

सारणी सं०-२

महिलाओं द्वारा मताधिकार प्रयोग में प्राथमिकता

निर्णय को प्राथमिकता	संख्या	प्रतिशत में
स्वयं का निर्णय	२४३	९६.४०
परिजनों की सलाह	९	३.६०
अन्य व्यक्तियों की सलाह	०	०.००
तटस्थ	०	०.००
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-२ के अनुसार पाया कि ९६.४० प्रतिशत महिलायें मत देते समय स्वयं के निर्णय को प्राथमिकता देती है तथा ३.६० प्रतिशत महिलाएं मत देते समय परिजनों की सलाह को प्राथमिकता देती हैं। अतः स्वयं के निर्णय के अनुसार लगभग सभी महिलाऐं मताधिकार का प्रयोग करती थीं।

सारणी सं०-३

महिलाओं को नई पंचायती राज व्यवस्था की जानकारी

व्यवस्था के संबंध में जानकारी	संख्या	प्रतिशत में
हाँ	१९१	७५.७९
नहीं	३३	१३.१०
कहा नहीं जा सकता है	२८	११.११
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-३ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ७५.७६ प्रतिशत महिलाएं नई पंचायती राज व्यवस्था के बारे में जानती हैं, १३.१० प्रतिशत महिलाएं नई पंचायती राज व्यवस्था के बारे में नही जानती हैं तथा ११.११ प्रतिशत महिलाओं के द्वारा नई पंचायती राज व्यवस्था के संबंध में कुछ नही कहा गया। अतः अधिकांश महिलाओं को पंचायतीराज व्यवस्था की जानकारी थी।

सारणी सं०-४
महिला कल्याण की योजनाओं का लाभ न उठा पाने के कारण

समस्याओं के कारण	संख्या	प्रतिशत में
प्रशासनिक	७२	२८.५७
अनैतिकता	३५	१३.८६
सही लाभार्थी का चयन न होना	११४	४५.२४
अन्य	३१	१२.३०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-४ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ४५.२४ प्रतिशत महिलाओं को सही लाभार्थी का चयन न होने पर नई पंचायती राज व्यवस्था के अर्न्तगत जनजाति महिलाओं के लिये चलायी जा रही योजनाओं का लाभ उठाने में समस्याऐं आती हैं, २८.५७ प्रतिशत महिलाओं को प्रषासनिक कारणों से इन योजनाओं का लाभ उठा पाने में समस्याएं आती हैं, १३.८६ प्रतिशत महिलाओं को अनैतिकता के कारणों से इन योजनाओं का लाभ उठा पाने में समस्याऐं आती हैं तथा १२.३० प्रतिशत महिलाओं को अन्य कारणों से इन योजनाओं का लाभ उठा पाने में समस्याऐं आती है। अतः महिलाओं के एवं बडे वर्ग का मानना था कि सही लाभार्थी के चयन न होने के कारण महिलाओं को उपलब्ध योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता।

सारणी सं०-५
योजनाओं का लाभ उठा पाने में आ रही समस्याओं को दूर करने की विधियां

विधियॉं	संख्या	प्रतिशत
जागरुकता से	१९९	७८.९७
राजनैतिक सहभागिता से	९	३.५७
दोनों से	४३	१७.०६
अन्य	१	०.४०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-५ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ७८.९७ प्रतिशत महिलाओं द्वारा योजनाओं का लाभ उठा पाने में आ रही समस्याओं को जागरूकता से दूर किया जा सकता है, १७.०६ प्रतिशत महिलाओं द्वारा इन समस्याओं को जागरूकता एवं राजनैतिक सहभागिता से दूर किया जा सकता है, ३.५७ प्रतिशत महिलाओं द्वारा इन समस्याओं को राजनैतिक सहभागिता से दूर किया जा सकता है तथा ०.४० प्रतिशत महिलाओं का मानना था कि अन्य कारणों से इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है। अतः अधिकांश महिलाओं का मानना था कि जागरूकता होने पर ही वे योजनाओं का अपेक्षित लाभ प्राप्त कर सकती हैं।

सारणी सं०-६
महिलाओं के अनुसार लोकतांत्रिक संरचना की राजनीति में महिला आरक्षण की आवश्यकता

आरक्षण की आवश्यकता	संख्या	प्रतिशत में
राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण कम होगा	६०	२३.८०
भ्रष्टाचार में कमी आयेगी	६१	२४.४०
महिलाओं की समस्याओं का उचित समाधान होगा	११५	४५.८०
प्रशासनिक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होगी	१५	५.६०
अन्य	१	०.४०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-६ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ४५.८० प्रतिशत महिलायें लोकतांत्रिक संरचना की राजनीति में महिला आरक्षण को इसलिए आवश्यक मानती है क्योंकि उन्हे लगता है कि महिलाओं की समस्याओं का उचित समाधान होगा, २४.४० प्रतिशत महिलायें इसलिए आवश्यक मानती है क्योंकि उन्हे लगता है कि भ्रष्टाचार में कमी आएगी, २३.०८ प्रतिशत महिलाओं को लगता है कि इससे राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण कम होगा, ५.६० प्रतिशत महिलायों को लगता है कि प्रशासनिक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होगी तथा ०.४० प्रतिशत महिलायें महिला आरक्षण को अन्य कारणों से आवश्यक मानती हैं। आकड़ों से ज्ञात होता है कि भोटिया महिलाओं का मानना था कि महिलाओं हेतु आरक्षण से महिलाओं की समस्याओं का उचित समाधान होगा, भ्रष्टाचार में कमी आएगी, राजनीति में बढ़ता अपराधीकरण कम होगा, प्रशासनिक व्यवस्था अधिक सुदृढ होगी किन्तु अधिकांश महिलाओं का मानना था कि महिला आरक्षण से महिलाओं की समस्याओं का उचित समाधान होगा।

सारणी सं०-७
पुरूषों की अपेक्षा महिला ग्राम-प्रधानों को महिला समस्याओं की अधिक समझ

समस्याओं की अधिक समझ	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१९२	७६.१९
नहीं	४	१.५९
कहा जा सकता है	५६	२२.२२
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-७ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ७६.१९ प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि पुरूष ग्राम-प्रधान की अपेक्षा महिला ग्राम-प्रधान महिलाओं की समस्याओं को अधिक समझती है, १.५९ प्रतिशत महिलायें मानती है कि पुरूष ग्राम-प्रधान की अपेक्षा महिला ग्राम-प्रधान महिलाओं की समस्याओं को नहीं समझती है तथा २२.२२ प्रतिशत महिलायें इस संबंध में कुछ नहीं कहती। अतः स्पष्ट है कि पुरूषों के वर्चस्व के कारण महिलाओं के समस्याओं का उचित समाधान नहीं हो पाता है तथा पुरूष ग्राम-प्रधान की अपेक्षा महिला ग्राम-प्रधान को महिलाओं की समस्या की समझ अधिक हाती है। अतः महिलाओं का ग्राम-प्रधान होना महिलाओं के कल्याण के पक्ष में होता है। अतः महिला कल्याण के उददेश्य हेतु महिला आरक्षण आवश्यक है।

सारणी सं०-८
आंगनबाड़ी एवं अन्य योजनाओं से लाभान्वित होने की स्थिति

महिलायें लाभान्वित होती हैं	संख्या	प्रतिशत में
हाँ	२१९	८६.९०
नहीं	३३	१३.१०
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-८ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ८६.९० प्रतिशत महिलायें महिलाओं के विकास से संबंधित आंगनबाड़ी एवं अन्य योजनाओं के माध्यम से लाभान्वित हो रही है तथा १३.१० प्रतिशत महिलायें इन योजनाओं के माध्यम से लाभान्वित नहीं हो रही है। अतः यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश महिलाऐं आंगनबाड़ी एवं अन्य योजनाओं के माध्यम से लाभान्वित हो रही हैं।

सारणी सं०-९
महिलाओं के सशक्तीकरण के संन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
आर्थिक स्वतंत्रतता	९१	३३.८३
राजनीतिक सहभागिता	४४	१६.३६
उच्च शैक्षिक स्तर	१३४	४९.८१
योग	२५२	१००.००

सारणी सं०-९ के अनुसार अध्ययन में पाया कि ४९.८१ प्रतिशत महिलायें महिलाओं के सशक्तीकरण के संन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उच्च शैक्षिक स्तर को मानती हैं, ३३.८३ प्रतिशत महिलायें आर्थिक स्वतंत्रता तथा १६.३६ प्रतिशत महिलायें राजनैतिक सहभागिता को महिलाओं के सशक्तीकरण के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति मानती है। आकड़ों से विदित होता है कि अनुसूचित जनजाति समाज में महिलाओं का सशक्तीकरण उनके उच्च शैक्षिक स्तर के कारण हुआ है।

निष्कर्षः- अतः उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट है कि महिलाओं में नई पंचायती राज व्यवस्था के प्रति जागरूकता है। उनमें इस व्यवस्था से राजनैतिक समझ का विकास हुआ है तथा वे राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से लाभान्वित भी हो रही हैं। उनमें स्थानीय विकास योजनाओं के संबंध में समझ का विकास हुआ है। वे इनके क्रियान्वयन की जानकारी रखती हैं तथा वर्तमान स्थानीय स्वशासन अर्थात् लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को सकारात्मक रूप से स्वीकार करती हैं। इसके साथ ही उनका स्पष्ट रूप से मानना है कुछ राजनैतिक, प्रशासनिक एवं सामाजिक कारकों के प्रतिरोध के कारण ही स्थानीय विकास योजनायें पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पा रही हैं किन्तु इन सभी कारकों के बावजूद पूर्व की अपेक्षा नई पंचायती राज व्यवस्था के आ जाने से महिलाओं में अधिक जागरूकता आयी है जो कि उनके सशक्तीकरण की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम एवं मील का पत्थर साबित हो रहा है।

सन्दर्भ

१. हसनैन, नदीम 'समकालीन भारतीय समाज, एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य', भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, २००७
२. पाण्डेय, जय नारायण, 'भारत का संविधान', इलाहाबाद, २०१४, पृ. ६२५
३. माहेश्वरी एस०आर०, 'भारत में स्थानीय शासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, २००६, पृ. १३२
४. नवानी, लोकेश एवं कल्याण सिंह रावत सम्पादक, 'विनसर उत्तराखण्ड इयर बुक', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, २०१५
५. नवानी, लोकेश सम्पादक, 'विनसर उत्तराखण्ड इयर बुक', विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, २००६, पृ. ५५

पुस्तक समीक्षा

गांव को सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। इसके महत्व का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारतीय सामाजिक जीवन को समझने में इसकी भूमिका का विश्लेषण विभिन्न सामाजिक विद्वानों तथा साहित्य प्रेमियों द्वारा किया गया है। सामाजिक वैज्ञानिकों ने गांव की वर्तमान स्थिति का समर्थन करते हुए एक स्वतंत्र इकाई के रूप में इसकी व्याख्या की है। इतिहासकारों ने भी गांव में रहने वाले लोगों के संबंध में पहचान को लेकर भारतीय समाज को समझने के लिए गांव के महत्व का वर्णन किया है। मनीष ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'भारतीय गांव' में गांव के बदलते स्वरूप का ब्रिटिश शासन काल के समय से लेकर आजादी के बाद छः दशकों में जो परिवर्तन हुए हैं और जिस तरह से गांव को लेकर कुछ अवधारणाओं की मदद से इसका अध्ययन किया गया है उस पूरे प्रकरण का आलोचनात्मक व्याख्यान प्रस्तुत किया है। पुस्तक के आरंभ में एन. जयराम ने जो आलेख लिखा है वह पुस्तक में मनीष ठाकुर के द्वारा दिये गये अवधारणाओं के पश्चिमी विद्वानों से जुड़ी अवधारणाओं और इन सिद्धातों से जोड़कर पुस्तक में जो विचार प्रकट किए गये हैं उनका विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में भारतीय गांव से जुड़े जो अध्ययन हुए हैं उनका आकलन वस्तुनिष्ठ तरीके से विस्तार से किया गया है।

पुस्तक	: इंडियन विलेज ए कनसेप्चुअल हिस्ट्री
लेखक	: डॉ. मनीष ठाकुर, एसोशिएट प्रोफेसर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट कोलकाता
प्रकाशक	: रावत प्रकाशन, जयपुर
प्रकाशन वर्ष	: २०१४
मूल्य	: ६५०/-
पृ. सं.	: २१४

भारतीय गाँव को लेकर विभिन्न विषयों से जुड़े लोगों ने अपने विचारों को प्रकट किया है। इतिहासकार तथा साहित्य से जुड़े लोग गाँव को भारतीय संदर्भ से जोड़ते हुए काफी भावुक हो जाते हैं। कई दिलचस्प प्रकरणों को जोड़कर साहित्यकारों तथा फिल्मों में जिस तरह से गाँव का चित्रण किया गया है, वह निश्चय ही काफी मर्मस्पर्शी है। कवियों, साहित्यकारों तथा फिल्म जगत से जुड़े लोगों से अलग विचार भी सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। इन सभी संदर्भों को ध्यान में रखकर मनीष ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'इंडियन विलेज ए कनसेप्चुअल हिस्ट्री' में सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में गाँव के ऊपर जो शोध पर आधारित ग्रामीण जीवन का वृतान्त प्रस्तुत किया है, उसके विभिन्न सन्दर्भों में किये गये शोध व पुस्तक के ऊपर उनके विचारों का आकंलन किया है। भारतीय समाज में गाँव के महत्व को देखते हुए उपनिवेशकाल के दौरान ब्रिटिश प्रशासकों की समझ तथा उनकी टिप्पणी का विस्तार से वर्णन किया गया है। आजादी के बाद भारतीय समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों ने मिलकर ग्रामीण समाज के अध्ययन में इस बात पर बल दिया कि विकास की रूपरेखा गाँव को ध्यान में रखकर बनायी जानी चाहिए क्योंकि हमारे देश की आत्मा गाँव में ही बसती है। जिन जटिल अवधारणाओं तथा उपागमों का प्रयोग ब्रिटिश शासनकाल के प्रशासनिक सेवा से जुड़े विद्वानों ने किया उसमें गाँव के ऊपर किये गये बंदोबस्त को ध्यान में रखकर भूमि की व्यवस्था और लगान वसूलने के माध्यम ने गाँव में बसने वाले लोगों के संबंध तथा आपसी रिश्तों को किस प्रकार प्रभावित किया - इसका वर्णन किया गया है।

पुस्तक में कुल ७ अध्याय हैं। पहले अध्याय में ही लेखक ने गाँव को भारतीय समाज का एक आधारभूत संगठन बताया है। इतिहासकारों ने सिन्धु घाटी सभ्यता से ही गाँव के महत्व का उल्लेख किया है। ब्रिटिशकाल के दौरान पहली बार गाँव में जमीन को नियोजित कर जमीन से कैसे लगान वसूल कर इसे आय का स्त्रोत बनाया जा सकता है इस प्रकार के बंदोबस्त किये गये। गाँव की इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही उत्तर-औपनिवेशिक काल में भी सरकार ने औपनिवेशिक अवधारणाओं को ध्यान में रखकर ही योजनाओं को लागू करने का विचार किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश काल में भारतीय गाँव को औपनिवेशिक विचार के अधीनस्थ कर दिया गया। दूसरे अध्याय में लेखक ने गाँव को औपनिवेशिक विचारों से जोड़ दिया। भूमि बंदोबस्त कर गाँव से होने वाले राजस्व पर अपना अधिकार जमाने के लिए कानूनी प्रावधान भी किये गये। इस प्रकरण का विस्तार से उल्लेख प्रशासनिक तथा गाँव के ऐतिहासिक अध्ययन से जुड़ी सामग्री का विश्लेषण करते हुए किया गया। पूरे उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के पहले दो दशकों में गाँव के ऊपर ब्रिटिश समझ के साथ जुड़े प्रशासनिक तथा कानूनी व्यवस्था के प्रभाव का व्यापक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। औपनिवेशिक शासनकाल में गाँव से संबंधित दो नीतिगत उपागमों में ओरियेंटलिस्ट (Orientalist) तथा एंगिलिसिस्ट (Anglicist) मुख्य थे जिनके बीच वैचारिक मतभेद मौजूद थे। पुस्तक का तीसरा

अध्याय दूसरे अध्याय का ही वृहत स्वरूप है जहाँ पश्चिमी सिद्धान्तों से जुड़े गांव की मान्यताओं का आलोचनात्मक वर्णन किया गया है।

पुस्तक के पाँचवें अध्याय में लेखक ने गाँव के ऊपर राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुए अपने आलोचनात्मक विचारों द्वारा पूरी स्थिति को समझाने का प्रयास किया है। गाँधी तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने गाँव की स्वतंत्र इकाई को उसकी स्वायत्ता से जोड़कर उसका विश्लेषण किया है। ग्रामीण विकास के लिए ग्राम समुदाय विकास योजना का समर्थन कुछ राष्ट्रवादी नेताओं ने किया वहीं अंबेडकर ने अपनी असहमति प्रकट करते हुए गाँव को अस्पृश्यता तथा हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में लोगों को दो गुटों में छूत तथा अछूत के बीच विभाजित करने वाली व्यवस्था के रूप में देखा। अंबेडकर का मानना था कि ग्रामीण समाज का आधार हिन्दू गाँव को स्थापित करने से है जहाँ अछूतों का शोषण होता है तथा उनके हितों की अनदेखी की जाती है।

पाँचवें अध्याय में लेखक ने समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों के गाँव से संबंधित शोध विशेषकर गाँव से संबंधित जाति, संयुक्त परिवार, नातेदारी के आपसी संबंधों को ग्रामीण जीवन की शैली से जोड़कर देखा है। गाँव की आबादी को लेकर जनगणना में दिये गये आंकड़ों के ऊपर समीक्षा कर समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानवशास्त्रियों द्वारा कैसे गाँव को ग्रामीण विकास का केन्द्र बिन्दु बनाकर सुधार लाने का प्रयास कर सकें इसे छठे अध्याय में लेखक ने प्रस्तुत किया है। ग्रामीण विकास योजना को लागू करने के लिए गाँव के आधारभूत ढांचे को समझने का उपागम या अवधारणा होना आवश्यक है। गाँव में संबंधित अवधारणाओं के संदर्भ में ही ग्रामीण विकास योजना को सही तरीके से लागू किया जा सकता है।

पुस्तक का छठा अध्याय गाँव में विकास की योजनाओं को लागू किये जाने की प्रासंगिकता से जुड़ा है। लेखक ने इस अध्याय के अंत में कुछ मौलिक प्रश्न उठाये हैं जिसके ऊपर ध्यान केंद्रित कर गाँव में विकास योजना को राजनीतिक रंग से न देखते हुए ग्रामीण समाज को कैसे विकास के रास्ते पर लाया जाये इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। सातवें अध्याय में भारतीय ग्राम से जुड़े औपनिवेशिक, राष्ट्रवादी सोच तथा सामाजिक वैज्ञानिकों के गाँव से संबंधित विचारों का निष्कर्ष है। पुस्तक में गांव से संबंधित अध्ययनों का आलोचनात्मक विश्लेषण जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है वह निश्चय ही सराहनीय है। वर्तमान समाज में भूमि अधिग्रहण को लेकर जो विवाद छिड़ा है तथा ग्रामीण क्षेत्रों से रोजगार के लिए शहरों की तरफ पलायन करने तथा किसानों में बढ़ती आत्महत्या की घटनाओं को कम करने में किस प्रकार के ग्रामीण विकास योजना का सूत्रपात किया जाना चाहिए - इन सब बातों को अगर पुस्तक में सम्मिलित किया जाता तो पुस्तक और भी प्रासंगिक हो सकती थी। पुस्तक में प्रकट किये गये संवाद उच्च श्रेणी के है और इन सभी लोगों के लिए जो गाँव में बदलते स्वरूप पर काम करना चाहते हैं इस पुस्तक में ज्ञान का भंडार है और इसके लिए लेखक का यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय है।

पुस्तक के छठे तथा सातवें अध्याय में लेखक ने गांव में सरकार के नीतिगत फैसलों से हुए परिवर्तनों का भी आलोचनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। ग्रामीण विकास योजना के क्रियान्वयन के बदले गांव के संरचनात्मक तथा आधारभूत ढांचे के बदलते स्वरूप को समझना आवश्यक है। ब्रिटिश शासन काल में गांव का महत्व उसकी राजस्व क्षमता से जोड़कर देखा गया है। आजादी के बाद गांव के बारे में जो परस्पर विरोधी विचार अम्बेडकर तथा गांधी के थे वे बिल्कुल ही अलग थे। ऐसी स्थिति में भारतीय ग्रामीण जीवन में जो भी अपेक्षित बदलाव लाने के प्रयास ग्रामीण विकास के संदर्भ में किये गये हैं वे निश्चय ही काफी प्रभावशाली रहे हैं। यह पुस्तक ग्रामीण विकास से जुड़ी योजनाओं की सफलता को समझने में एक महत्वपूर्ण पुस्तक सिद्ध होगी। इस पुस्तक में ग्रामीण जीवन को लेकर जो अध्ययन किये गये हैं वह विद्वानों, विद्यार्थियों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन से जुड़े लोगों के लिए काफी उपयोगी साबित होंगे।

समीक्षक

डॉ. जितेन्द्र प्रसाद

प्रोफेसर (सेवानिवृत), समाज शास्त्र विभाग

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: गाँधी, अंबेडकर एवं दलित मुक्ति
लेखक	: जितेन्द्र प्रसाद से.नि. प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग एम.डी. यूनिवर्सिटी रोहतक (हरियाणा) एवं डॉ. संगीता ठाकुर प्राध्यापक समाज विज्ञान डी.ए.वी. स्कूल रोहतक (हरियाणा)
प्रकाशक	: एकेडमिक एक्सेलेंस, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१५
मूल्य	: ८५०/-
पृ. सं.	: २०८

महात्मा गाँधी तथा डॉ. अंबेडकर राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़ी दो ऐसे विरल हस्ती हैं जिनके विचारों को दलित मुक्ति आंदोलन से भी जोड़कर देखा जाता है। दोनों के नेतृत्व क्षमता की गणना और उनकी दूरदर्शिता का अंदाज इस बात से भी लगाया जा सकता है कि आजादी के लगभग सात दशकों के बाद दलित उद्धार को लेकर दिये गये उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। दोनों ने विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के बाद जाति संबंधित अंतर्विरोध तथा रंग भेद की नीति को मानवता के प्रति अपराध के रूप में देखते हुए अपने विचार प्रकट किये। कानून की पढ़ाई करने के बाद जब गांधी जी दक्षिण अफ्रीका गये तो वहाँ की रंगभेद नीति के खिलाफ जनता में खुलकर इसके विरोध में आवाज उठायी। इस अमानवीय व्यवहार के खिलाफ जो अभियान उन्होंने छेड़ा उसकी खबरें विदेशी अखबारों की सुर्खियाँ बनीं और विदेश से लौटने के बाद स्वाधीनता की लड़ाई जो भारत में चलायी जा रही थी उसको एक दिशा मिली। इसी प्रकार डॉ. अंबेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स से डी.एससी. की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् १९२३ में वकालत शुरू की। परन्तु दलितों के खिलाफ व्यवहार को देखकर जाति पर आधारित समाज में फैली विषमता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने २० जुलाई १९२४ में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन किया जिसका उद्देश्य दलित वर्ग के लोगों के खिलाफ जाति संबंधित विसंगतियों को दूर करना था।

यह कहा जा सकता है कि दोनों नेताओं के मन में भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत संकीर्ण मानसिकता के खिलाफ आवाज उठाकर एक स्वस्थ समाज को बनाने की बात छिपी थी। प्रस्तुत पुस्तक में दोनों लेखकों ने समाजशास्त्रीय तथा ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखकर उनके विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। दलितों के उद्धार में गाँधी तथा अंबेडकर ने दलितों को संगठित और उनकी राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करने का जो प्रयास किया उसका वर्णन किया गया है। दलितों के उत्थान के लिए जिस अभिमान का आगाज किया गया उसका वर्णन अधिनस्थ सिद्धान्त के संदर्भ में किया गया है। संभवतः इसी कारण अंबेडकर के विचारों को अतिवादी विचारधारा के समीप माना जाता है जबकि गाँधी के विचारों को सुधारवादी परंपरा से जोड़कर देखा जाता है। जहाँ अंबेडकर वर्ण व्यवस्था में ही लोगों को बाँटने तथा असमानता फैलाने का मौलिक आधार मानते हैं वहीं दूसरी ओर गाँधी वर्ण व्यवस्था को हिन्दू समाज के मौलिक ढांचे का हिस्सा मानते हैं परन्तु गाँधी ने अस्पृश्यता को एक समाज की बुराई बताया।

पुस्तक में गाँधी तथा अंबेडकर के सुधारवादी और उग्र सुधारवादी विचारों का जाति, वर्ण, अस्पृश्यता तथा ग्रामीण विचारों से जुड़े तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। पुस्तक के आरंभ में ही अशोक पंकज द्वारा लिखे गये आमुख में गाँधी तथा अंबेडकर के बीच वैचारिक मतभेद को भी रेखांकित किया है। पुस्तक के कुल आठ अध्याय हैं जिनमें गाँधी तथा अंबेडकर के विचारों को विभिन्न मुद्दों से जोड़कर उनका विश्लेषण किया गया है। प्रथम अध्याय में दोनों के विचारों का ऐतिहासिक वर्णन तीन उपखंड़ों में किया गया है। जाति की स्तरीकृत प्रकृति को सामाजिक संदर्भ से जोड़कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। द्वितीय उपखंड में दलित आंदोलन का विस्तार से वर्णन किया गया है। तीसरे उपखंड में दलित आंदोलन से जुडे चार उपागमों औपनिवेशिक, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी तथा अधीनस्थ सिद्धान्त के महत्व का वर्णन किया गया है। पुस्तक के दूसरे अध्याय में दोनों नेताओं की नेतृत्व क्षमता का विश्लेषण किया गया है। तीसरे से छठे अध्याय में दोनों नेताओं के विचारों का आलोचनात्मक विवेचन विशेषकर अस्पृश्यता से जुड़े उनके दृष्टिकोण का मूल्यांकन किया गया है।

डॉ. अंबेडकर का मानना था कि वर्ण व्यवस्था के कारण ही अस्पृश्यता जैसी बुराई समाज में व्याप्त है और वर्ण व्यवस्था के रहते अस्पृश्यता को समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत गाँधी वर्णाश्रम धर्म को समाज को व्यवस्थित करने का एक मौलिक तथा वैचारिक आधार मानते हैं। यद्यपि गाँधी ने अस्पृश्यता का कठोर विरोध किया और इसे सामाजिक बुराई के रूप में देखा। दोनों नेताओं के बीच राउण्ड टेबल कार्फ्रेस में सांप्रदायिक अवार्ड तथा दलितों के प्रतिनिघित्व को लेकर काफी मतभेद था परन्तु गाँधी की धमकी कि वे आमरण अनशन पर बैठकर इस 'कम्युनल अवार्ड' का भरपूर विरोध

करेंगे, चाहे इस अनशन के कारण उन्हें अपनी जान भी गँवानी पड़े तो इसके लिए वे तैयार थे के आगे डॉ. अंबेडकर को झुकना पड़ा परन्तु इस घटना का इतना गहरा असर उनकी सोच पर पड़ा कि उन्होंने यह ठान लिया कि वे अपने समर्थकों के साथ हिन्दू धर्म से नाता तोड़कर बौद्ध धर्म को अपना लेंगे। १४ अक्टूबर १९५६ को उन्होंने अपने समर्थकों के साथ सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म को अपनाने का कठोर निर्णय व्यथित मन से ले लिया।

तथ्यों को अधीनस्थ सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए इस पुस्तक के लेखकों ने कई संवेदनशील मुद्दों के उपर दोनों के विचारों तथा आपसी मतभेदों को उनकी विशिष्ट परिस्थिति से जोड़कर संतुलित तरीके से प्रस्तुत किया है। आठवें तथा पुस्तक के अंतिम अध्याय में दोनों नेताओं के विचारों का संतुलित वर्णन किया गया है। पुस्तक के पढ़ने पर दोनों नेताओं के विचारों की प्रासंगिकता का अंदाजा लगाया जा सकता है। गेल आमवेट ने भी गाँधी के विचारों विशेषकर वेद से जुड़े ऐतिहासिक संदर्भ के बारे में अपनी हैरानगी प्रकट करते हुए कहा है कि यह अचंभित और विस्मित कर देने वाली बात है कि गाँधी पश्चिमी देश में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद वेद को भारतीय संस्कृति की एक मौलिक पुस्तक मानते थे। गाँधी और अंबेडकर निश्चय ही दो अलग सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़े थे परन्तु पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति ने उनके विचारों को बहुत हद तक प्रभावित किया जिसका तथ्यों के संदर्भ में विस्तार से वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। वे सभी विद्यार्थी तथा शोधकर्त्ता, जो इन दोनों नेताओं के विचारों का आंकलन करना चाहते हैं इस पुस्तक को अनिवार्य रूप से रोचक एवं पठनीय पायेंगे। इतिहास तथा समाजशास्त्र से जुड़े लोगों के लिए इस पुस्तक में तथ्यों की जो जानकारी दी गयी है वह विशेष रूप से रूचिकर साबित होगी।

समीक्षक

डॉ. देसराज सभ्भरवाल

प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: ग्रामीण अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व
लेखक	: डॉ. शकील अहमद, असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, जे.एल.एम.(पी.जी.) कालेज, एटा (उ.प्र.)
प्रकाशक	: शलभ पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
प्रकाशन वर्ष	: २०१५
मूल्य	: ११५०/-
पृ. सं.	: २२७

भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचनाओं में व्याप्त क्लिष्टताओं को समझने के लिए उत्तर भारत सामाजिक विज्ञान के शोधार्थी के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयोगशाला कही जा सकती है। देश में जमीनी विकास को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था का आकलन किया गया। मध्यप्रदेश देश का पहला ऐसा राज्य है जिसने आधी आबादी यानि महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में ५० प्रतिशत आरक्षण देकर महिला सशक्तीकरण की संकल्पना को सशक्त स्वर प्रदान करने का उपक्रम किया है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में सबसे निचले स्तर यानि ग्राम पंचायतों में किसी महिला जनप्रतिनिधि का पंच अथवा सरपंच के पद पर चुना जाना एवं पंचायती राज अधिनियम के उद्देश्यों के अनुरूप प्रशासन करना निश्चय ही असम्भव नहीं तो दुरूह कार्य अवश्य कहा जा सकता है। समाज के कमजोर वर्गों में गिनी जाने वाली महिलाऐं तिस पर भी अनुसूचित जाति की महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा परम्परागत ग्रामीण सामाजिक संरचनाओं में सफलतापूर्वक नेतृत्व कर पाना आज भी कल्पनाशील प्रतीत होता है।

सूचना प्रौद्योगिकी, सुदूर अंचलों में प्राथमिक शिक्षा संस्थानों की उपलब्धता, प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की निपट देहाती अंचलों में पहुंच ने ग्रामीण भारत की जागरूकता एवं अधिकार प्राप्ति हेतु सजगता में वृद्धि अवश्य की है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की उत्तर प्रदेश की ग्रामीण राजनीति में विशेष अभिरूचि होने के कारण आगरा मण्डल के मैनपुरी जिला की ग्राम पंचायतों में निर्वाचित अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधियों के नेतृत्व संबंधी तथ्यों का राजनीतिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन को एक अभिनव प्रयास कहा जा सकता है। सत्ता, शक्ति, बल एवं प्रभाव जैसी राजनीतिक संकल्पनाओं को दृष्टिगत रखते हुए लेखक ने विशिष्ट एवं प्रभावी भूमिका निर्वहन करने वाले ग्राम प्रधानों एवं पंचायत सदस्यों को भी अध्ययन में सम्मिलित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक ग्रामीण अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व को दस अध्यायों में विभाजित करके सारगर्भित स्वरूप एवं तार्किकता प्रदान की गई है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधियों से प्राप्त प्राथमिक समंकों से निकाले गए तथ्यात्मक निष्कर्षों की मौलिकता को प्रस्तुत ग्रंथ का केन्द्रीय सार कहा जा सकता है। इन अर्थों में लेखक ने विषय के साथ न्यायसंगतता बरती है।

प्रथम अध्याय में पंचायती राज एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट करते हुए अनुसूचित जाति वर्ग की सामाजिक प्रस्थिति को उजागर किया गया है। एक ओर पंचायती राज की स्थापना करके वंचित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक शोषण व उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने के लिए अधिक से अधिक प्रशासनिक शक्तियाँ प्रदान की जा रही हैं वहीं दूसरी ओर स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में सरपंच पति अथवा मोहरा सरपंच की अवधारणाऐं आज भी फलीभूत हैं।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत लेखक ने विषय संबंधी शोध साहित्य एवं समीक्षाओं का गहन अध्ययन किया है जिससे वह पूर्व में किए जा चुके अध्ययनों के दोहराव से प्रस्तुत अध्ययन को भलीभांति रोक सकने में सफल हुआ प्रतीत होता है। लगभग ५६ शोध साहित्यों के अध्ययनों को समीक्षा में शामिल किया जाना निश्चय ही लेखक की अदम्य इच्छा का परिणाम कहा जा सकता है।

तीसरे अध्याय में लेखक ने शोध प्रकल्प एवं प्रविधि को भलीभांति प्रस्तुत किया है ताकि किसी भी अध्ययनकर्ता को प्रयुक्त की गई शोध प्रविधि, अध्ययन क्षेत्र का परिस्थिति के शास्त्रीय विवेचन, जनसंख्यात्मक संरचना, शोध परिकल्पनाऐं, न्यादर्श संरचना, साक्षात्कार अनुसूची से परिचित कराया जा सके।

चतुर्थ अध्याय में अध्ययन में सम्मिलित न्यादर्शों की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि (यथा आयु, वैवाहिक स्थिति, उपजाति, धर्म, परिवार, शैक्षणिक स्थिति, व्यवसायिक पृष्ठभूमि, जमीन, आय, मकान) जैसे कारकों को सम्मिलित कर उनकी व्याख्या की गई है।

पांचवे अध्याय में नेतृत्व की अवधारणा को मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही सामाजिक संरचनाओं में अस्पृश्य वर्गों का नेतृत्व और उनकी दुविधाओं को विवेचित करने का विशिष्ट प्रयास सराहनीय है।

छठवें एवं सातवें अध्यायों में क्रमशः भारत में पंचायती राज तथा उत्तर प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था के उद्भव, विकास एवं वर्तमान स्वरूपों की सटीक व्याख्या लेखक के समदर्शी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है।

आठवें एवं नौवें अध्यायों में लेखक ने अनुसूचित जाति

महिला नेतृत्व की भूमिका उनकी राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता को वर्णित करने का उपक्रम किया है।

अंतिम अध्याय में लेखक ने निष्कर्ष एवं ग्रामीण अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व की सशक्तता संवर्धन के महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाते हुए वंचित वर्गों की महिलाओं की नेतृत्व संबंधी समस्याओं और संभावनाओं का अत्यंत विस्तृत, व्यवस्थित एवं गहन रूप प्रस्तुत किया है। यद्यपि पुस्तक के अंदर कुछ कमियाँ अवश्य हैं, जैसे लेखक ने एक जिले की कुछ चयनित पंचायतों से प्राप्त प्राथमिक समंकों को अपने शोध निष्कर्षों और सुझावों को प्रस्तुत करने का आधार बना लिया है जबकि भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विविधताओं वाले राष्ट्र में इस तरह के निष्कर्षों से बचा जा सकता था। इसी तरह पुस्तक में कुछ प्रकाशन संबंधी त्रृटियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, जैसे प्राक्कथन एवं भूमिका की चौथी लाइन में संशोधन को संशोधान एवं प्राक्कथन में सर्वाधिक को सर्वाथिक लिखा हुआ है। इसी तरह क्रमशः पृष्ठ क्र. ०६ में द्वितीय पैराग्राफ में प्रस्तुत को प्रस्ततु एवं पृष्ठ क्र. १०६ की तीसरी लाइन को सहीं फोंट में परिवर्तित नहीं किया गया है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक ग्रामीण परिदृश्य के वंचित वर्गों के नेतृत्व संबंधी समस्याओं और चुनौतियों के एक व्यवस्थित अध्ययन को प्रस्तुत करती है। इसको उचित प्रकार से अन्वेषित करने के साथ-साथ विभिन्न विद्वानों के विचारों को भली प्रकार से उद्धृत करके पुष्ट किया गया है। आशा की जाती है कि यह पुस्तक आम अध्ययनकर्ताओं, विद्यार्थियों, शोधार्थियों, नीति-निर्माताओं एवं ग्रामीण जनप्रतिनिधियों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेगी।

समीक्षक

डॉ. राजेन्द्र कुमार मिश्रा

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

राजनीति विज्ञान विभाग

शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय

छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

स्वत्वाधिकार का घोषणा पत्र

फार्म - 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
2.	प्रकाशन की अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
4.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
5.	संपादक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
6.	स्वामी का नाम	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान, 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005

मैं डॉ. जे.एस. राठौर एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

(डॉ. जे.एस. राठौर)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

आजीवन सदस्यों की सूची

(गतांक से आगे)

६६०. डॉ. जोहरा जवी, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, एम.जी.एम. कालेज, संभल (उ.प्र.)।

६६१. डॉ. पूनम बजाज, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, एस.जी.एन. खालसा कालेज, श्रीगंगानगर (राजस्थान)।

६६२. डॉ. अरूण कांत पाण्डेय, प्रवक्ता समाजशास्त्र, आर्य महिला पी.जी. कालेज, शाहजहांपुर (उ.प्र.)।

६६३. श्री दीपक सिंह, शोध अध्येता इतिहास विभाग, राजकीय पी.जी. कालेज, गोपेश्वर (उत्तराखण्ड)।

६६४. सुश्री पूजा रानी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, राजकीय पी.जी. कालेज, काशीपुर (उत्तराखण्ड)।

६६५. डॉ. अतुल कुमार यादव, विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, ए.के. (पी.जी.) कालेज, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।

६६६. श्री. प्राणेश कुमार पटेल, उपाध्यक्ष एन.जी.ओ. अनूपपुर विकास प्रस्फुटन समिति, अनूपपुर (म.प्र.)।

६६७. सुश्री अभिलाषा गुप्ता, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, डी.ए.वी. कालेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)।

६६८. श्री कुलदीप यादव, शोध अध्येता समाजशास्त्र, एम.डी. यूनिवर्सिटी, रोहतक (हरियाणा)।

६६९. डॉ. अनिल कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, उदित नारायण पी.जी. कालेज, पडरौना, कुशीनगर (उ.प्र.)।

७००. डॉ. अनिल कुमार, प्राचार्य डॉ. कृपाल सिंह मैमोरियल पी.जी. कालेज, जखण्डी, देवबन्द, सहारनपुर (उ.प्र.)।

७०१. डॉ. कुसुम लता, असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, राजकीय पी.जी. कालेज देवबन्द, सहारनुपर (उ.प्र.)।

७०२. डॉ. सीमा देवी, प्रवक्ता समाजशास्त्र, इंदिरा देवी मैमोरियल गर्ल्स महाविद्यालय, मोरना, बिजनौर (उ.प्र.)।

७०३. श्री मिथिलेश कुमार, शोध अध्येता समाजशास्त्र, डी.ए.वी. (पी.जी.) कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)।

७०४. डॉ. संजीव कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर भूगोल, ए.के. कालेज, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।

७०५. सुश्री रेखा सिंह, अतिथि प्रवक्ता समाजशास्त्र, ए.एन.डी. गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)।

७०६. सुश्री पूर्णिमा शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, बी.एन.ए.एस. कालेज, महारी, हरदोई (उ.प्र.)।

७०७. डॉ. नेत्रपाल सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, गवाना, अलीगढ़ (उ.प्र.)।

७०८. सुश्री नीलम सौन, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।

७०९. डॉ. पूनम भट्ट, रूद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)।

७१०. श्रीमती दीप्ति मिश्रा, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।